वर्ष : द्वितीय अंक : द्वितीय फरवरी–2020

# विंध्याचल कृषि

एकेएस विश्वविद्यालय सतना
का मुख पत्र

जय जवान
जय किसान
जय विज्ञान
AgriTech मध्यप्रदेश
(किसान मेला - 2014)
ए.के.एस. विश्वविद्यालय, सतना

समय
SADHNA NEWS

AKS UNIVERSITY
SATNA

जय जवान

किसान अदालत
National Conference
on
Biotechnology and Sustainable Agriculture
in Doubling of Farmer's Income by 2022
5th-7th September 2019
BSADF 2022

वर्ष : द्वितीय अंक : द्वितीय फरवरी–2020

मुख्य संरक्षकः
**श्री बी.पी. सोनी**
कुलाधिपति
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना
*
संरक्षकः
**प्रो. पी.के. बनिक**
कुलपति
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना
*
अध्यक्षः
**इंजी. अनंत कुमार सोनी**
प्रतिकुलाधिपति
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना
*
सहअध्यक्षः
**डॉ. आर.एस.त्रिपाठी**
प्रतिकुलपति (अकादमिक)
**डॉ. हर्षवर्धन**
प्रतिकुलपति (विकास)
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना
*
मुख्य सलाहकारः
**डॉ. एस.एस. तोमर**
अधिष्ठाता कृषि संकाय
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना
**डॉ. के.आर. मौर्य**
निदेशक, उद्यान विज्ञान विभाग
*
मुख्य संपादकः
**डॉ. नीरज वर्मा**
विभागाध्यक्ष, कृषि विज्ञान
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना
*
संपादकः
**शैम्पी जैन एवं संजीव कु. सिंह**
शिक्षण सहायक
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना
*
सह–संपादकः
**डॉ. रमा शर्मा**
**अयोध्या प्रसाद पाण्डेय**
**आशुतोष गुप्ता**
**सात्विक सहाय बिसारिया**
शिक्षण सहायक
ए.के.एस. विश्वविद्यालय,सतना
*
ग्राफिक डिजाइनिंग
**आशीष खरे**
टाइपिंग एडीटिंग
**संजय बुनकर**

# विंध्याचल कृषि

एकेएस विश्वविद्यालय सतना
का मुख पत्र

AKS University
SATNA

श्री बी.पी.सोनी
कुलाधिपति

# संदेश

मध्यप्रदेश के आर्थिक विकास में कृषि तथा पशुपालन की महत्वपूर्ण भूमिका है। शासन स्तर पर कृषि की नवीन तकनीक किसानों तक पहुंचाने के काफी प्रयास किए गए हैं, लेकिन अभी भी इस दिशा में बहुत काम करना बाकी है। कृषि की नवीनतम तकनीकियों को मध्यप्रदेश के किसानों तक पहुंचाने के उद्देश्य से 23-25, फरवरी, 2020 को द्वितीय एग्रीटेक मध्यपद्रेश (किसान विज्ञान मेला-2020) का आयोजन एकेएस विश्वविद्यालय, सतना कर रहा है जिसमें भारी संख्या में किसान, प्रसार कार्यकर्ता, छात्र-छात्राएं, स्वयंसेवी संस्थाएं तथा विभिन्न राज्यों के कृषि वैज्ञानिक भाग लेने आ रहे हैं। कृषि की नवीनतम तकनीकों को किसानों तक पहुंचाने के लिए विश्वविद्यालय एक पत्रिका 'विंध्याचल कृषि' का भी प्रकाशन कर रहा है। यह एक सराहनीय कदम है।

मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि 'एग्रीटेक मध्यपद्रेश-2020 किसानों को कृषि की उन्नत तकनीक संबंधी जानकारी उपलब्ध करायेगा तथा 'विन्ध्याचल कृषि' उनके लिए एक मार्ग-दर्शिका का काम करेगी।

मैं एग्रीटेक मध्यप्रदेश तथा विंध्याचल कृषि की सफलता की कामना करता हूँ तथा विश्वविद्यालय के कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संकाय को इस पुनीत आयोजन हेतु हार्दिक बधाई देता हूँ।

बी.पी.सोनी

AKS University
SATNA

इंजी. अनंत कुमार सोनी
प्रो चांसलर एवं चेयरमैन

# संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि एकेएस विश्वविद्यालय का कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संकाय, दिनांक- 23 से 25 फरवरी तक द्वितीय एग्रीटेक मध्यप्रदेश किसान विज्ञान मेला-2020 का आयोजन करने जा रहा है जिसमें भारी संख्या में किसान, वैज्ञानिक, प्रसार कार्यकर्ता, छात्र-छात्राएं व कृषि बीज तथा यंत्र आपूर्ति कर्ता भाग लेंगे। इस अवसर पर विश्वविद्यालय, 'विंध्याचल कृषि' नामक पत्रिका का भी प्रकाशन करने जा रहा है। इस पत्रिका में खेती बाड़ी एवं उन्नत कृषि के सभी आयामों को समुचित स्थान दिया गया है।

कृषि की नवीनतम तकनीकों को किसानों तक पहुंचाने में किसान मेला का आयोजन तथा कृषि पत्रिका का प्रकाशन अपने आप में एक व्यवहारिक एवं प्रभावी कदम होगा। इस मेले का मुख्य आकर्षण कृषि तथा उद्यान प्रदर्शनी, किसान गोष्ठी तथा किसान ज्ञान प्रतियोगिता होगी, जिसके माध्यम से किसान अपनी समस्याओं का सही समाधान प्राप्त कर सकेंगे तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होगी।

मैं इस एग्रीटेक मध्यप्रदेश तथा विंध्याचल कृषि की वांछित सफलता की आकांक्षा करता हूँ तथा कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संकाय को किसान विज्ञान मेला 2020 को और अधिक आकर्षक बनाने हेतु तमाम अन्य आयोजनों के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ और यह भी आशा करता हूँ कि किसानों के समक्ष जलवायु में परिवर्तन के साथ-साथ कृषि में बढ़ती हुई चुनौतियों का समाधान खोजने में एकेएस विश्वविद्यालय के कृषि वैज्ञानिक अवश्य सफल होंगे।

अनंत कुमार सोनी

AKS University
SATNA

प्रो. पी.के. बनिक
कुलपति

# संदेश

मध्यप्रदेश एक कृषि संपदा संपन्न राज्य है। यहां के अधिकांश लोगों की जीविका कृषि एवं पशुपालन पर आधारित है। अतः आम लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए हमें कृषि और पशुपालन को वैज्ञानिक तौर-तरीके से विकसित करना होगा।

मुझे यह जानकर अत्यंत हर्ष की अनुभूति हो रही है कि एकेएस विश्वविद्यालय, सतना 'द्वितीय एग्रीटेक मध्यप्रदेश किसान विज्ञान मेला-2020' का आयोजन करने जा रहा है, जिसमें कृषि प्रदर्शनी, उद्यान प्रदर्शनी, किसान ज्ञान प्रतियोगिता तथा कृषक संगोष्ठी मुख्य आकर्षण के केन्द्र होंगे। इस मेले में भारी संख्या में किसान, प्रसार कार्यकर्ता, वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान के छात्र तथा बीज एवं यंत्र विक्रेता एक मंच पर आकर कृषि की समस्याओं पर विचार करेंगे। इस अवसर पर विश्वविद्यालय विन्ध्याचल कृषि नामक किसानोपयोगी पत्रिका का प्रकाशन भी कर रहा है जो कृषि विकास हेतु एक कारगर प्रयास है। आशा है कि एग्रीटेक मध्यप्रदेश तथा कृषि पत्रिका किसानों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होगी जिससे खेती के नए तौर-तरीकों के साथ उनके चेहरे पर मुस्कान होगी।

मैं द्वितीय एग्रीटेक मध्यप्रदेश तथा विन्ध्याचल कृषि की सफलता हेतु अपनी हार्दिक शुभकामना देता हूँ तथा इसके आयोजक डॉ0 नीरज वर्मा विभागाध्यक्ष कृषि विज्ञान विभाग को बधाई देता हूँ।

पी.के. बनिक

AKS University
SATNA

डॉ. आर.एस. त्रिपाठी
प्रतिकुलपति (अकादमिक)

# संदेश

मध्यप्रदेश की अधिकांश आबादी कृषि पर निर्भर है जो गाँवों में बसती है। इतनी बड़ी आबादी का विकास उनके जीविकोपार्जन के पेशे कृषि के विकास से ही संभव होगा। कृषि को विकसित करने हेतु हमें कृषि की नवीन प्रौद्योगिकियों को किसानों तक पहुँचाना होगा। इस पवित्र कार्य के संपादन हेतु एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.) एग्रीटेक मध्यप्रदेश का आयोजन तथा एक किसानोपयोगी पत्रिका 'विंध्याचल कृषि' का प्रकाशन करने जा रहा है जो एक प्रशंसनीय कार्य है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह किसान विज्ञान मेला तथा पत्रिका किसानों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होगी।

मैं द्वितीय एग्रीटेक मध्यप्रदेश तथा विंध्याचल कृषि की सफलता की कामना करता हूँ तथा कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संकाय की आयोजन समिति को बधाई देता हूँ।

आर.एस. त्रिपाठी

AKS University
SATNA

डॉ. हर्षवर्धन
प्रतिकुलपति (विकास)

# संदेश

अत्यंत प्रसन्नता का विषय है कि कृषि विज्ञान एवं तकनीकी संकाय, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना द्वारा तीन दिवसीय 'द्वितीय एग्रीटेक मध्यप्रदेश किसान विज्ञान मेला 2020' का आयोजन किया जा रहा है एवं इस अवसर पर पत्रिका 'विंध्याचल कृषि' का भी प्रकाशन किया जा रहा है।

विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित 'एग्रीटेक मध्यप्रदेश' कार्यक्रम अत्यधिक सराहनीय कार्य है, जिसके माध्यम से किसानों की कृषि संबंधी समस्याओं का भी समाधान किया जायेगा।

आशा है पत्रिका में कृषि से सम्बंधित जानकारियों के साथ मध्यप्रदेश शासन द्वारा कृषि विकास एवं कृषक कल्याण हेतु चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं का भी समावेश होगा एवं इसमें प्रकाशित जानकारी कृषकों तथा कृषि व्यवसाय से जुड़े लोगों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

मेरी तरफ से मेले के सफल आयोजन एवं पत्रिका के प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं।

हर्षवर्धन

AKS University
SATNA

डॉ. एस.एस.तोमर
अधिष्ठाता, कृषि संकाय

# संदेश

कृषि हमारी अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। भारत शुरूआत से ही कृषि प्रधान देश रहा है। आज भी भारत की आधी से अधिक आबादी कृषि से जुड़ी है। इस कारण आज भी भारत कृषि के क्षेत्र में दुनिया भर में दूसरे स्थान पर है।

कृषि की आधुनिक तकनीकियों एवं विचारों को किसान भाइयों तक पहुंचाने के लिए 23-25, फरवरी, 2020 को द्वितीय एग्रीटेक मध्यप्रदेश किसान विज्ञान मेला-2020 एकेएस विश्वविद्यालय, सतना में आयोजित किया जा रहा है, जिसमें अधिक से अधिक किसान भाई, कृषि वैज्ञानिक, स्वयंसेवी संस्थाएं, विद्यार्थी तथा विभिन्न राज्यों के कृषि वैज्ञानिक भाग लेंगे। कृषि की आधुनिक तकनीकों, विचारों व सुझावों को किसान भाइयों तक विश्वविद्यालय एक पत्रिका 'विंध्याचल कृषि' का भी द्वितीय संस्करण प्रकाशित कर रहा है। जो एक सराहनीय कदम है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि एग्रीटेक मध्यप्रदेश-2020 किसानों को उन्नत तकनीक संबंधी जानकारी उपलब्ध कराएगा। विंध्याचल कृषि की सफलता की कामना करता हूँ साथ ही कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संकाय को इस पावन आयोजन हेतु हार्दिक बधाई देता हूँ।

एस.एस.तोमर

AKS University
SATNA

प्रो. आर.एन.त्रिपाठी
ओ.एस.डी.

# संदेश

विंध्य क्षेत्र में स्थित एकेएस विश्वविद्यालय के द्वारा आयोजित किसान विज्ञान मेला-2020 यहां के किसानों के लिए अत्यंत लाभप्रद होगा। इस किसान विज्ञान मेला 2020 में किसानों को आधुनिक कृषि संबंधी जानकारी दी जाएगी जिससे वे अपने फसल उत्पादन में वृद्धि कर सकेंगे।

इस किसान विज्ञान मेला में मृदा परीक्षण, पशुपालन, बकरी पालन, रेशम कीट पालन, मधुमक्खी पालन, मछली पालन इत्यादि कृषि के आयामों के लाभ के बारे में प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिकों द्वारा बताया जाएगा। इस मेले में भारी संख्या में किसान उपस्थित होंगे एवं लाभप्रद होंगे। इस कार्यक्रम में विंध्यांचल कृषि पत्रिका का भी प्रकाशन किया जाएगा जो किसानों की आय को दोगुना बढ़ाने के उद्देश्य को पूरा करने में सहयोग प्रदान करेगा।

मैं द्वितीय एग्रीटेक किसान विज्ञान मेला 2020 एवं विंध्याचल कृषि की सफलता की कामना करता हूँ।

आर.एन.त्रिपाठी

AKS University
SATNA

डॉ. आर.एस.पाठक
अधिष्ठाता, कृषि तकनीकि संकाय

# संदेश

यह बड़े हर्ष का विषय है कि हमारे विश्वविद्यालय में कृषि एवं तकनीकी संकाय के कृषि विज्ञान विभाग के सौजन्य से एक किसान विज्ञान मेला-2020 का आयोजन विश्वविद्यालय परिसर में संपन्न कराया जा रहा है। इस मेले में कृषि विशेषज्ञों द्वारा विभिन्न विषयों में जानकारी प्रदान की जायेगी। इस किसान विज्ञान मेले से आसपास तथा विभिन्न राज्यों से आये हुए किसान लाभान्वित होंगे। इस आयोजन की सफलता के लिए मेरी तरफ से हार्दिक शुभकामनाएं।

आर.एस.पाठक

AKS University
SATNA

प्रो. के.आर. मौर्य
निदेशक, उद्यान विभाग

# संदेश

यह जानकर मुझे अपार हर्ष हो रहा है कि कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संकाय, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना दिनांक 23 से 25 फरवरी, 2020 तक द्वितीय एग्रीटेक मध्य प्रदेश (किसान विज्ञान मेला-2020) का आयोजन विश्वविद्यालय मुख्यालय, शेरगंज में किसान कल्याण एवं कृषि विकास विभाग के साथ मिल कर करने जा रहा है।

इस मेले में मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखंड, हरियाणा तथा राजस्थान के किसान भारी संख्या में भाग लेने आ रहे हैं। यह मेला उन्हें आपस में मिलने-जुलने और अपनी जानकारियों को साझा करने के लिए अच्छा मौका प्रदान करेगा।

इस मेले में कृषि प्रदर्शनी, उद्यान प्रदर्शन, पशु प्रदर्शनी के अतिरिक्त किसान ज्ञान प्रतियोगिता, किसान गोष्ठी, तथा विभिन्न कंपनियों के स्टाल आकर्षण के केन्द्र होंगे। यह मेला किसानों के जीवन में खुशहाली बिखेरेगा। ऐसी मेरी धारणा है।

मैं इस किसान मेले की सफलता की कामना करता हूँ।

के.आर. मौर्य

AKS University
SATNA

डॉ. नीरज वर्मा
विभागाध्यक्ष, कृषि संकाय

# संदेश

विंध्य क्षेत्र के किसानों के आर्थिक विकास हेतु एकेएस विश्वविद्यालय, सतना द्वारा तीन दिवसीय किसान विज्ञान मेला-2020 (23-25 फरवरी) का आयोजन किया जा रहा है इस किसान विज्ञान मेला में भारी संख्या में किसानों की उपस्थिति होगी जो उनके लिये अत्यंत ही लाभप्रद होगी। इस कार्यक्रम में किसान गोष्ठी भी होगी इसमें किसानों की आय को दोगुना करने के तरीके विभिन्न कृषि वैज्ञानिकों द्वारा दिए जाएंगे।

विंध्य क्षेत्र के किसान जलवायु में हो रहे परिवर्तन से कैसे अपनी फसल के उत्पादन को प्रभावित न होने दें इस पर भी चर्चा होगी। इसके लिए इस कार्यक्रम में विंध्याचल कृषि नामक पत्रिका प्रकाशित की जा रही है जो किसानों के लिए अत्यंत लाभप्रद होगी।

मैं आशा एवं कामना करता हूँ कि विंध्याचल कृषि पत्रिका अपने उद्देश्यों को अवश्य पूरा करेगी।

नीरज वर्मा

AKS University
SATNA

संजीव कुमार सिंह
सहा. प्राध्यापक

# संदेश

विंध्याचल कृषि बहुपयोगी कृषि पत्रिका द्वितीय अंक निश्चित रूप से मध्यप्रदेश के किसानों विशेष रूप से विंध्याचल के किसानों के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य किसानों की आय में वृद्धि कैसे हो इस विषय पर विभिन्न विषय विशेषज्ञों के मत उनके तकनीकी लेखों के माध्यम से प्रकाशित कर रहे हैं। विंध्याचल क्षेत्र में किसान मुख्य रूप से खरीफ एवं रबी ऋतु की फसलें ही लेते हैं जिसका मुख्य कारण सिंचाई जल की कमी, भूमि का समतल न होना और पथरीली मृदा का होना है। इन सभी कारणों को ध्यान में रखकर इस पत्रिका में कृषि से संबंधित नई तकनीकी एवं परंपरागत खेती दोनों का सम्मिश्रण करके तथा असिंचित क्षेत्र अधिक होने के बाद भी सफल फसल उत्पादन कैसे किया जाय यह सभी तकनीकी ज्ञान इस पत्रिका में प्रकाशित किया जा रहा है जो किसानों के लिए लाभदायक एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि विंध्याचल कृषि का द्वितीय प्रकाशन विंध्य किसानों के लिए उपयोगी होगा।

संजीव कुमार सिंह

AKS University
SATNA

शैम्पी जैन
सहा. प्राध्यापक

# संदेश

भारत एक कृषि प्रधान देश है. इस देश की लगभग 70 प्रतिशत आबादी गावं में रहती है एवं उनका जीवन - यापन कृषि पर ही निर्भर करता है। देश की बढ़ती आबादी को उचित मात्रा तथा उच्च गुणवत्ता वाले खाद्य सामग्री उपलब्ध कराना कृषि विभाग के लिए एक चुनौती का विषय है। बेहतर कृषि के लिए अच्छे किस्म की कच्ची सामग्री का होना अतिआवश्यक होता है साथ ही साथ आदमी को अपनी आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए खर्च भी ज्यादा करना पड़ता है। हर आदमी की आवश्यकता पूरी हो इसके लिए कृषि क्षेत्र में अनाज का उत्पादन अधिक होना अतिआवश्यक है।

हमारे देश के बहुत सारे वैज्ञानिक कृषि के क्षेत्र में प्रयोग कर रहें है तथा अच्छी-अच्छी तकनीक दे रहे हैं जिससे कि कृषक की आमदनी बढ़ सके। अच्छी फसल के उत्पादन के लिए हर एक कृषक को बेहतर तकनीक के बारे में जानकारी होना अति आवश्यक है। अभी के दौर में समन्वित कृषि प्रणाली फसल के बेहतर उत्पादन के लिए एक बेहतर तकनीकी हो सकती है।

विंध्याचल कृषि पत्रिका में हमारे कृषि वैज्ञानिकों के द्वारा कृषि के विभिन्न पहलु के बारे में जिक्र किया गया है, जो कि हरेक कृषक के लिए मूल्यवान तथा उपयोगी साबित हो सकता है। इस पुस्तिका में लिखे गए हरेक लेख में कृषि के अलग - अलग पहलू के बारे में सरल भाषा में विवरण दिया गया है।

अतः प्रत्येक कृषक भाइयों से अनुरोध है की इस पुस्तिका को अच्छी तरह पढ़ें क्योंकि यहाँ पर लिखा गया हरेक लेख आपके खेत से बेहतर अनाज उत्पादन करने में कारगर साबित हो सकता है।

शैम्पी जैन

# अनुक्रमणिका


| क्र. | विषयवस्तु | पेज नं. |
|---|---|---|
| 1. | **कृषि प्रौद्योगिकी और नवाचार** (लवीना शर्मा एवं दीपक पाल) | 01 |
| 2. | **बटन मशरूम की खेती** (अखिलेश जागरे, हिमांशु शेखर सिंह एवं राजेन्द्र सिंह नेगी) | 02 |
| 3. | **मसालों का हमारे जीवन में महत्व एवं मसाले का सुरक्षित भण्डारण** (सात्विक सहाय बिसारिया एवं संतोष कुमार) | 04 |
| 4. | **कार्बनिक खेती में जैव उर्वरकों का योगदान** (लक्ष्मण कुमार सोनी) | 06 |
| 5. | **हल्दी में कीट एवं रोग नियंत्रण** (सात्विक सहाय बिसारिया एवं संतोष कुमार) | 09 |
| 6. | **ई–नाम/ई–एग्रीमार्केट** (वीरेन्द्र कुमार विश्वकर्मा) | 11 |
| 7. | **आम का कैनॉपी (छत्र) प्रबंधन** (आदित्य कुमार, अमित सिंह तिवारी, संजीव कुमार सिंह एवं शिवांगी तिवारी) | 13 |
| 8. | **आम और अमरूद के उत्पादन में बोरॉन का योगदान**<br>(आदित्य कुमार, अमित सिंह तिवारी, संजीव कुमार सिंह एवं शिवांगी तिवारी) | 15 |
| 9. | **बीज उपचार की विधियाँ एवं फायदे** (अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, राजबीर सिंह एवं नीरज वर्मा) | 16 |
| 10. | **मृदा अपरदन के कारण और उपाय** (अमित सिंह तिवारी, संजीव कुमार सिंह एवं अतुल नामदेव) | 18 |
| 11. | **मधुमक्खियों की बीमारी एवं रोकथाम** (शिवांगी तिवारी एवं आदित्य कुमार) | 21 |
| 12. | **मधुमक्खी पालन और उससे जुड़ी आवश्यक जानकारी** (शिवांगी तिवारी एवं आदित्य कुमार) | 23 |
| 13. | **मक्के की खेती** (पूनम कुशवाहा एवं बिनीता देवी) | 25 |
| 14. | **जैविक खेती** (शीलेन्द्र कुमार उपाध्याय) | 27 |
| 15. | **अनाज व बीज का सुरक्षित भंडारण** (अजीत सराठे एवं डूमर सिंह) | 28 |
| 16. | **ग्लेडियोलस की बागवानी** (अभिषेक सिंह एवं पुष्पेन्द्र देवांगन) | 32 |
| 17. | **मूंग की बसंतकालीन उन्नत खेती कैसे करें, जानिए उपयोगी एवं आधुनिक तकनीक**<br>(धीरेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी, राजवीर सिंह एवं अयोध्या प्रसाद पाण्डेय) | 34 |
| 18. | **घर के पिछवाड़े में मुर्गी पालन: बेहतर आजीविका का स्त्रोत**<br>(मनीष मेश्राम, रामेश्वर पटले, नेहा पटले एवं राफिया आमिन) | 37 |
| 19. | **अंकुरण परीक्षण के माध्यम से उत्पादन लागत में कमी लायें** (रुची गुप्ता) | 39 |
| 20. | **पड़त भूमि में गरीबो के फल बेर की बागवानी**<br>(आदित्य कुमार, अमित सिंह तिवारी, संजीव कुमार सिंह एवं शिवांगी तिवारी) | 41 |
| 21. | **हरी खाद एक वरदान** (अतुल कुमार सिंह) | 44 |

| | | |
|---|---|---|
| 22. | **टमाटर के प्रमुख कीट, रोग एवं उनका नियंत्रण** (अखिलेश जागरे, राजेन्द्र सिंह नेगी, हिमांशु सिंह एवं अनुभव बागरी) | 47 |
| 23. | **किसानों के लिए वरदान है ''अजोला'' की खेती** (सात्विक सहाय बिसारिया एवं आशुतोष गुप्ता) | 50 |
| 24. | **खेती उजाड़ता कृषि प्रधान भारत** (सात्विक सहाय बिसारिया एवं आशुतोष गुप्ता) | 52 |
| 25. | **किसानों की प्रगति में कठिनाइयाँ** (आशुतोष कुमार, बिनीता देवी एवं अतुल कुमार सिंह) | 54 |
| 26. | **गन्ने की पेड़ी का कुशल प्रबन्धन** (आशुतोष गुप्ता एवं सात्विक सहाय बिसारिया) | 57 |
| 27. | **बीज उत्पादन के शस्य सिद्धांत, जानिए किसान अपने खेत में बीज कैसे तैयार करें** (राजबीर सिंह, अयोध्या प्रसाद पाण्डेय एवं डी.पी. चतुर्वेदी) | 59 |
| 28. | **स्वास्थ्य वर्धक तुलसी की खेती: कम पूँजी में अधिकतम लाभ** (राफिया अमीन) | 61 |
| 29. | **रजनीगंधा की व्यावसायिक खेती** (पूर्णिमा सिंह सिकरवार एवं बालाजी विक्रम) | 62 |
| 30. | **किसानों के लिए उपहार: बागवानी फसलों के रोगों की ट्राइकोडर्मा (बायोएजेंट) कवक के द्वारा रोकथाम** (ज्योति पाण्डेय) | 64 |
| 31. | **कुंदरु की खेती से कम लागत में अधिक लाभ** (बालाजी विक्रम एवं पूर्णिमा सिंह सिकरवार) | 66 |
| 32. | **कुदरत का करिश्मा–कटहल** (बिनीता देवी, आशुतोष कुमार एवं रमा शर्मा) | 68 |
| 33. | **पौष्टिक गुणों से भरपूर आंवला कैन्डी** (बालाजी विक्रम एवं पूर्णिमा सिंह सिकरवार) | 70 |
| 34. | **गन्ने में चीनी की मात्रा बढ़ाने की तकनीकियां** (आशुतोष गुप्ता एवं सात्विक सहाय बिसारिया) | 71 |
| 35. | **चने की फसल का कीटों एवं रोगों से बचाव** (आदित्य कुमार, डूमर सिंह एवं शिवांगी तिवारी) | 72 |
| 36. | **बिना मिट्टी के भी उगाए जा सकते हैं फल और सब्जियां** (संतोष कुमार) | 74 |
| 37. | **पीड़कनाशियों के अवशेषी प्रभाव** (डूमर सिंह) | 76 |
| 38. | **ज्वार फसल के महत्व एवं उपयोग** (कुमार मंगलम मिश्रा) | 78 |
| 39. | **संकर धान का बीज उत्पादन कैसे करें** (राजवीर सिंह, अयोध्या प्रसाद पाण्डेय एवं धीरेन्द्र चतुर्वेदी) | 79 |
| 40. | **वन, पर्वत और नदियाँ** (सुधांशु नारायण मिश्रा) | 80 |
| 41. | **कविता** (सुषमा सिंह भदोरिया) | 80 |
| 42. | **अपने पुरखों की धरोहर को बचाना वक्त का तकाजा है** (बाबूलाल दाहिया) | 81 |
| 43. | **मृदा अपरदन को रोक भूमि को उपजाऊ बनाये रखे** (अनुष्का कुम्मलवार) | 82 |
| 44. | **भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुओं का योगदान** (नवनीत राज राठौर एवं लवकेश कुमार सोनी) | 83 |
| 45. | **जाने कौन से महीने में किन सब्जियों की खेती करें** (सात्विक सहाय बिसारिया एवं आशुतोष गुप्ता ) | 84 |
| 46. | **जायद में तिल की खेती** (लवकेश कुमार सोनी एवं नवनीत राज राठौर) | 85 |

# कृषि प्रौद्योगिकी और नवाचार

**लवीना शर्मा एवं दीपक पाल**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

भारत दुनिया के 118 मिलियन से अधिक किसानों का घर है। भारत विभिन्न कृषि–जिन्सों (अनाज, दालें, मसाले, सब्जियां और फल) का उत्पादन करने के लिए शीर्ष देशों में आता है। इन तथ्यों के बावजूद, हाल ही में प्रकाशित एक लेख के अनुसार, भारत में हर दिन 190.7 मिलियन लोग भूखे रहते हैं। यह संख्या आगे भी बढ़ सकती है क्योंकि संयुक्त राष्ट्र के एक अनुमान के अनुसार 2050 तक जनसंख्या मौजूदा 1.3 बिलियन से 1.7 बिलियन होने की उम्मीद है। यह समस्या और भी विकट हो सकती है अगर हम अन्य मुद्दों पर विचार करें जैसे कि वित्तीय संसाधनों की कमी, मौसम परिवर्तन आदि।

भारतीय कृषि भारत की मातृ अर्थव्यवस्था के रूप में बनी हुई है। हजारों वर्षों से, भारत की सभ्यता अपनी कृषि अर्थव्यवस्था की नींव पर बनी और विकसित हुई है। अतीत में, भारत ने बड़े पैमाने पर भुखमरी, अकाल और भूख का सामना किया है लेकिन 20 वीं शताब्दी के अंत तक खाद्यान्न का शुद्ध निर्यातक बन गया। यह भारतीय कृषि की सफलता की कहानियों में से एक है। 21 वीं सदी की शुरुआत में, भारत लोगों की आजीविका गतिविधियों के मामले में एक ग्रामीण और कृषि प्रधान देश रहा है। हालाँकि, अभी भी भारतीय कृषि की संभावनाओं का दोहन किया जा रहा है।

कई अध्ययनों और सर्वेक्षणों से पता चला है कि लगभग 30% किसानों ने खेती में कुछ नई प्रथाओं को अपनाया है। वर्ष 2019 तक, कृषि वास्तव में न केवल एक कुशल, पर्यावरण के अनुकूल उत्पादन प्रणाली बन गई है, जो तेजी से बढ़ती आबादी की बुनियादी मांग को पूरा करने में सक्षम है। फसलों, पशुधन और मत्स्य पालन की उत्पादकता में सुधार, बंजर भूमि और तराई बनाने की गुंजाइश के लिए व्यापक संभावनाएं हैं। फसल उत्पादन, देश के व्यापक सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन के लिए एक प्रमुख शक्तिशाली साधन भी बन गया है, जिसमें हर व्यक्ति के जीवन की गुणवत्ता में सुधार भी शामिल है। फार्म मशीनीकरण, कृषि आधारित उद्योगों और ग्रामीण विकास में उच्च निवेश के लिए जबरदस्त गुंजाइश है और विविधीकरण और व्यापार के माध्यम से कृषि वस्तुओं के निर्यात के लिए विशाल अवसर हैं।

भोजन की कमी और निर्वाह प्रकृति के परिदृश्य से, कृषि क्षेत्र अब व्यावसायीकरण और खाद्य अधिशेष की ओर अग्रसर है। इस बदलाव को सुविधाजनक बनाने के लिए कृषि के अन्य उप–क्षेत्र जैसे प्रसंस्करण, विपणन, बुनियादी ढांचा और निर्यात विकास अधिक महत्वपूर्ण हैं। अब भारतीय कृषि अधिक कुशल तरीके, तकनीक, श्रम की बचत और टिकाऊ उत्पादन के तरीके अपना रही है। भविष्य में, जैव प्रौद्योगिकी, नैनो–प्रौद्योगिकी, सेंसर प्रौद्योगिकी, रोबोटिक्स और क्लाउड कंप्यूटिंग जैसे फ्रंट साइंस भारतीय कृषि को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

समाधान खोजने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने अतीत में बहुत योगदान दिया है और यह भविष्य में ऐसा कर सकता है, अगर और निवेश किया जाए। इससे फसल में सुधार, पानी और उर्वरक का उपयोग, नए कीटनाशकों, फसल सुरक्षा के लिए गैर–रासायनिक दृष्टिकोण, फसल की कटाई के नुकसान में कमी, स्थायी पशुधन और समुद्री उत्पादन में मदद मिलेगी।

इसे दूर करने के लिए, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग, ब्लॉक चेन, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, डेटा एनालिटिक्स जैसी नई युग की तकनीकों को सर्वोत्तम उपलब्ध संसाधनों के रूप में देखा जाता है। कृषि में प्रौद्योगिकियों का उपयोग करने वाले स्टार्टअप को एग्री–टेक के रूप में जाना जाता है। आम तौर पर एग्री–टेक स्टार्टअप खेती की प्रक्रियाओं को अधिक कुशल बनाने और उपज और उत्पादकता में सुधार के लिए बेहतर निर्णय लेने के लिए अत्याधुनिक तकनीकों का उपयोग करते हैं।

2020 तक, ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लगभग 315 मिलियन भारतीय इंटरनेट से जुड़ जाएंगे। सरकार किसान की आय में सुधार लाने पर भी केंद्रित है और कृषि–तकनीक स्टार्ट–अप इस पहल में एक प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं। कृषि क्षेत्र के पास नवीन तकनीकी समाधानों के साथ उद्यमियों के लिए एक बड़ा अवसर है। पहले से ही एग्री–टेक स्टार्ट–अप का अभिनव समाधानों पर काम कर रहा है जो जमीन पर प्रभाव पैदा कर रहे हैं। इन स्टार्टअप्स को न केवल किसानों से अच्छी प्रतिक्रिया मिल रही है, बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र में भी मान्यता मिल रही है।

❖❖❖

# बटन मशरूम की खेती

**अखिलेश जागरे, हिमांशु शेखर सिंह एवं राजेन्द्र सिंह नेगी**
**दीनदयाल शोध संस्थान, कृषि विज्ञान केन्द्र, मझगवां, सतना (म.प्र.)**

**परिचयः–** भारत में मशरूम की खेती का प्रचलन दिन प्रतिदिन काफी बढ़ता जा रहा है। जैसे–जैसे मनुष्य आधुनिक युग की तरफ अग्रसर हो रहा है, अपने शरीर के लिये पोषक तत्व युक्त, गुणकारी, पाचनशील एवं स्वादिष्ट सब्जी भी अपने भोजन में लेना पसंद कर रहा है। सदियों से खुम्ब (मशरुम) ने मनुष्य को आकर्षित किया है। इनके सुन्दर फलनकाय सहज ही हमारा ध्यान खींच लेते हैं। मशरुम एक प्रकार का मांसल कवक है जो अत्यंत स्वादिष्ट एवं पौष्टिक युक्त शाकाहारी भोजन है। प्रकृति में पाये जाने वाले सभी खुम्ब खाने योग्य नहीं हैं, उनमें से कुछ विषैले भी होते हैं। अभी तक विश्व भर में 1600 से अधिक खुम्ब की किस्में मिल चुकी हैं जिनमें से लगभग 100 प्रकार के मशरुम हमारे भोजन में सम्मिलित हो चुके हैं। भारतवर्ष एवं अन्य सभी खुम्ब उत्पादक देशों में व्यावसायिक रुप से उगाए जाने वाले खुम्बों में बटन मशरुम (अगेरिकस बाइस्पोरस) ही सबसे अधिक उगाया जाता है। अगेरिकस की एक अन्य प्रजाति "अगेरिकस बिटोरक्वीस" भी व्यावसायिक रुप से उगायी जाती है परन्तु उत्तर भारत में बटन मशरुम की खेती के लिए "अगेरिकस बाइस्पोरस" की ही सिफारिश की जाती है क्योंकि यह प्रजाति अधिक लोकप्रिय है।

**मशरूम की पौष्टिकता एवं औषधीय गुणः** मशरूम एक पूर्ण स्वास्थ्यवर्धक है जो सभी लोगों, बच्चों से लेकर वृद्ध तक के लिए आवश्यक है। इसमे प्रोटीन, रेशा, विटामिन तथा खनिज लवण प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। ताजे मशरूम में 80–90 प्रतिशत पानी, 12–35 प्रतिशत प्रोटीन, 26–82 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट एवं 8–10 प्रतिशत रेशा होता है। मशरूम शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता को बढाता है जिससे स्वास्थ्य ठीक रहता है। यह कैंसर की सम्भावना को कम करता है, कोलेस्ट्राल को कम करता है एवं रक्त शर्करा को सन्तुलित रखता है।

**बटन मशरूम उगाने का समयः** कृत्रिम रुप से विभिन्न वातावरण में इसे पूरे साल उगाया जा सकता है और इसकी चार फसलें ले सकते हैं। वैसे आमतौर पर बटन मशरुम (अगेरिकस बाइस्पोरस) को अक्टूबर से मार्च के बीच उगाया जाता है और तीन–तीन महीने की अवधि की दो फसलें ली जाती हैं। बटन मशरुम के कवक जाल की वृद्धि के लिए 22–25 डिग्री से. तापमान सबसे अनुकूल होता है जबकि फलनकाय बनने के लिए अनुकूलतम तापमान 14–18 डिग्री से. होता है तथा 14 डिग्री से. के नीचे तापमान पहुँचने पर कवक जाल और फलनकाय दोनों का बनना कम हो जाता है। 80–85 प्रतिशत सापेक्षिक आर्द्रता मशरुम वृद्धि के लिए आवश्यक है।

**कम्पोस्ट बनाने की विधिः–** बटन मशरूम की खेती एक विशेष प्रकार की खाद पर ही की जाती है जिसे कम्पोस्ट कहते हैं। मशरूम कम्पोस्ट तैयार करने के लिए किसी विशेष मशीनरी या यन्त्र की जरूरत नही पड़ती है। कम्पोस्ट बनाने में निम्नलिखित सामग्री काम में लायी जाती हैः–

गेंहूँ का भूसा 1000 किलोग्राम, अमोनियम सल्फेट, कैल्सियम अमोनियम नाईट्रेट– 27 किलोग्राम, सुपर फास्फेट– 10 किलोग्राम, यूरिया– 17 किलोग्राम, गेहूं का चोकर– 100 किलोग्राम एवं जिप्सम– 36 किलोग्राम कम्पोस्ट तैयार होने में करीब 28–30 दिन का समय लगता है। सबसे पहले समतल एवं साफ फर्श पर भूसे को 2 दिन तक पानी डाल कर गीला किया जाता है। इस अवस्था में भूसे में नमी 75 प्रतिशत होनी चाहिए और भूसा अधिक गीला नही होना चाहिए। 2 दिन तक पानी गिराने के बाद फिर भूसे को तोड़ कर देखें, भूसा अन्दर से सूखा न हो तो ठीक है अन्यथा सूखा हो तो फिर से पानी मिलाएं। इस गीले भूसे में जिप्सम के अलावा सारी सामग्री को मिला कर उसे थोड़ा और गीला करें। इस बात का ध्यान रखें कि पानी उसमें से बाहर न निकले। फिर भूसे से एक मीटर चौड़ा एवं तीन मीटर तक लम्बा (कम्पोस्ट की मात्रा के अनुसार) और करीब डेढ़ मीटर ऊंचा चौकोर ढ़ेर बना लें। ढ़ेर को 2–3 दिन तक ऐसे ही पड़ा रहने दें। 3 दिन बाद ढ़ेर की पलटाई शुरू करें एवं ध्यान रखें कि ढ़ेर के अन्दर का हिस्सा बाहर और बाहर का हिस्सा अन्दर आ जाए। पलटाई करने का विवरण निम्नलिखित दिया गया हैः–

**दिवस पलटाई विवरणः**

**0–2 दिन–** भूसे को गीला करना, जिप्सम को छोड़कर सारी सामग्री मिलाकर पानी छिड़क कर उसका ढ़ेर बना लें।

**तीसरा दिन–** पहली पलटाईः ढेर को इस तरह पलटें कि ऊपर का हिस्सा नीचे और नीचे का हिस्सा ऊपर हो जाए इस पर 0.1 प्रतिशत की दर से डेल्टामेथ्रिन दवा का छिड़काव करना चाहिए ताकि मक्खियां न बैठें और आसपास फोर्मेलिन (6 प्रतिशत) घोल का छिड़काव करें।

**छठे दिन–** दूसरी पलटाईः ढेर की दूसरी बार पलटाई करें।

**नौवां दिन–** तीसरी पलटाईः जिप्सम को मिलाकर पलटाई करें एवं पुनः ढ़ेर बना दें।

**बारहवां दिन–** चौथी पलटाईः पलटाई करके फोर्मेलिन (6 प्रतिशत) घोल का छिड़काव करें।

**पन्द्रहवां दिन–** पांचवी पलटाई।

**अठारवां दिन–** छटी पलटाईः आस पास फोर्मेलिन (4 प्रतिशत) घोल

का छिड़काव करें।

**इक्कीसवां दिन–** सातवीं पलटाईः कम्पोस्ट को सूंघ कर देखें यदि अमोनिया की गंध आ रही हो तो पलटाई ठीक से करें।

**चौबीसवां दिन–** आठवीं पलटाईः इस पलटाई में अमोनिया की गंध बिलकुल नहीं होनी चाहिए और यदि है तो एक बार और एक दिन बाद फिर से पलटाई करें नहीं तो पैदावार कम और प्रभावित होती है। कम्पोस्ट में नमी की मात्रा देखने के लिए उसे मुट्ठी में ले कर दबाएं। यदि थोड़ा पानी उंगलियों के बीच नजर आये तो उपयुक्त है। यदि अधिक पानी रह गया है तो कम्पोस्ट को थोड़ा फैला दें जिससे अतिरिक्त नमी उड़ जाए।

**सत्ताईसवां दिन–** कम्पोस्ट खाद बीज मिलाने (स्पानिंग) के लिए तैयार है।

**अच्छे कम्पोस्ट के गुणः**

(1) कम्पोस्ट तैयार करने के लिए एक साल से अधिक पुराना भूसा प्रयोग नहीं करना चाहिए और प्रयोग में लाया जाने वाला भूसा बारिश में भीगा नहीं होना चाहिए। 8–10 सें. मी. लम्बाई का कटा भूसा एकदम सही रहता है।

(2) सही ढंग से तैयार कम्पोस्ट गहरे भूरे रंग की होती है और उसमें अमोनिया की दुर्गन्ध नहीं आती।

(3) कम्पोस्ट का पी. एच. मान लगभग उदासीन रहना चाहिए अर्थात 7 और 7.5 के बीच होना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में यह 8.0 से अधिक नहीं रहना चाहिए अन्यथा कवक जाल की वृद्धि के लिए हानिकारक होगा।

(4) कम्पोस्ट में जल की मात्रा 67–70 प्रतिशत की सीमा के भीतर रहनी चाहिए। मशरूम की वृद्धि के लिए 68 प्रतिशत जल की मात्रा सर्वथा उपयुक्त रहती है।

**बीजाई (स्पानिंग):** मशरूम का बीज ताजा, पूरी बढ़वार लिए एवं अन्य फफूंद से मुक्त होना चाहिए। बीज की मात्रा एक क्विंटल कम्पोस्ट में 0.75 से 1 किलोग्राम होनी चाहिए। इस बीज को कम्पोस्ट में अच्छी तरह मिलाकर या तो पोलीथिन शीट (6–8 इंच) या पोलीथिन की थैलियों (12 इंच) में भर दें। पोलीथिन की थैलियों को ऊपर से मोड़ कर बंद कर देना चहिए। थैलियां 8 किलोग्राम कम्पोस्ट खाद भरने के लिए उपयुक्त हो।

**अच्छे स्पान के गुणः** एक अच्छे स्पान में सफेद रंग का कवक जाल अच्छी तरह फैला होना चाहिए। एक महीने से अधिक पुराना स्पान प्रयोग नहीं करना चाहिए और अगर जरूरत हो तो इसका भण्डारण 5 डिग्री से. तापमान पर करना चाहिए। इसमें किसी भी प्रकार का संदूषक नहीं होना चाहिए अर्थात दूसरे सूक्ष्मजीवों से मुक्त होना चाहिए और क्षेत्र विशेष के लिए जिसकी संस्तुति की गई हो।

**कवक जाल का बननाः** बीजाई के पश्चात थैलियों को खुम्बी कक्ष में रख दें तथा इन पर पुराने अखबार बिछाकर पानी से भिगो दें। कमरे में पर्याप्त नमी बनाने के लिए कमरे के फर्श व दीवारों पर भी पानी छिडकें। इस समय कमरे का तापमान 22 से 26 डिग्री सेंन्टीग्रेड तथा नमी 80 से 85 प्रतिशत के बीच होनी चाहिए। अगले 15 से 20 दिनों में खुम्बी का कवक जाल पूरी तरह से कम्पोस्ट में फैल जाएगा और उसके बाद केसिंग की आवश्यकता होती है। इन दिनों खुम्बी को ताजा हवा नही चाहिए, अतः कमरे को बंद रखें।

**केसिंग करनाः**

**केसिंग के लिए उपयुक्त मिश्रण इस प्रकार है–**

1. एफ वाई एम या गोबर की खाद व दोमट मिट्टी (1:1)
2. एफ वाई एम या गोबर की खाद (2 साल पुरानी) व बटन मशरूम की खाद (1:1)
3. एफ वाई एम या गोबर की खाद (दो साल पुरानी), दोमट मिट्टी व बटन मशरूम की खाद (1:1:1)

उपरोक्त किसी भी एक मिश्रण को लें, परन्तु मिश्रण– 2 सर्वाधिक उपयुक्त एंव अधिक उपज देने वाला है। केसिंग मिट्टी का निर्जीवीकरण फोर्मेलिन (6 प्रतिशत) के घोल से करना चाहिए एवं उसे 48 घंटे तक 400 गेज की पारदर्शी पन्नी से ढककर रखना चाहिए. उसके बाद इसे खोलकर 24 घंटे तक फैलाकर रखें ताकि मिश्रण सूख जाए। स्पान रन कम्पोस्ट पर एक इंची मोटी परत इस केसिंग मिट्टी की लगनी चाहिए एवं पानी इस तरह छिडकें कि केवल केसिंग ही गीली हो। कमरे का तापमान 20 डिग्री से. से कम एवं नमी 70–90 प्रतिशत के बीच होनी चाहिए तथा साथ ही स्वच्छ हवा का आगमन होना चाहिए। केसिंग करने के लगभग 10–12 दिन के पश्चात इसमें छोटे छोटे मशरूम के अंकुरण बनने शुरू हो जाते हैं। इस समय से केसिंग पर 0.3 प्रतिशत कैल्सियम क्लोराइड का छिड़काव दिन में दो बार पानी के साथ करना चाहिए जिससे मशरूम अगले 5–7 दिनों में बढ़कर पूरा आकर ले लेते हैं तत्पश्चात इन्हें घुमाकर तोड़ लेना चाहिए। तोड़ने के बाद नीचे की मिट्टी लगे तने को चाकू से काटकर अलग कर दें। केसिंग लगाने के करीब 80 दिनों तक फसल प्राप्त होती रहती है।

**फलनकाय का बनना तथा उनकी तुड़ाईः** खुम्बी की बीजाई के 35–40 दिन बाद या मिट्टी चढ़ाने के 15–20 दिन बाद कम्पोस्ट के ऊपर मशरूम के सफेद फलनकाय दिखाई देने लगते हैं, जो अगले चार पांच दिनों में बटन के आकार में बढ़ जाते हैं। जब खुम्बी की टोपी कसी हुई अवस्था में हो तथा उसके नीचे की झिल्ली साबुत हो, तब खुम्बी को हाथ की उंगलियों से हल्का दबाकर और घुमाकर तोड़ लेते हैं। कम्पोस्ट की सतह से खुम्बी को चाकू से काटकर भी निकाला जा सकता है। सामान्यतः एक फसल चक्र (6 से 8 सप्ताह) में खुम्बी के 5–6 फल आते हैं। पॉलीथीन की थैलियों में मशरूम उगाने की विधि से 100 कि.ग्रा. कम्पोस्ट से 16–20 कि.ग्रा. ताजा मशरूम प्राप्त किया जा सकता है।

**भंडारण एवं पैकिंगः** मशरूम तोड़ने के बाद आकार के अनुसार उनकी छटनी कर लें तथा 3 प्रतिशत कैल्शियम क्लोराइड घोल से धोकर फिर उसे साफ पानी से धोएं तत्पश्चात इसे कपड़े पर फैला दें ताकि अतिरिक्त पानी सूख जाए। फिर 250–500 ग्राम तक के पैकेट बना कर सील कर दें। इसे रेफ्रीजरेटर में 7–8 दिन तक रख सकते हैं। ताजा मशरूम भी बाजार में आसानी से बिक जाती है। मशरूम के अन्य उत्पाद जैसे– आचार, चिप्स, बिस्कुट, सूप, पाउडर एवं नूडल्स आदि बना कर भी बाजार में बेचा जा सकता है।

# मसालों का हमारे जीवन में महत्व एवं मसालों का सुरक्षित भण्डारण

**सात्विक सहाय बिसारिया एवं संतोष कुमार**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना**

मनुष्य 50000 ई0पू0 से मसालों को किसी न किसी रूप में इस्तेमाल कर रहा है। सर्वप्रथम दालचीनी और काली मिर्च के साथ पूर्व एशिया से 2000 ई0पू0 में मसाला व्यापार प्रारम्भ हुआ था। लगभग 1000 ई0पू0 तक चीन, कोरिया और भारत का चिकित्साशास्त्र पूर्णतः इन्हीं मसालों वाली वनस्पतियों पर आधारित था। प्रारम्भ में लेाग मसालेां का प्रयोग जादू, औषधि, धार्मिक कर्म, परम्पराओं तथा खाद्य पदार्थों के प्रसंस्करण एवं संरक्षण हेतु किया करते थे। भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में भी मसालों का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है।

वस्तुतः मसाला शब्द सुनते ही हमारे मुंह में पानी आने लगता है अर्थात् हमारे शरीर की जैव रसायन क्रियाओं पर इसका गहरा असर होता है। लोक व्यवहार में भी हम मसालों से अपने अतिथियों का सत्कार करते हैं। जैसे आगमन पर लौंग खिलाकर एवं भोजनोपरान्त सौंफ व इलायची खिलाकर। पूजा पद्धति में भी मसालों का अद्वितीय स्थान है। जैसे लौंग का जोड़ा, जायफल, सुपारी, हल्दी का टीका इत्यादि। मसाले का हमारे सामान्य जीवन में उपयोग के अतिरिक्त एतिहासिक राजनैतिक, भौगोलिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमियों को भी परिवर्तित करने की क्षमता का पता भी लगता है। मसालों के व्यापार हेतु विभिन्न विदेशी कम्पनियों ने भारत में पदार्पण किया था, जिसके परिणाम स्वरूप आज दुनिया के विभिन्न देशों सहित भारत अर्थात आर्यावर्त का भूगोल एवं अर्थशास्त्र बदला हुआ है। मसाले जहां एक ओर हमारे भोजन के स्वाद को बढ़ाते हैं वहीं उससे भी कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण रोग प्रतिरोधक क्षमता हमारे शरीर में भी पैदा करते हैं। मसालों द्वारा रोजगार सृजन की बात करें तो विश्व के समस्त होटल रेस्त्रां, फास्ट फूट उद्योग, कैन्टीन, ढाबे इत्यादि इन्हीं मसालों के प्रयोग के बल पर खड़े है और करोड़ों लोगों को रोजगार दे रहे हैं। मसालों से अर्जित विदेशी आय और मसालों से सम्बन्धित जैव विविधता में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी भारत की बादशाहत कायम है। विश्व के कुल उत्पादन का 80 प्रतिशत से भी अधिक देने के कारण अन्य देश हमसे बहुत पीछे नजर आते हैं। मसाला फसलों की महत्ता एवं भारत की मृदा एवं भौगोलिक परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए भारत सरकार एवं प्रदेश सरकार द्वारा इन फसलों के उत्पादन पर व्यापक बल दिया जा रहा है, जिसमें विभिन्न योजनाओं यथा राष्ट्रीय बागवानी मिशन, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, कृषि विविधीकरण परियोजना इत्यादि के माध्यम से कृषकों को अनुदान उपलब्ध कराकर इन फसलों के उत्पादन में मात्रात्मक एवं गुणात्मक वृद्धि करने का सफल प्रयत्न किया जा रहा है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मसाला उत्पादन की व्यापक सम्भावनाएं हैं क्योंकि मसाला फसलों में वर्षा आधारित फसलों से लेकर सिंचित क्षेत्रों हेतु भी फसलें मौजूद है। बुन्देलखण्ड क्षेत्रों में उत्पादित मिर्च, लहसुन, अदरख, हल्दी इत्यादि की गुणवत्ता अत्यन्त उत्तम है क्योंकि परम्परागत रूप से इन क्षेत्रों में रसायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशियों का प्रयोग नहीं अथवा कम किया जाता है। किन्हीं अन्य फसल की तुलना में मसाला फसलों को संरक्षित कर रखना भी आसान होता है, और सामान्य दशाओं से भी इनको लम्बे समय तक संरक्षित किया जा सकता है। इन फसलों का यह गुण भी कृषकों को इनके और अधिक उत्पादन हेतु आकृष्ट करता है। आर्थिक दृष्टि से भी मसाले वाली फसलों की गणना उच्च एवं त्वरित लाभ प्रदान कराने वाली फसलों में होती है। धनिया जैसी फसलों को बोकर जहां कृषक को 20–25 दिनों में ही अच्छी आय प्राप्त होने लगती है, वहीं मिर्च जैसी ही फसलों के फल की तुड़ाई से 50–60 दिनों में ही आय प्राप्त होना प्रारम्भ हो जाती है। उत्तर प्रदेश में उत्पादित मसाला फसलों से प्रति हैक्टेयर 2.8 लाख से 4.00 लाख तक शुद्ध लाभ भी कृषकों द्वारा लिया जा रहा है। उद्यान विभाग द्वारा किये जाने वाले दिन–प्रतिदिन के शोधों के परिणाम स्वरूप इस मुनाफे को संकर एवं उच्च जैव प्रौद्योगिकी तकनीकी की सहायता से अभी भी दो गुना या चौ गुना किये जाने की सम्भावना है। यह विभाग की उच्च शोध तकनीकी का ही परिणाम ही है कि प्रदेश में प्रत्येक क्षेत्र एवं प्रत्येक मौसम के लिये उच्च गुणवत्ता युक्त प्रजातियां उपलब्ध है। जहां तक मसाला फसलों के परिरक्षण का प्रश्न है इसमें भी विभाग द्वारा अथक प्रयत्न कर आशातीत सफलतायें प्राप्त की जा रही हैं और प्रतिवर्ष हजारों लोगों को रोजगार परक प्रशिक्षण देकर, रोजगार सृजन में विभाग द्वारा महती भूमिका निभायी जा रही है। परन्तु अभी भी इस क्षेत्र में व्यापक सम्भावनाएं बनी हुई हैं। यह भी व्यक्तिगत आकलन है कि जिन प्रदेशों में मसाला फसलों की खेती अधिक होती है, वहां के लोगों की साक्षरता दर एवं रोजगार उपलब्धता अन्य प्रदेशों की तुलना में अच्छी होती है। छोटे एवं सीमान्त कृषकों की त्वरित आय बढ़ाने हेतु मसाला फसलें वरदान है। क्योंकि अत्यधिक श्रम साध्य होने के कारण इन फसलों की खेती छोटी जोतों में सुगमता पूर्वक की जा रही। एक ओर जहां सूक्ष्म सिंचाई प्रणली के प्रयोग से मसाला फसलों का क्षेत्र विस्तार बढ़ रहा है वहीं दूसरी ओर विषाणु जनित बीमारियाँ इसके उत्पादन को भी घटा रही हैं। अतः ऐसे में रोगरोधी प्रजातियों की आवश्यकता है। जिससे इन फसलों का सफल उत्पादन किया जा सके और उच्च स्तरीय, उच्च तकनीकी विपणन व्यवस्था एवं प्रसंस्कृत व्यवस्था कर इस विधा को और अधिक प्रभावशाली एवं लाभदायक बनाया जा सके। जिससे हमारे देश के छोटे–छोटे कृषकों को भी अधिक से अधिक मुद्रा अर्जित हो सके एवं भारत की जो भी शेष गरीबी व बेरोजगारी है, हमेशा के लिये मिटाई जा सके।

खाद्य मसाले का भण्डारण लम्बी अवधि के लिए तो नहीं किया जा सकता लेकिन यदि थोड़ी सी सावधानी रखें तो कुछ समय के लिए भण्डारण अच्छी प्रकार से हो सकता है। अनाज भण्डारण में प्रमुख कीट तम्बाकू का भृंग, जड़ी बूटी का भृंग, आटे का लाल कीड़ा,

बादाम का पंतगा, चावल का पंतगा आदि महत्वपूर्ण हैं।

इनमें तम्बाकू का भृंग एवं जड़ी बूटी भृंग अधिक हानि पहुँचाते हैं क्योंकि ये मसाले के आन्तरिक भाग को खाते हैं। इन कीटों से संक्रमित मसाला ऊपर से सामान्य दिखता है जबकि अन्दर से खोखला कर देता है। धनिया, हल्दी व मिर्च में इनके द्वारा बनाया छिद्र स्पष्ट दिखाई देते है। तम्बाकू का कीड़ा भी अधिक नुकसान पहुँचाता है क्योंकि यह अपना जीवन चक्र कम समय में पूरा कर लेता है जबकि जड़ी–बूटी का कीड़ा कम नुकसान पहुँचाता है क्योंकि यह अपना जीवन–चक्र अपेक्षाकृत लम्बी अवधि में पूरा करता है।

सौंफ में तम्बाकू का कीड़ा अधिक संख्या में तेजी से विकसित होता है तथा लहसुन में जीवन चक्र सबसे कम समय में पूर्ण करता है। जड़ी बूटी भृंग सबसे अधिक संख्या में सौंफ में विकसित होता है तथा जीवन–चक्र सबसे कम समय में धनिया में पूर्ण करता है किन्तु दोनों ही कीड़े अमचूर में अतिशीघ्र अपना जीवन–चक्र पूरा कर लेते हैं। बाद में इन कीड़ों से प्रभावित मसाले में आटे का लाल कीड़ा, बादाम का पतंगा, चावल का पतंगा आदि भी अपना जीवन–यापन कर लेते हैं।

**रोकथामः**

1. मसालों को अच्छी तरह से सुखाकर रखें।
2. मसालों को पीसकर रखा जाए।
3. डिब्बा बंद बर्तन का प्रयोग करें जिसमें हवा अवरूद्ध हो।
4. डिब्बे का अभाव होने पर 700 गेज से मोटी पाली पैक का प्रयोग करें क्योंकि इससे कम मोटाई पर कीड़े छेद कर सकते हैं।

इन उपायों के सफल न होने पर "सल्फास" घूम्रण किया जा सकता है। हवा अवरुद्ध डिब्बे में 1 टिकिया (3 ग्रा0) प्रति टन मसाले की दर से प्रयोग किया जा सकता है तथा डिब्बे को आटा आदि से सील कर दें। धूम्रण के बाद 6–7 दिन इसी अवस्था में बंद रखें।

❖❖❖

# कार्बनिक खेती में जैव उर्वरकों का योगदान

**लक्ष्मण कुमार सोनी**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय सतना**

खेती में रासायनिक उर्वरकों के अधिकाधिक प्रयोग से अनेक समस्याएँ जुड़ी हुई हैं। इसके परिणामस्वरूप जैविक खेती करने पर तथा जैव उर्वरकों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। हाल ही में, भारत में जैव उर्वरकों की एक बड़ी संख्या बड़े पैमाने पर बाजार में उपलब्ध होने लगी है। किसान अपने खेतों में लगातार इनका प्रयोग कर रहे हैं। इससे मृदा पोषक तत्वों की भरपाई तथा रसायन उर्वरकों पर निर्भरता भी कम हो रही है। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से उपज में वृद्धि तो होती है परन्तु अधिक प्रयोग से मृदा की उर्वरता तथा संरचना पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिये रासायनिक उर्वरकों के साथ जैव उर्वरकों के प्रयोग की सम्भावनाएँ बढ़ रही हैं। जैव उर्वरकों के प्रयोग से फसल को पोषक तत्वों की आपूर्ति होने के साथ मृदा की उपज में वृद्धि होती है।

एक लम्बे समय से इस बात की जानकारी लोगों को थी कि दलहन मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाती है। लेकिन इस बात का वैज्ञानिक प्रदर्शन 19वीं शताब्दी के आधा गुजर जाने के बाद ही हो पाया था। दहलन कुल के पौधों की जड़ों में ही नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिये गाँठे बनती हैं। दलहन कुल को तीन उपकुलों–मिमोसिडी, सिजलपिनिडी व पैपलिओनिडी में विभाजित किया गया है। मिमोसिडी के 90 प्रतिशत, सिजलपिनिडी के 23 प्रतिशत व पैपलिओनिडी के 97 प्रतिशत सदस्यों की जड़ों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण के लिये गाँठे बनती हैं।

**जैव उर्वरक के रूप में सूक्ष्मजीव (Microorganisms as organic fertilizers):**

ये जैव उर्वरक एक प्रकार के जीव होते हैं जो मृदा की पोषण गुणवत्ता को बढ़ाते हैं। ये जीवाणु, कवक तथा सायनोबैक्टीरिया होते हैं। द्विबीजपत्री (लैग्यूमिनस) पादपों की जड़ों पर स्थित ग्रंथियों का निर्माण राइजोबियम के सहजीवी सम्बन्ध द्वारा होता है। यह जीवाणु वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकृत कर इसे कार्बनिक रूप में परिवर्तित कर देते हैं जिससे पादप इसका प्रयोग पोषकों के रूप में करते हैं। अन्य जीवाणु (जैसे ऐजोस्पाइरिलम तथा एजोटोबैक्टर) मृदा में मुक्तावस्था में रहते हैं। यह भी वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिर कर सकते हैं। इस प्रकार मृदा में नाइट्रोजन अवयव बढ़ जाते हैं।

मित्र कवक (जैसे माइकोराइजा) पादपों के साथ सहजीवी सम्बन्ध स्थापित करते हैं। ग्लोमस जीनस के बहुत से सदस्य माइकोराइजा बनाते हैं। इस सहजीवन में कवकीय सहजीवी मृदा से फास्फोरस का अवशोषण कर उसे पादपों में भेज देते हैं। ऐसे सम्बन्धों से युक्त पादप कई अन्य लाभ जैसे मूलवातोढ़ रोगजनक के प्रति प्रतिरोधकता, लवणता तथा सूखे के प्रति सहनशीलता तथा कुलवृद्धि तथा विकास प्रदर्शित करते हैं।

सायनोबैक्टीरिया स्वपोषित सूक्ष्मजीव हैं जो जलीय तथा स्थलीय वायुमण्डल में विस्तृत रूप से पाये जाते हैं। इनमें बहुत से वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकृत कर सकते हैं, जैसे– ऐनाबीना, नॉसटॉक, ऑसिलेटोरिया आदि। धान के खेत में सायनोबैक्टीरिया महत्त्वपूर्ण जैव उर्वरक की भूमिका निभाते हैं। नील हरित शैवाल भी मृदा में कार्बनिक पदार्थ बढ़ा देते हैं। जिससे उसकी उर्वरता बढ़ जाती है।

**जैव उर्वरक (Biofertilizer):**

फसलों में जैव उर्वरकों का इस्तेमाल करने से वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन पौधों को (अमोनिया के रूप में) सुगमता से उपलब्ध होती है तथा भूमि में पहले से मौजूद अघुलनशील फास्फोरस आदि पोषक तत्व घुलनशील अवस्था में परिवर्तित होकर पौधों को आसानी से उपलब्ध होते हैं। चूँकि सूक्ष्मजीव प्राकृतिक हैं, इसलिये इनके प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है और पर्यावरण पर विपरीत असर नहीं पड़ता। जैव उर्वरकों को रासायनिक उर्वरकों के पूरक के रूप में (ना कि विकल्प के रूप में) प्रयोग करके बेहतर परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

वास्तव में जैव उर्वरक विशेष एवं किसी नमी धारक पदार्थ के मिश्रण हैं। विशेष सूक्ष्म जीवों की निर्धारित मात्रा को किसी नमी धारक धूलीय पदार्थ (चारकोल, लिग्नाइट आदि) में मिलाकर जैव उर्वरक तैयार किये जाते हैं। यह प्रायः 'शुद्ध कल्चर' के नाम से बाजार में उपलब्ध होता है जो कि एक प्राकृतिक उत्पाद है। इनका उपयोग विभिन्न फसलों में नाइट्रोजन एवं फास्फोरस की आंशिक पूर्ति हेतु किया जा सकता है। इनके उपयोग से भूमि के भौतिक व जैविक गुणों में सुधार होता है व उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। जैविक खेती में जैव उर्वरकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

भारत में सर्वप्रथम लेग्यूम–राइजोबियम सहजीविता का अध्ययन श्री एन. वी. जोशी ने किया था। इसका सर्वप्रथम वाणिज्यिक उत्पादन वर्ष 1956 में शुरू हुआ। भारत सरकार की 9वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान कृषि मंत्रालय ने जैव उर्वरकों के उपयोग तथा विकास के लिये राष्ट्रीय परियोजना के माध्यम से वास्तविक रूप से इसको बढ़ावा देने के साथ–साथ लोगों में जागरुकता उत्पन्न करने का काम शुरू किया।

**जैव उर्वरकों के प्रकार (Types of Organic Fertilizers)**

**(1) एजोला (*Azolla*) :**

एजोला टेरिडोफाइटा समूह की एक तैरती हुई फर्न है। सामान्यतः एजोला धान के खेत या उथले पानी में उगाई जाती है। यह तेजी से बढ़ती है। एजोला की पंखुड़ियों में एनाबिना नामक नील हरित काई के जाति का एक सूक्ष्मजीव होता है जो सूर्य के प्रकाश में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करता है और हरे खाद की तरह फसल को नाइट्रोजन की पूर्ति करता है। एजोला की विशेषता

यह है कि यह अनुकूल वातावरण में 5 दिनों में ही दोगुना बड़ा हो जाता है। यदि इसे पूरे वर्ष बढ़ने दिया जाये तो 300 टन से भी अधिक एजोला प्रति हेक्टेयर पैदा किया जा सकता है यानी 40 किग्रा नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो सकती है। एजोला में 3.5 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा कई तरह के कार्बनिक पदार्थ होते हैं जो भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं। एजोला के उपयोग से धान की फसल में 5–15 प्रतिशत उत्पादन वृद्धि सम्भावित रहती है।

धान के खेत में इसका उपयोग सुगमता से किया जा सकता है। 2–4 इंच पानी से भरे खेत में 10 टन ताजा एजोला को रोपाई के पूर्व डाल दिया जाता है। इसके साथ इसके ऊपर 30–40 किग्रा सुपर फास्फेट का छिड़काव भी कर दिया जाता है। इसकी वृद्धि के लिये 30–35 डिग्री सेल्सियस का तापक्रम अत्यन्त अनुकूल होता है।

**(2) नील हरित शैवाल (Blue Green Algae):**

नील हरित शैवाल (सायनोबैक्टीरिया) एक जीवाणु होता है जो प्रकाश संश्लेषण से ऊर्जा उत्पादन करते हैं। जीवाणु के नीले रंग के कारण इसका नाम सायनो (यूनानी अर्थ नीला) पड़ा है। सायनोबैक्टीरिया विटामिन 12ए, ऑक्सिन और एस्कार्बिक अम्ल स्रावित करते हैं जो धान के पौधे की वृद्धि में सहायक होते हैं।

नील हरित शैवाल वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण कर धान के फसल को आंशिक मात्रा में नाइट्रोजन की पूर्ति करता है। यह जैविक खाद नाइट्रोजन युक्त रासायनिक उर्वरक का सस्ता व सुलभ विकल्प है जो धान की फसल को न सिर्फ 25–30 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर पूर्ति करता है, बल्कि उस धान के खेत में नील हरित काई के अवशेष से बने खाद के द्वारा उसकी गुणवत्ता व उर्वरता कायम रखने में मददगार साबित होती है।

**(3) एजोटोबैक्टर (*Azotobacter*):**

एजोटोबैक्टर अतिसूक्ष्म हिटेरोट्रोफिक जीवाणु हैं। यह स्वतंत्र रूप से रहने वाला सूक्ष्म व वायवीय जीवाणु होते हैं जो बिना किसी सहजीवन के नाइट्रोजन का मुक्त रूप से जैविक स्थिरीकरण करते हैं। यह केवल राइजोस्फियर में पाया जाता है। राइजोप्लेन में यह गुण सामान्यतः नहीं पाया जाता है। मूल स्राव जिसमें अमीनो अम्ल, शर्करा, विटामिन्स और कार्बनिक अम्ल होते हैं, एजोटोबैक्टर के गुणन में सहायक होता है। यह नाइट्रोजन स्थिरीकरण के साथ–साथ पौधों के विकास में काम आने वाले पादप वृद्धिकारक हार्मोन (इण्डोल एसिटिक एसिड एवं जिब्रेलिक अम्ल) और कुछ एंटीबायोटिक्स का भी स्राव करते हैं। जिसका बीजों के अंकुरण पर अच्छा प्रभाव पड़ता है एवं जड़ों में होने वाली बहुत सारी बीमारियों की रोकथाम होती है। एजोटोबैक्टर सभी गैर–दलहनी फसलों में प्रयोग किया जा सकता है। जिसमें अन्न वाली फसलें, सब्जियाँ, कपास तथा गन्ना मुख्य हैं। सर्वप्रथम बिजेरिक ने एजोटोबैक्टर जीवाणुओं की खोज एवं उसका वर्णन किया था।

**(4) एजोस्पाइरिलम (*Azospirillum*):**

यह भी नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाला एक सूक्ष्म जीवाणु है जो गैर दलहनी पौधों के लिये लाभकारी होता है। यह सूक्ष्म जीवाणु भी जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के साथ–साथ पादप वृद्धिकारक हार्मोंस का स्राव करते हैं जो अंकुरण से लेकर पौधे की वृद्धि तक में लाभकारी होते हैं।

**(5) फास्फेट घुलनशील सूक्ष्म जीव (पीएसएम) (Phosphate soluble microorganisms):**

यह उन सूक्ष्म जीवों का समूह है जो कि मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फेट को परिवर्तित कर उर्वरक की कार्य क्षमता को बढ़ाता है। क्षारीय मृदा में फास्फेट की उपलब्धता कम होती है। यह सूक्ष्म जीवाणु पूरी प्रक्रिया को उल्टा करने में काफी लाभकारी है। जब पीएसएम को रॉक फास्फेट के साथ उपयोग किया जाता है तो सिंगल सुपर फास्फेट की तरह फास्फेटिक उर्वरक की लगभग 50 प्रतिशत तक आवश्यकता को कम किया जा सकता है। फास्फेट को घुलनशील बनाने वाले जीवाणु का कल्चर बाजार में पीएसबी कल्चर के नाम से मिल जाता है। यह कल्चर फास्फोरस घोलने वाले जीवाणुओं का यौगिक होता है। इससे बिना प्रदूषण किये उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों बढ़ती हैं, साथ ही मृदा का स्वास्थ्य भी बढ़ जाता है।

पीएसबी के प्रयोग से फास्फोरस तत्व को पौधे आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। इसका प्रयोग करने से 10–20 प्रतिशत उत्पादन में वृद्धि होती है और साथ–ही–साथ मिट्टी में अनुपलब्ध फास्फोरस के उपलब्ध अवस्था में आ जाने से 30–40 प्रतिशत फास्फोरस उर्वरक की बचत की जा सकती है।

**(6) एसीटोबैक्टर (*Acetobacter*):**

यह एक अनिवार्य एरोबिक, जैविक रूप से नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाला सूक्ष्म जीवाणु है जो अपने मेटाबोलिक गतिविधियों के द्वारा अम्ल का स्राव करता है। सभी जैविक रूप से नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले सूक्ष्म जीवाणु नाइट्रोजिनेज नामक एन्जाइम की मदद से हवा में उपस्थित 78 प्रतिशत स्थिरीकरण सामान्य ताप एवं दाब पर मेटाबोलिक प्रक्रिया के माध्यम से करते हैं। विभिन्न तरह के जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं में ऑक्सीजन के प्रति संवेदनशीलता अलग–अलग होती है। एसिटोबैक्टर गन्ने की पैदावार के लिये उपयोगी है।

**(7) एक्टिनोराइजा (Actinorhiza):**

एक्टिनोमाइसिट्स समूह के जीवाणु जो अदलहनी वृक्ष की जड़ों में गाँठे बनाकर नाइट्रोजन स्थिरीकरण करते हैं, एक्टिनोराइजा कहलाते हैं। फ्रन्किया इसका बहुत अच्छा उदाहरण है। फ्रन्किया 8 विभिन्न पादप कुलों की 280 से भी ज्यादा वृक्ष जातियों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है।

## जैव उर्वरकों की प्रयोग विधि:

जैविक उर्वरकों को चार विभिन्न तरीकों से खेती में प्रयोग किया जाता है:

**बीज उपचार विधि :**

जैव उर्वरकों के प्रयोग की यह सर्वोत्तम विधि है। एक लीटर पानी में लगभग 50 ग्राम गुड़ या गोंद मिलाकर उबाल लेते हैं। ठंडा होने के बाद उसमें जैव उर्वरक (200 ग्राम) को अच्छी तरह मिलाकर घोल बना लेते हैं। इस घोल को 10 किग्रा बीज पर छिड़ककर अच्छी तरह मिला लेते हैं जिससे प्रत्येक बीज पर इसकी परत चढ़ जाये।

इसके उपरान्त बीजों को छायादार जगह में सुखा लेते हैं। उपचारित बीजों की बुवाई सूखने के तुरन्त बाद कर लेनी चाहिए।

**पौध जड़ उपचार विधिः**

धान तथा सब्जी वाली फसलें जिनके पौधों की रोपाई की जाती है जैसे टमाटर, फूलगोभी, पत्तागोभी, प्याज इत्यादि फसलों में पौधों की जड़ों को जैव उर्वरकों द्वारा उपचार किया जाता है। इसके लिये किसी चौड़े व छिछले बर्तन में 5–7 लीटर पानी में एक किलोग्राम एजोटोबैक्टर व एक क्रिग्रा पीएसबी 250 ग्राम गुड़ के साथ मिलाकर घोल बना लेते हैं। इसके उपरान्त नर्सरी से पौधों को उखाड़कर तथा जड़ों से मिट्टी साफ करने के पश्चात 50–100 को बंडल में बाँधकर जीवाणु खाद के घोल में 10 मिनट तक डुबा देते हैं।

**कन्द उपचारः**

गन्ना, आलू, अदरक, घुइयाँ (अरबी) जैसी फसलों में जैव उर्वरकों के प्रयोग हेतु कन्दों को उपचारित किया जाता है। एक किलोग्राम एजोटोबैक्टर व एक किग्रा पीएसबी जैव उर्वरकों को 20–30 लीटर घोल में मिला लेते हैं। इसके उपरान्त कन्दों को 10 मिनट तक डुबो देते हैं। इसके बाद तुरन्त रोपाई कर देते हैं।

**मृदा उपचार विधिः**

5–10 किलोग्राम जैव उर्वरक व 70–100 किग्रा मिट्टी या कम्पोस्ट का मिश्रण तैयार करके रात भर छोड़ दें। इसके बाद अन्तिम जुताई पर खेत में मिला देते हैं।

**जैव उर्वरकों के उपयोग से लाभः**

1. इनके प्रयोग से उपज में लगभग 10–15 प्रतिशत की वृद्धि होती है।
2. यह रासायनिक खादों विशेष रूप से नाइट्रोजन और फास्फोरस की जरूरत का 20–25 प्रतिशत तक पूरा करते हैं।
3. इनके प्रयोग से अंकुरण शीघ्र होता है तथा कल्लों की संख्या में वृद्धि होती है।
4. जमीन की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं।
5. इनके प्रयोग से गन्ने में शर्करा की, मक्का व आलू में स्टार्च तथा तिलहनों में तेल की मात्रा में वृद्धि होती है।

**जैविक उर्वरकों के प्रयोग में सावधानियाँः**

1. जैव उर्वरक को छाया में सूखे स्थान पर रखें।
2. फसल के अनुसार ही जैव उर्वरक का चुनाव करें।
3. उचित मात्रा का प्रयोग करें।
4. जैव उर्वरक खरीदते समय उर्वरक का नाम, बनाने की तिथि व फसल का नाम इत्यादि ध्यान से देख लें।
5. जैव उर्वरक का प्रयोग समाप्ति की तिथि के पश्चात न करें।

❖❖❖

# हल्दी में कीट एवं रोग नियंत्रण

**सात्विक सहाय बिसारिया एवं संतोष कुमार**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना**

हल्दी का विश्व के कुल उत्पादन का 90 प्रतिशत भाग केवल भारत में ही उत्पादित होता है। भारत में इसकी खेती आन्ध्र प्रदेश, केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, प. बंगाल में बहुतायत से होती है। लेकिन इसकी खेती बिहार, उत्तर प्रदेश और आसाम में भी की जाती है। क्षेत्रफल की दृष्टि से आन्ध्र प्रदेश (39.46 प्रतिशत), उड़ीसा (17.55 प्रतिशत) तथा तमिलनाडु (17.50 प्रतिशत) का अग्रणी योगदान है। कुल उत्पादन में भी आन्ध्र प्रदेश (55.11 प्रतिशत), तमिलनाडु (15.92 प्रतिशत) तथा उड़ीसा (7.75 प्रतिशत) है। बिहार में हल्दी की खेती चम्पारण, सीतामढ़ी, मुज्जफरपुर, सिद्वार्थ नगर, गोण्डा, बाराबंकी, बहराईच, पीलीभीत आदि जिलों में की जाती है। आयातक देशों में संयुक्त अरब अमीरात (11.57 करोड़), ईरान (10.86 करोड़), जापान (6.75 करोड़) तथा बंगला देश (5.67 करोड़) प्रमुख हैं। हल्दी का उपयोग स्वास्थ्य एवं सौदर्य वर्द्धन में हमेशा से किया जा रहा है। हल्दी का प्रयोग खाद्य एवं पेय पदार्थ बनाने एवं रंग प्रदान करने में होता है। हल्दी से भूख बढ़ती है, खून साफ होता है और शरीर में रोगाणुरोधी क्षमता भी बढ़ती है। इसका प्रयोग एलर्जी (प्रत्यूर्जता), दाँत की बीमारी, पथरी के इलाज और त्वचा साफ करने में किया जाता है। हल्दी चोट में भी बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

## रोग नियंत्रण:

### प्रकन्द विगलन रोग:

यह फफूँदी (पीथियम की कई जातियों) जनित रोग है। इसमें प्रकन्द सड़ने लगते हैं जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और पूरा पौधा मर जाता है। प्रकंदों के अन्दर काले रंग की धारियां बनने के साथ–साथ उनमें दुर्गन्ध आने लगती है।

**रोकथाम–**

इसकी रोकथाम के लिए बोने से पहले बीजोपचार (मैंकोजेब 0.25 प्रतिशत या कापर आक्सी क्लोराइड 0.30 प्रतिशत), अच्छे जल निकास वाले खेत का चुनाव, बार–बार एक ही खेत में फसल का न बोना काफी हद तक सहायक होते हैं। प्रभावित पौधों को मैन्कोजेब अथवा कार्बेन्डाजिम (25 ग्राम दवा प्रति 10 लीटर पानी) से भिगोना चाहिए ताकि पौधा जमीन के नीचे प्रकन्दों तक अच्छी तरह भीग जाए।

### पर्ण चित्ती रोग:

यह भी फफूँदी (कोलिटोट्राइकम जिन्जिबेरिस) जनित रोग है। जिसमें पत्तियों के ऊपर पीले–भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं जो बाद में पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं और अन्त में पत्तियाँ सूख जाती हैं।

**रोकथाम–**

इसकी रोकथाम के लिए मैन्कोजेब (25 ग्राम दवा प्रति 10 लीटर पानी) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (30 ग्राम दवा प्रति 10 लीटर पानी) का छिड़काव करना चाहिए।

### पर्ण धब्बा रोग:

यह फफूँदी (टैफरीना मैक्यूलेंस) जनित रोग है। हल्दी की फसल में इसका प्रकोप होता है। इसमें पत्तियों के बीच में या किनारे पर बड़े–बड़े धब्बे बन जाते हैं जिससे फसल की बढ़वार रूक जाती है और उपज में 50–60 प्रतिशत तक की कमी आ जाती है।

**रोकथाम–**

इसकी रोकथाम के लिए मैन्कोजेब की 0.25 प्रतिशत मात्रा का घोल बना कर 10–15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।

### शुष्क विगलन रोग:

यह फफूँदी (डिप्लोडिया नेटेलेन्सिस) जनित रोग भण्डारण में अधिक लगता है। रोग के कारण प्रकंदों का भीतरी भाग काले रंग का हो जाता है। रोगी ऊतक काले चूर्ण में बदल जाते हैं। रोग की तीव्रता में प्रकन्द सिकुड़कर सूख जाते हैं।

**रोकथाम–**

रोकथाम के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित प्रकंदों को ही बीज के रूप में प्रयोग करें। रोगी पौधों के अवशेषों को नष्ट कर दें तथा खेत को स्वच्छ रखें। प्रकंदों को उपचारित करके बोए। इसके लिए बाविस्टिन दवा का 0.2 प्रतिशत घोल बनाकर प्रकंदों को 30 मिनट तक डुबाकर उपचारित करें। खड़ी फसल में मैन्कोजेब दवा (0.25 प्रतिशत) घोल बनाकर छिड़काव करें। प्रकंदों का भण्डारण हवादार और अच्छे भण्डार गृह में करें। भण्डार गृह का फार्मेलिन से निर्जीवीकरण करना उपयोगी रहता है।

### जीवाणु उकठा रोग:

यह रोग राल्स्टोनिया सोलेनेसिएरम् नामक जीवाणु (बैक्टीरिया) से होता है। प्रारम्भ में नीचे की पुरानी पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जाती है और फिर सूखने का क्रम ऊपर की ओर बढ़ता है। रोग की तीव्रता में जमीन के पास सतह से तना जलीय हो जाता है। रोगी पौधे का भीतरी भाग बदरंग या काले रंग का हो जाता है। यदि रोगी पौधे के तने या प्रकंद को काटकर थोड़े समय के लिए छोड़ दिया जाए तो उसमें से सफेद रंग का लसलसा पदार्थ निकलता है, जो इसकी खास पहचान है।

**रोकथाम–**

रोकथाम के लिए स्वस्थ, रोग रहित एवं प्रमाणित प्रकंदों का ही प्रयोग करें। जल निकास का उचित प्रबन्ध करें। खेत की सफाई रखें तथा उचित फसल चक्र अपनाएं। प्रकंदों को कॉपर आक्सीक्लोराइड दवा का 0.3 प्रतिशत घोल बनाकर 30 मिनट तक डुबोकर उपचारित करें। स्ट्रेप्टोसाइक्लिन दवा (2 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी में घोल कर) का छिड़काव करें। प्रकन्द सूर्यीकरण भी रोकथाम में उपयोगी पाया गया है। इसके लिए पारदर्शी पालीथीन में प्रकंदों को

सील करके मई माह में 3–4 घंटे के लिए धूप में रखने से प्रकन्द में निहित जीवाणु मर जाते हैं।

**कीट नियंत्रण:**

**प्रकन्द बेधक कीट:**

प्रकन्द बेधक कीट की पीली–हरी सूड़ी जमीन के पास वाले तने में छेदकर देती है जिससे बढ़ते हुए तने सूख जाते हैं।

**रोकथाम–**

रोगी पौधों को उखाड़कर नष्ट करने के साथ–साथ इसकी रोकथाम मैलाथियान–50 ई.सी. (250 मिली. दवा 100 लीटर पानी) अथवा कार्बारिल धूल (200 ग्राम दवा प्रति 100 लीटर पानी) के छिड़काव से की जा सकती है।

**दीमक:**

दीमक सुरंग बनाकर पौधों की जड़ों को खाते हैं। जैसे किसी तेज चाकू से काटा गया हो। फसल की सभी अवस्थाओं में यह नुकसान पहुचाते हैं। आक्रमण होने पर पौधे छोटे रह जाते हैं और हवा चलने पर गिर भी जाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पौधे सूख जाते हैं।

**रोकथाम–**

रोकथाम के लिए अच्छी प्रकार सड़ी हुई गोबर की खाद ही खेत में प्रयोग करें। खेत में अन्तिम जुताई से पहले क्लोरपाइरीफॉस दवा (15–20 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से) खेत में मिला दें।

**स्केल कीट:**

इसका वैज्ञानिक नाम एस्पीडीओटस हार्टाय है। प्रौढ़ कीट छोटा, पंखहीन, गोलाकार एवं भूरे रंग का होता है। प्रौढ़ और शिशु दोनों ही हानि पहुँचाते हैं। यह प्रकन्दों का रस चूसते हैं और खेत तथा भण्डारण दोनों में हानि पहुँचाते हैं। प्रकंदों के अंकुरण के समय कोमल अंकुरों से भी रस चूसते हैं। अधिक प्रकोप होने पर प्रकन्द सिकुड़कर सूख जाते हैं।

**रोकथाम–**

रोकथाम के लिए बोआई के पहले तथा भण्डारण के पहले प्रकंदों को मैलाथियान दवा के 0.3 प्रतिशत घोल में 30 मिनट डुबाकर उपचारित करें।

**जड़ग्रन्थि सूत्रकृमि:**

यह निमेटोड होते हैं तथा अति सूक्ष्म होते हैं। इसका प्रकोप अदरक में अधिक होता हैं। यह पौधों की जड़ों तथा प्रकंदों के ऊतक से रस चूसते हैं जिससे प्रकंद सड़ने लगते हैं और उपज भी घट जाती हैं।

**रोकथाम–**

रोकथाम के लिए स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज का प्रयोग करें। फसल चक्र में धान अवश्य अपनाएं। रोग ग्रस्त खेत में कार्बोफ्यूरान (फ्यूराडॉन 3 जी) दानेदार दवा को 30 किग्रा. मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से डालने पर सूत्रकृमि का सफल नियंत्रण होता है।

❖❖❖

# ई–नाम/ई–एग्रीमार्केट

**वीरेन्द्र कुमार विश्वकर्मा**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

राष्ट्रीय कृषि बाजार अथवा ई–नाम बाजार भारत में कृषि उत्पाद का ऑनलाइन व्यापारिक मंच है। यह बाजार किसानों, व्यापारियों एवं व्यावसाइयों के लेन–देन (क्रय–विक्रय) की सुविधा प्रदान करता है। 14 अप्रैल, 2016 को ई–नाम अथवा ई–मार्केटिंग की शुरूआत भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के द्वारा पायलट प्रोजक्ट के रूप में की गई। इस बाजार का संचालन एवं कियान्वयन भारत सरकार के कृषि एवं कृषक कल्याण मंत्रालय के द्वारा किया जाता है।

## संचालक संस्थाः

ई–नाम या ई–राष्ट्रीय बाजार को संचालित करने वाली प्रमुख संस्था ''स्माल फारमर, एग्री व्यवसाय कनसाइटोरियम'' (लघु कृषक, कृषि व्यवसाय संघ) करता है, जो कि भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत कृषि विकास, सहकारिता एवं किसान कल्याण विभाग से पंजीकृत है। इसके संचालन हेतु खुली निविदा (ओपन आक्सन) के माध्यम से नागार्जुन फर्टीलाइजर एवं रासायनिक लिमिटेड एवं किसान विभाग को रणनीतिक भागीदार के रूप में बाजार का संचालन विकास एवं रखरखाव हेतु चयन किया गया। भारत सरकार की संस्था एस.एफ.ए.सी. तथा उनकी तकनीकी सहायक कंपनी डी.ए.सी. एण्ड एफ.डब्ल्यू. राज्यों के लिए निःशुल्क सॉफ्टवेयर तथा उनके संचालन प्रदान कर रही है, जिसमें ई–मार्केट की स्थापना हेतु प्रत्येक मण्डी को 30 लाख रूपया एक मुश्त राशि के रूप में ग्रांट देती है। वर्तमान में पूरे देश में लगभग 6500 कृषि उत्पाद मण्डी समिति सोसायटी (ए.पी.एम.सी.एस.) है जो कि जिला स्तर पर पूरे देश में संचालित हैं। साथ ही 585 जिला स्तरीय मण्डी केन्द्र शासित प्रदेश में संचालित हैं। भारत सरकार की 2017–18 की योजना के अनुसार देश के सभी मंडियों को ई–नाम बाजार से जोड़ना तथा उनका संचालन करना है। वर्तमान में देश की सभी मंडियां लगभग ई–बाजार से जुड़ चुकी हैं।

## सुविधाएंः

ई–नाम बाजार में किसान अपने मोबाइल ऐप पर अथवा पंजीकृत कमीशन एजेंट के माध्यम से सीधे व्यापार करने के लिए तथा उत्पादों के विक्रय का वैकल्पिक चयन कर सकता है। वर्तमान में ई–नाम बाजार में भारत के 16 राज्यों एवं 2 केन्द्रशासित राज्यों के 585 मंडियों के साथ 65 लाख सदस्य जुड़ चुके हैं। बाजार व्यापारियों एवं निर्यातकों को गुणवत्तापूर्वक उत्पाद के साथ व्यावसायिक मंच उपलब्ध कराता है, जिसमें पारदर्शी वित्तीय लेनदेन के साथ कृषि उत्पाद का क्रय–विक्रय प्रक्रिया पूर्ण कराता है। भारत सरकार की यह योजना ग्रामीण कृषकों को अच्छे बाजारों से जोड़ना साथ ही ग्रेडिंग एवं प्रशिक्षण सेवा प्रदान करके कृषि विभाग के द्वारा प्रमाणित करते हुए कृषकों को उत्कृश्ट उत्पाद का प्रमाण–पत्र प्रदान करना है, जिससे अच्छे उत्पाद बाजार में अच्छे मूल्यों पर बिक सकें।

## भुगतान का तरीकाः

उत्पाद विक्रय की भुगतान राशि, नेटवर्क आर.टी.जी.एस. / एन.ई.एफ.टी., डेबिट कार्ड, इन्टरनेट बैंकिंग के साथ ऐप में किया जाता है। 2017 में मोबाइल भुगतान भीम सपोर्ट एकीकृत के माध्यम से यूनीफाइड पेमेन्ट इंटरफेस के सुविधा से जोड़ा गया है।

## डाटा एंट्रीः

मोबाइल फोन प्रविष्ट किसान डाटाबेस एवं ई लर्निंग माड्यूल का एकीकृत ऐप उपलब्ध है। अधिकांश किसानों का ऐप व्यावसाय के लिए उनके एजेन्टों के द्वारा उपयोग किया जा रहा है, क्योंकि किसानों को ऐप चलाने में कठिनाई होती है। इसलिए किसानों के लिए एक नये ऐप की सुविधा आ रही है, जहां वे अपने व्यापार की प्रगति को देख सकते हैं, साथ ही कीमत की मूल बोली की प्रगति किसानों को उनके मोबाइल एप पर दिखाई देगी।

## ग्रहण/अधिग्रहणः

उत्पादों के आगमन एवं व्यापार के संदर्भ में प्रत्येक मण्डी / बाजार के प्रदर्शन को अधिक जानकारी देने के लिए 2018 में एम.आई.एस. डैशबोर्ड को बनाया गया है, जिसमें मार्च 2018 तक महत्वपूर्ण 6 राज्यों को ई–नाम के साथ जोड़े गये राज्य उत्तर प्रदेश के 100, मध्यप्रदेश के 58, हरियाणा के 54, महाराष्ट्र के 60, गुजरात के 79 एवं तेलंगाना के 48 हैं।

## हितग्राहियों के लाभः

**1. किसान–** किसान अपने उत्पाद को बिना किसी मध्यस्थ या दलाल के हस्तक्षेप से बच सकें। जिससे कि उत्पाद के पैदा करने के लिए प्रतियोगिता उत्पन्न हो सके एवं प्रोत्साहन बढ़ सके।

**2. व्यापारी–** भारत के गौढ़ या दोयम या वैकल्पिक व्यापारियों को वर्तमान बाजार अथवा ई–नाम बाजार व्यवस्था के योग्य बनाना, जिससे व्यापारी भारत के कृषि उपज मंडी समिति (ए.पी.एम.सी.एस.) से भारत एवं विश्व के अन्य बाजारों तक अपना व्यावसाय फैला सकें एवं उसका निश्पादन कर सकें। स्थानीय व्यापारी बड़े राष्ट्रीय बाजार की पहचान एवं उपयोग वैकल्पिक बाजार के रूप में भी अपना सकें।

**3. क्रेता, प्रसंस्करणकर्ता एवं निर्यातक–** ई–नाम बाजार कृषि उत्पादों का उचित मूल्य किसानों को प्रदान कराता है, क्योंकि विपणन प्रक्रिया में दलालों एवं मध्यस्थों की संख्या न्यूनतम हो जाती है और विपणन लागत में कमी आती है। साथ ही यह बाजार उपभोक्ताओं को भी उत्पाद को उचित मूल्यों पर उपलब्ध कराती है। क्रेता, प्रसंस्करणकर्ता एवं निर्यातक कृषि उत्पाद को भारत के विभिन्न बाजारों में उच्च गुणवत्ता के साथ स्थानांतरित करता है, जिससे देश में उत्पादों के मूल्यों में गिरावट, कालाबाजारी आदि समस्याओं से बचाव होता है।

जो देश हित एवं किसान के लिए कल्याणकारी होता है।

**4. उपभोक्ता–** ई–नाम के द्वारा व्यापारियों की संख्या में वृद्धि होगी। जिससे उनके बीच में प्रतियोगिता बढ़ेगी, जो कि मूल्यों में स्थिरता में बदलाव होगा एवं उपभोक्ता को उपलब्धता अधिक होगी। ई–नाम के द्वारा व्यापारियों की संख्या में वृद्धि होगी। जिससे उनके बीच में प्रतियोगिता बढ़ेगी, जो कि मूल्यों में स्थिरता में बदलाव होगा एवं उपभोक्ता को उपलब्धता अधिक होगी।

**5. मण्डी/बाजार–** ई–नाम के द्वारा बाजारों में रिकार्ड के रखरखाव एवं प्रबंधन में कमी आयेगी। व्यापारियों एवं दलालों के निगरानी एवं विनिमयन आसान होगी। टेंडर एवं बोली लगाने की प्रक्रिया में हेराफेरी या गड़बड़ी की गुंजाइश खत्म हो जायेगी। बाजार में होने वाले लेन–देन इस प्रकार से होने पर बाजार की आवंटन शुल्क में वृद्धि होगी। इससे बाजार में मानव श्रम की आवश्यकता में कमी होगी क्योंकि इलेक्ट्रानिक रूप से निविदा/बोली होगी। उदाहरण के लिए सिस्टम कुछ सेकेण्ड के अंदर ही लॉट के विनर या विजयी व्यापारी को घोषित करेगा। यह सिस्टम सूचनाओं की विषमता को समाप्त करता है, जैसे कि ए.पी.एम.सी. क्रियाओं या गतिविधियों की जानकारी वेबसाइट से सीधे जानकारी ले सकता है।

**6. ई–नाम–** इसका विशेष उद्देश्य है कि कृषि क्षेत्र के विपणन में उन्नति करना, एक लाइसेंस के साथ पूरे राज्य में एक जैसी लेवी केन्द्र तथा पूरा राज्य एक बाजार में हो जाय, राज्यों में बाजारों का विखण्डीकरण समाप्त हो जाय तथा वस्तुओं की आपूर्ति श्रंखला में वृद्धि कर वस्तुओं के अपव्यय में कमी की जा सके।

## Registration Guidelines For producer:

- User can register by Clicking http://www.enam.gov.in/web
- Or visiting http://enam.gov.in/NAMV2/home/other_register.html in Registration Page.
- Select "Registration Type" as "Farmer" and select the desired "APMC".
- Provide your correct Email ID as you will receive login ID and password in the same.
- Once successfully registered you will receive a temporary login ID & password in the given e-mail.
- Login to the dashboard by clicking icon on www.enam.gov.in/web through the system.
- User will find a flashing message on the dashboard as: "Click here to register with APMC".
- Click on the flashing link which will redirect you to registration page for filling/updating details.
- It will be sent for approval to your selected APMC after KYC is completed.
- After successful login to your dashboard you will be able to see all APMC address details.
- After successful submission user will receive an e-mail confirming the submission of application to concerned APMC with status of the application as submitted/In progress—approved—rejected.
- Once approved by APMC, you will receive eNAM Farmer Permanent Login ID (ex: HR866F00001) and Password for complete access on eNAM platform on the registered e-mail id.
  Or you can contact to your respective Mandi/APMC for the same.

❖ ❖ ❖

# आम का कैनॉपी (छत्र) प्रबंधन

**आदित्य कुमार, अमित सिंह तिवारी, संजीव कुमार सिंह एवं शिवांगी तिवारी**
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)

आम एक प्राचीन एवं प्रसिद्ध फल है जिसे फलों का राजा कहा जाता है। विश्व के कुल आम उत्पादन में भारत का हिस्सा लगभग 65% है। आम के परम्परागत रोपण दूरी एवं वृक्ष के विशाल आकार के कारण आम की पैदावार (लगभग 8.71 टन/हे.) एवं गुणवत्ता में कमी पायी गयी है। आम की बागवानी में आयी लोकप्रियता, घरेलू तथा अन्तराष्ट्रीय बाजार में इसकी मांग में वृद्धि को भी दर्शाता है। आम का व्यापार विश्व के सभी देशों में किया जाता है। आम का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इसके प्रसंस्कृत उत्पादों को अमेरिका एवं यूरोपीय देशों में निर्यात किया जाता है। आम में कम उत्पादन के मुख्य कारण एकान्तरित फलन, झुमका रोग, फलों का गिरना, कीट व्याधि का प्रकोप एवं सघन छत्र है। आम की पैदावार एवं गुणवत्ता बढाने के लिए छत्र प्रबन्धन करना चाहिए। प्रति इकाई क्षेत्र अधिक पैदावार एवं गुणवत्ता युक्त फलों की प्राप्ति हेतु वृक्ष के छत्र में परिवर्तन करना ही कैनॉपी प्रबंधन या छत्र प्रबंधन कहलाता है। विशालकाय वृक्ष एवं सघन छत्र होने के कारण सूर्य का प्रकाश वृक्ष के पूरे क्षेत्रों में समान रूप से नहीं पहुँच पाता जिसके कारण गुणवत्ता युक्त पर्याप्त फलों की पैदावार नहीं होती है। व्यवसायिक फल उत्पादन के लिए वृक्षों के प्राकृतिक रूप एवं बनावट को वृक्ष की कटाई–छटाई द्वारा सवांरा जाता है जिसके अंतर्गत वृक्ष के अवांछनीय शाखाओं को काट–छाँट कर अलग कर दिया जाता है। जिसे प्रूनिंग (काँट–छाँट) कहते हैं तथा संधाई करके पौधे को एक विशेष आकार दिया जाता है। भारत में आम का कुल क्षेत्रफल 2297000 हेक्टेयर, उत्पादन 15188000 मीट्रिक टन एवं उत्पादकता 6.6 मीट्रिक टन प्रति हेक्टेयर है। आम उत्पादन की दृष्टि से उत्तर प्रदेश प्रथम (23.9 प्रतिशत), आन्ध्र प्रदेश द्वितीय (22.1 प्रतिशत) तथा कर्नाटक तृतीय (11.7) स्थान पर है।

### पैदावार बढ़ाने के आधुनिक तकनीकः

1. सघन पौध रोपण (एच. डी. पी.) करना।
2. छत्र प्रबंधन करना।
3. टपक सिंचाई एवं फर्टीगेशन।
4. पलवार (मल्चिंग) का उपयोग
5. पुराने वृक्षों का जीर्णोद्धार।
6. वृद्धि नियामक हार्मोन का उपयोग।

### छत्र प्रबंधन के उद्देश्यः

1. पौधों की शाखाओं को मजबूत करना।
2. पौधों को उचित आकार देना।
3. प्रति वृक्ष गुणवत्तायुक्त फलों की अधिक पैदावार करना।
4. खुले छत्र का विकास करना ताकि सूर्य का प्रकाश वृक्ष के पूरे क्षेत्रों में समान रूप से पहुंचे।
5. कृषि क्रियाएं सरलता से की जा सकें।
6. अन्तरवर्तीय फसलों की खेती द्वारा प्रारंभिक आय प्राप्त करना।
7. उत्पादन लागत को कम करना।

### आम के नये उद्यान का छत्र प्रबंधनः

- पौधे की मुख्य शाखा को 1 मी. की ऊँचाई तक बढ़ने दें।
- मुख्य तने का जमीन से 60 – 70 सें.मी. की ऊचाई पर अक्टूबर–नवम्बर के महीने में सिकेटियर से काट दें।
- शीर्ष कटिंग के बाद मार्च–अप्रैल के दौरान नये प्ररोह उत्पन्न होते हैं जिनमें से 3–4 प्ररोह को छोड़कर अतिरिक्त शाखाओं को काट दें।
- द्वितीय नये प्ररोह (शाखा) के विकास के लिए अक्टूबर–नवम्बर में प्राथमिक शाखाओं को 60–70 सें.मी. ऊँचाई पर काट दें।
- द्वितीयक शाखाओं में 2–3 प्ररोह (शाखा) को छोड़कर अतिरिक्ति प्ररोह का विरलीकरण कर दें।
- इस प्रकार प्रारंभिक संधाई एवं काट–छाँट (प्रुनिंग) से वृक्ष का छत्र खुला एवं फैला हुआ होने के साथ–साथ इच्छित आकार के वृक्ष होते हैं और प्रति वृक्ष अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

### आम के फलदार वृक्षों का छत्र प्रबंधनः

1. फलदार वृक्षों के कैनॉपी प्रबंधन तथा उसकी उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रत्येक वृक्ष में सीधी बढ़ने वाली शाखाओं का विरलीकरण करें।
2. वृक्ष की ऊँचाई को कम करने तथा समान रूप से सूर्य के प्रकाश प्रवेश हेतु सीधी उगने वाली एक या दो शाखाओं को सितम्बर–अक्टूबर के महीने में हटा दिया जाये।
3. अधिक क्रोचेस वाली शाखाओं को संरक्षित किया जाय।
4. फलदार आम के वृक्षों में कैनॉपी प्रबंधन के लिए अधिकतम 25% से ज्यादा बायोमास को न हटायें।
5. सघन रोपण वाले वृक्षों के छत्र के अन्दर पर्याप्त प्रकाश पहुंचाने के उद्देश्य से सितम्बर–अक्टूबर के दौरान प्रत्येक वर्ष 10–15% बायोमास हटाया जाय।
6. 10–15 प्रतिशत की छँटाई में एक दूसरे के ऊपर चढ़ी हुई शाखाओं को हटाना चाहिए।
7. आम के फलदार वृक्षों का छत्र प्रबंधन वर्ष में दो बार की जाती है।

**प्रथम प्रूनिंग–** तोड़ाई के तुरन्त बाद (अंतिम जून से जुलाई तक)।
**दूसरा प्रूनिंग–** फूल आने से पहले (मध्य दिसम्बर तक)।

### सघन पौध रोपण एवं छत्र प्रबंधन से लाभः

- फल तुड़ाई में आसानी होने के साथ–साथ लागत भी कम आती है।
- फल देने वाली शाखाएं अनुत्पादक शाखाओं की तुलना में अधिक संख्या में होती हैं।
- कीट तथा रोग नियंत्रण करने में सुविधा होती है।
- उच्च आर्थिक लाभ की प्राप्ति हेतु सीमित क्षेत्र में अधिक पौध

रोपण के कारण प्रति इकाई क्षेत्र में आमदनी अधिक होती है।

- आम या मिश्रित फल बाग के साथ अन्य फसलों की खेती की भी अनेक संभावनाएं है। जैसे–

  **सब्जियों में–** भिण्डी, फूलगोभी, पत्तागोभी, मिर्च तथा बैगन आदि।

  **मसालों में–** अदरक, हल्दी एवं अन्य कन्दीय फसलें।

**सावधानियाँ:**

1. बड़ी शाखाओं की कटाई के समय पहला कटाव (20–40 मिलीमीटर ) शाखा के नीचे से किया जाय तथा बाद में ऊपर से काटा जाय ताकि शाखा फट न जाये।
2. कटाव थोड़ा तिरछा होना चाहिए ताकि उसमें पानी का ठहराव न हो सके।
3. असुविधा से बचने के लिए लम्बी व सीधी बढ़ने वाली शाखाओं की कटाई दो या अधिक चरणों में करनी चाहिए।
4. कटाई (प्रूनिंग) कार्य के बाद सभी कटी हुई शाखाओं को उद्यान से तुरन्त हटा देना चाहिए।
5. प्रूनिंग (काट–छाँट) के बाद 0.5 प्रतिशत बोर्डेक्स मिक्चर का छिड़काव करना चाहिए या कटाव स्थान पर बोर्डो पेस्ट लगाना चाहिए ताकि किसी हानिकारक फंफूद का प्रकोप न हो सके।

**नोट–** मजुमदार एवं शर्मा (1985) के अनुसार आम के संकर किस्म आम्रपाली को 2.5 मीटर x 2.5 मीटर के दूरी पर सघन रोपण (एच. डी. पी.) करने से तथा राम एवं सिरोही (1985) के अनुसार किस्म दशहरी को 3.0 मीटर x 2.5 मीटर के दूरी पर सघन रोपण करने पर परम्परागत रोपण दूरी (10 मीटर x 10 मीटर) की तुलना में गुणवत्तायुक्त फलों का उत्पादन प्रति हेक्टेयर अधिक प्राप्त होता है।

❖❖❖

# आम और अमरूद के उत्पादन में बोरॉन का योगदान

**आदित्य कुमार, अमित सिंह तिवारी, संजीव कुमार सिंह एवं शिवांगी तिवारी**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

पेड़–पौधे अपनी वृद्वि के लिए मृदा, जल तथा वायु आदि तत्वों का अवशोषण करते हैं। किन्तु पौधे में सभी शोषित तत्वों की भूमिका नहीं होती है। पोषक तत्व जिनकी अनुपस्थिति में पौधें का जीवन चक्र सरलतापूर्वक नहीं चल पाता है, पौधे के लिए आवश्यक पोषक तत्व कहलाते हैं। पौधों का प्राथमिक कार्य सौर्य ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में रूपान्तरित करना है। प्रकाश संश्लेषण से अनेक प्रकार के पदार्थ बनते हैं जो कि पौधों के जीवन चक्र के लिए अत्यन्त आवश्यक होते हैं। पोषक तत्व की कमी अथवा अधिकता होने से पौधों की बढ़वार, उपज एवं फलों के गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पोषक तत्व अनेक प्रकार के रोगों से रक्षा करने के साथ–साथ खनिजों से होने वाले हानिकारक प्रभावों को आयनिक सन्तुलन द्वारा कम करते हैं। अधिक उत्पादन के लिए इन कारकों को पूर्ण रूप से ध्यान रखना अति आवश्यक है। प्रकृति में बोरॉन स्वतंत्र रूप से नहीं पाया जाता है, बल्कि आक्सीजन के एक यौगिक के रूप में रहता है अतः इसकी मात्रा पृथ्वी पर बहुत ही कम है।

### बोरॉन क्यों जरूरी हैः

यह एक सूक्ष्म पोषक तत्व है जो पौधों में बोरेट आयन के रूप में अवशोषित होता है। यह पौधे के विकास ही नहीं बल्कि पौधों की कोशिका विभाजन एवं उनके विकास में सहायक होता है और परागनली की वृद्धि में महत्वपूर्ण कार्य करता है।

यह कम गतिशील एवं पौधों की वानस्पतिक बढ़वार के तुलना में फलों के विकास और बीज बनने में ज्यादातर उपयोगी होता हैं। इसकी कमी होने से पौधों में फूलों के गिरने की अधिकता तथा पौधों के जड़ों की क्रियाशीलता में कमी पायी जाती हैं। यह निषेचन क्रिया को बढ़ने के साथ–साथ फलों के सेट होने में सहायता प्रदान करता है। पौधे में हार्मोन संचालन तथा शर्करा को ले जाने में सहायता करता है। मनुष्यों में बोरॉन प्रति रक्षक क्षमता में महत्पूर्ण भूमिका निभाता है तथा इसकी उचित मात्रा लेने से हड्डियाँ मजबूत होती हैं।

### पौधों में बोरॉन की कमी एवं अधिकता के लक्षणः

मिट्टी में पोषक तत्व की कमी होने से पौधे में भी इसकी कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। पौधों में पोषक तत्व की गतिशीलता के आधार पर कमी के लक्षण पौधे के निचले तथा ऊपरी भाग पर विकसित होते हैं अतः इसकी कमी से पौधों के नए पत्तियों तथा फलों में लक्षण दिखाई देते हैं।

पौधों को पोषक तत्व की समुचित मात्रा पौधों के विकास के लिए आवश्यक होती है। इसकी कमी या अधिकता होने पर पौधों को उचित लाभ नहीं मिल पाता है। बोरॉन की कमी होने से पत्तियों की नोक व ऊपरी भाग के किनारे पीले पड़ जाते है और पत्तियों की निचली सतह की शाखाएँ मोटी हो जाती हैं। जो कि बाद मे फूल जाती हैं और पत्तियाँ अनियमित आकार की हो जाती हैं। पत्तियाँ गिरने लगती हैं तथा टहनियाँ ऊपर से सूखने लगती हैं। कुछ फलों मे आंतरिक क्षय रोग हो जाता है। बोरॉन की अधिकता होने पर प्रारंभिक अवस्था में पौधे की पत्तियों का शीर्ष और किनारे से हरिमहीनता शुरू होकर मध्य शिरा की और बढ़ती है। पत्तियों के किनारे झुलस जाते हैं और अंत मे पूरी पत्तियाँ झुलसकर परिपक्व होने से पहले ही गिर जाती हैं।

### मृदा मे बोरॉन की उपलब्धताः

मृदा में बोरॉन की मात्रा तथा पौधों को बोरॉन की उपलब्धता मृदा के गुणों पर निर्भर करती है। मृदा मे 5 पी.पी.एम. से कम बोरॉन की मात्रा इसकी कमी के लक्षण प्रदर्शित करती है। बलुई मिट्टी में बोरॉन की उपलब्धता कम होती है क्योंकि इसमें निछालन क्रिया अधिक होती है। बोरेट ऋणात्मक आयन होने के कारण आसानी से निछालित हो जाता है इसी कारण बलुई में बोरॉन की कम मात्रा पायी जाती है। मृदा का कम तापमान बोरॉन के अवशोषण को कम करता है। आम और अमरूद अधिकतर बलुई या बलुई–दोमट मिट्टी में होने के कारण बोरॉन की कमी से प्रभावित होते हैं। जिसका सीधा प्रभाव फलों के उपज एवं गुणवता पर पड़ता है।

### बोरान की विषाक्तताः

बोरॉन की मृदा में अधिक उपलब्ध मात्रा पौधों की बढ़वार को प्रभावित करता है। 5 पी.पी.एम. से अधिक होने पर मृदा में बोरॉन की विषाक्तता हो सकती है। मृदा मे विषैलापन वहां ज्यादा हो सकता है जहां अधिक मात्रा में बोरेक्स और बोरॉन युक्त खनिज पदार्थ मृदा में मौजूद होते हैं। सिंचाई के पानी में बोरॉन की मात्रा अधिक होने पर मृदा में इसकी अधिकता हो सकती है, जिसके कारण पुरानी पत्तियों के किनारे की तरफ पीछे भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। इसके विषैलापन के लक्षण पौधों की पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं।

### फल वृक्षों मे बोरॉन का प्रयोगः

वृक्षों में उर्वरक देने के समय का निर्धारण महत्वपूर्ण है। उचित समय पर खाद एवं उर्वरक न देने से पौधों की वृद्वि, फसल एवं फलों की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। सामान्यतः खाद एवं उर्वरकों को मिट्टी में डाला जाता है। बोरॉन की आधी मात्रा वृद्धि के समय तथा शेष आधी मात्रा वर्षा ऋतु के बाद प्रयोग करनी चाहिए। यदि उर्वरक को छिड़काव विधि से देना है तो पौधों में नई वृद्धि आने के एक या दो दिन बाद दो–तीन बार उपयुक्त अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए। खाद एवं उर्वरकों को देने से पहले मृदा एवं पत्तियों को साथ कर देना चाहिए, जिससे उसकी सही मात्रा का निर्धारण किया जा सके। यदि उर्वरक को सिंचाई जल के साथ ड्रिप से घोल के माध्यम से किया जाता है तब जल के साथ–साथ उर्वरक पूरे बाग में उपलब्ध हो जाता है तथा इस विधि से उर्वरक कम खर्च होता है। आम के बाग में बोरॉन की कमी के लक्षण दिखने पर जुलाई–अगस्त के महीने में 100–150 ग्राम बोरेक्स पाउडर प्रति पेड़ प्रति वर्ष की दर से मे डालकर गुड़ाई कर देनी चाहिए अथवा 0.6–0.8 प्रतिशत बोरेक्स का घोल फल लगने के उपरान्त 15–20 दिन के अन्तराल पर तीन छिड़काव करने से गुणवत्तायुक्त उपज ली जा सकती है।

❖❖❖

# बीज उपचार की विधियाँ एवं फायदे

**अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, राजबीर सिंह एवं नीरज वर्मा**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

**बीज उपचार क्या है?:**

बीज रोगजनकों, कीड़ों आदि के वाहक हो सकते हैं। जिससे भंडारण के समय अथवा खेत में बीज एवं बीज फसल को हानि होती है। इनकी रोकथाम के लिए बीजों में भंडारण अथवा बोने से पूर्व कुछ भौतिक व रासायनिक क्रियाएं की जाती हैं। जिन्हें बीज उपचार कहा जाता है।

**बीज उपचार की विधियाँ:**

a) **सुरक्षित नमी स्तर–** बीज में रोग एवं कीड़ों के संक्रमण को रोकने के लिए बीजों को सुरक्षित नमी स्तर तक सुखाना होता है जो विभिन्न फसलों के बीजों के लिए अलग–अलग हैं। जैसे– धान्यों के लिए 12 प्रतिशत, सोयाबीन के लिए 10 प्रतिशत, दलहनों के लिए 9 प्रतिशत तथा तिलहनों के लिए 8–10 प्रतिशत आदि।

b) **सौर उपचार–** इस विधि द्वारा बीज उपचार मई–जून के महीनों में जब तापमान 45° से. से 50° से. हो तब इस विधि में बीजों को सुबह लगभग 2 घण्टे पानी में भिगोने के बाद फर्श पर फैलाकर धूप में सुखाया जाता है। इस उपचार के द्वारा गेंहूँ व जौ के अनावृत कण्ड रोग के रोगाणुओं को नष्ट किया जा सकता है।

c) **शुष्क बीजों को उच्च तापमान देकर–** फसलों के बीजों को कुछ समय के लिए उच्च तापमान पर रखने से रोग जनक मर जाते हैं। जैसे– टमाटर का मोजेक विषाणु सूखे बीजों को 70 डिग्री से. तापमान पर तीन दिन रखने पर समाप्त हो जाता है।

d) **गर्म जल उपचार–** बीज उपचार की इस विधि में बीजों को कुछ समय के लिए गर्म पानी में भिगोकर रखने से कुछ रोग जनक नष्ट हो जाते हैं। जैसे फूलगोभी के बीजों को 50 डिग्री से. तापमान वाले पानी में 20 मिनट तक रखने से जेन्थोमोनास कैम्पेस्ट्रिस नामक जीवाणु मर जाता है। यह विधि बंदगोभी, गाजर, खीरा, प्याज, सलाद, पालक, मिर्च, मूली आदि के लिए भी प्रयोग की जा सकती है।

e) **नमकीन जल उपचार–** इस विधि में बीजों को साधारण नमक के 10 प्रतिशत के घोल में डुबोने से रोग कीटों से संक्रमित बीज पानी में ऊपर तैर जाते हैं। जिन्हें हाथ से अलग कर लिया जाता है।

**रासायनिक उपचार:** बीज जन्य रोगजनकों को नष्ट करने अथवा रोकथाम के लिए कवकनाशकों, प्रतिजैविकों अथवा कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता है, जिससे बीज भंडारण के दौरान सुरक्षित रहता है तथा खेत में बोने पर स्वस्थ पौध विकसित होता है। रसायनों का प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया जाता है।

a) **धूल उपचार–** इस विधि में घूमने वाले ड्रम में बीज व रसायन चूर्ण को डालकर मिलाया जाता है। यह विधि सोयाबीन, ज्वार, मूंगफली, उड़द, मूंग आदि के लिए उपयुक्त है।

b) **पंक उपचार–** पानी में क्लेदनीय चूर्ण के निलंवन को पंक उपचार कहते हैं।

c) **द्रव उपचार–** तरल रूप में रसायनों के प्रयोग को द्रव उपचार कहते हैं।

d) **धूम्रन उपचार–** भंडारण के कीटनाशी रसायनों को गैस रूप में प्रयोग करने की क्रिया धूम्रन कहलाती है।

**सावधानियां:**

1- फसलों का बीज उपचार निर्धारित मात्रा से ही करें।
2- रसायनों के व्यवहार से पहले एक्सपायरी तिथि अवश्य देखें।
3- उपचार के उपरांत डब्बों अथवा थैलों को मिट्टी में अवश्य दबा दें।
4- रसायनों को बच्चों एवं मवेशियों से दूर रखें।

**बीज उपचार के फायदे:**

1- बीज जन्य रोगों की रोकथाम।
2- बीज अंकुरण में वृद्धि।
3- भंडारगृह में कीटों से सुरक्षा।
4- मृदा कीड़ों से बीज तथा पौधों की सुरक्षा।
5- लाभदायक कीड़ों की वृद्धि।
6- गुणता संपन्न बीज का उत्पादन।

बीज उपचार के लिए अनुशंसा

| क्र. | फसल का नाम | प्रमुख रोग एवं कीट | रसायन/जैवनाशी का नाम | रसायन/जैवनाशी की मात्रा |
|---|---|---|---|---|
| 1 | धान | झुलसा / ब्लास्ट, पत्र लक्षण / भूरी | बैविस्टीन / कैप्टान | 1 / 2 ग्राम |
| | | जीवाणु पर्ण अंगमारी | स्यूडोमानास फ्लोरिसेंस 0.5 | 10 ग्राम |
| | | अन्य कीट (दीमक) | क्लोरोपायरीफॉस | 3 मिली |
| 2 | गेंहूँ | अनावृत कंड | रैक्सिल / विटावैक्स | 1.5 / 2.5 ग्राम |
| | | आल्टरनेरिया पत्र लक्षण, अंगमारी, हेल्मिंथोस्पोरियम | बैविस्टीन | 2 ग्राम |
| | | दीमक | क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. | 5 मिली |
| 3 | मक्का | हेल्मिंथोस्पोरियम, शीथ ब्लास्ट | थीरम / कैप्टान | 3 ग्राम |
| 4 | अरहर, मूंग, चना, मसूर, सनई | उकठा रोग | बैविस्टीन / थीरम | 3 ग्राम |
| | | उकठा एवं झुलसा | ट्राइकोडर्मा विरडी 1% WP | 9 ग्राम |
| | | दीमक | क्लोरपारीफॉस 20 ई.सी. | 6 मिमी |
| 5 | तीसी | उकठा रोग | थीरम | 3 ग्राम |
| 6 | सरसों | श्वेत कीट | बैविस्टीन / थीरम | 2 / 2 ग्राम |
| 7 | मूंगफली | बीज एवं मिट्टी जनित रोग | बैविस्टीन / थीरम | 2 / 2 ग्राम |
| 8 | गन्ना | लाल सड़न रोग | बैविस्टीन / थीरम | 2 / 2 ग्राम |
| | | | ट्राइकोडर्मा सप. | 4–6 ग्राम |
| 9 | मटर एवं अन्य फलदार सब्जी | उकठा रोग | कैप्टान / थीरम | 3 ग्राम |
| | | जड़ सड़न | बेसिलस सुटीलीस | 2.5–5 ग्राम |
| 10 | भिण्डी | उकठा रोग | कैप्टान / थीरम | 3 ग्राम |
| 11 | बैगन | जीवाणु मुरझा रोग | स्यूडोमोनस फ्लोरिसेंस 0.5% WP | 10–15 ग्राम |
| 12 | मिर्च | मिट्टी जनित रोग | ट्राइकोडर्मा विरडी 1% WP | 2 ग्राम |
| | | अन्य कीट (जसीड, एफिड, थ्रिप्स) | इमिडाक्लापिड 70 WP | 10.15 ग्राम |
| 13 | शिमला मिर्च | रूट नोट निमेटोड | स्यूडोमोनस फ्लोरिसेंस, वर्टीसीलियम क्लेमाईडोस्पोरियम | 10 ग्राम |
| 14 | टमाटर एवं पत्तीदार सब्जी | उकठा | बैविस्टीन | 2 ग्राम |
| | | | स्यूडोमोनस फ्लोरिसेंस, वर्टीसीलियम क्लेमाईडोस्पोरियम | 10 ग्राम |
| 15 | गाजर, प्याज, मूली, शलजम | बीज एवं मिट्टी जनित रोग | बैविस्टीन | 2 ग्राम |
| | | | ट्राइकोडर्मा विरडी 1% WP | 2 ग्राम |
| 16 | आलू | मिट्टी एवं कंद जनित रोग | साफ / कम्पेनियन | 2 ग्राम |
| 17 | गोभी | मृदुरोमिल असित | बैविस्टीन | 1.5–2 ग्राम |
| | | मिट्टी एवं बीज जनित रोग | ट्राइकोडर्मा विरडी 1% WP | 2 ग्राम |
| | | रूट नोट निमेटोड | स्यूडोमोनस फ्लोरिसेंस, वर्टीसीलियम क्लेमाईडोस्पोरियम | 10 ग्राम |

# मृदा अपरदन के कारण और उपाय

**अमित सिंह तिवारी, संजीव कुमार सिंह एवं अतुल नामदेव**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

अपरदन (Erosion) वह प्राकृतिक प्रक्रिया है, जिसमें चट्टानों का विखंडन और परिणामस्वरूप निकले ढीले पदार्थों का जल, पवन, इत्यादि प्रक्रमों द्वारा स्थानांतरण होता है। अपरदन के प्रक्रमों में वायु, जल तथा हिमनद और सागरीय लहरें प्रमुख हैं।

समुद्रतट पर लहरों और ज्वारभाटा की क्रिया के कारण पृथ्वी के भाग टूटकर समुद्र में विलीन होते जाते हैं। मिट्टी अथवा कोमल चट्टानों के अलावा कड़ी चट्टानों का भी इन क्रियाओं से धीरे धीरे अपक्षय होता रहता है। वर्षा और तुषार भी इस क्रिया में सहायक होते हैं। वर्षा के जल में घुली हुई गैसों की रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप, कड़ी चट्टानों का अपक्षय होता है। ऐसा जल भूमि में घुसकर अधिक विलेय पदार्थों के कुछ अंश को भी घोल लेता है और इस प्रकार अलग हुए पदार्थों को बहा ले जाता है। वर्षा, पिघली हुई ठोस बर्फ और तुषार निरंतर भूमि का क्षरण करते हैं। इस प्रकार टूटे हुए अंश नालों या छोटी नदियों से बड़ी नदियों में और इनसे समुद्र में पहुँचते रहते हैं।

नदियों का अथवा अन्य बहता हुआ जल किनारों की भूमि को काटकर, मिट्टी को ऊँचे स्थानों से नीचे की ओर बहा ले जाता है। ऐसी मिट्टी समुद्र तक पहुँच जाती है और समुद्र पाटने का काम करती है। समुद्र में गिरनेवाले जल में मिट्टी के सिवाय विभिन्न प्रकार के घुले हुए लवण भी होते हैं।

### मृदा अपरदन के कारणः

अपरदन के कारणों को जाने बिना अपरदन की प्रकियाओं व इसके स्थानान्तरण की समस्या को समझना मुश्किल है। मृदा अपरदन के कारणों को जैविक व अजैविक कारणों में बांटा जा सकता है। किसी दी गई परिस्थिति में एक या दो कारण प्रभावी हो सकते हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि दोनों कारण साथ–साथ प्रभावी हों। अजैविक कारणों में जल व वायु प्रधान घटक हैं, जबकि बढ़ती मानवीय गतिविधियों को जैविक कारणों में प्रधान माना गया है जो मृदा अपरदन को त्वरित करता है।

### वृक्षों का अविवेकपूर्ण कटावः

- वानस्पतिक फैलाव का घटना।
- वनों में आग लगना।
- भूमि को बंजर/खाली छोड़कर जल व वायु अपरदन के लिये प्रेरित करना।
- मृदा अपरदन को त्वरित करने वाली फसलों को उगाना।
- त्रुटिपूर्ण फसल चक्र अपनाना।
- क्षेत्र ढलान की दिशा में कृषि कार्य करना।
- सिंचाई की त्रुटिपूर्ण विधियाँ अपनाना।

### मृदा अपरदन के प्रकारः

मृदा अपरदन को मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया है।

**1. भूगर्भिक अपरदन–** प्राकृतिक या भूगर्भिक अपरदन मृदा अपरदन को इसकी प्राकृतिक अवस्था में अभिव्यक्त करता है। प्राकृतिक स्थिर परिस्थितियों में किसी स्थान की जलवायु एवं वानस्पतिक परत, जो कि मृदा अपरदन या प्राकृतिक अपरदन वनस्पतिक परत में अपरदन को दर्शाता है। इसके अंतर्गत अपरदन गति इतनी धीरे होती है कि होने वाला मृदा ह्रास चट्टानों के विघटन प्रक्रिया से बनने वाली नई मृदा में समायोजित हो जाता है। इस प्रकार होने वाला मृदा ह्रास, मृदा निर्माण से कम या बराबर होता है।

**2. त्वरित अपरदन–** जब मृदा निर्माण व मृदा ह्रास के बीच प्राकृतिक संतुलन, मानवीय गतिविधियों जैसे कि वृहत स्तर पर वनों की कटाई या वन भूमि को कृषि भूमि में रूपांतरित करके प्रभावित किया जाता है जिससे अपरदन की तीव्रता कई गुणा बढ़ जाती है। ऐसी परिस्थितियों में प्राकृतिक साधनों से सतही मृदा ह्रास दर, मृदा निर्माण दर से अधिक होती है। त्वरित अपरदन, भूगर्भिक अपरदन की अपेक्षा तीव्रता से होता है। त्वरित अपरदन से कृषि योग्य भूमि का उपजाऊपन लगातार कम होता जाता है।

### जल अपरदन के प्रकारः

जल के अभिगमन द्वारा मृदा का ह्रास जल अपरदन कहलाता है। उच्च व मध्यम ढाल वाली भूमि में मृदा ह्रास का मुख्य कारण जल अपरदन होता है। जब अत्यधिक वर्षा के कारण उत्पन्न जल बहाव के द्वारा मृदा को बहा कर दूर ले जाता है तो जल अपरदन होता है। जल अपरदन के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैः

**1. वर्षा जल अपरदन–** गिरती हुई वर्षा जल की बूंदों के प्रभाव से होने वाले मृदा कणों के पृथक्करण एवं स्थानान्तरण को वर्षा जल अपरदन कहते हैं जिसे बौछार अपरदन के नाम से भी जाना जाता है। मृदा की एक बड़ी मात्रा बौछार की इस सरल प्रक्रिया द्वारा नष्ट हो जाती है। इस अपरदन प्रक्रिया को प्रथम चरण के रूप में जाना जाता है। इस प्रक्रिया में मृदाकणों को मुख्यतः कुछ सेंटीमीटर की दूरी तक ले जाया जाता है तथा इसके प्रभाव स्थानीय होते हैं।

**2. परत अपरदन–** मृदा की लगभग एक समान पतली भूमि का जल बहाव के द्वारा कटाव को परत अपरदन के नाम से जाना जाता है। वर्षा जल बौछार के द्वारा मृदा कटाव ही परत अपरदन के नाम से जाना जाता है। वर्षा की बूंदों के टकराने से मृदा कण अलग हो जाते हैं एवं बढ़ा हुआ अवसादन मृदा छिद्रों को बंद करके जल सोखने की दर को कम कर देता है। इस प्रकार का अपरदन अत्यधिक हानिकारक होता है क्योंकि इसकी कम गति के कारण किसान को इसकी उपस्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता है।

**3. रिल अपरदन–** यह परत अपरदन का एक उन्नत रूप है जो कि बहते हुए जल के अधिक सांद्रण होने के कारण होता है। जल प्रवाह से होने वाले मृदा कटाव द्वारा बनने वाली कम गहरी नालियों को रिल

अपरदन कहते हैं। इस तरह से बनी नालियों को जुताई कार्यों से भरा जा सकता है।

**4. नाली अपरदन–** अत्यधिक जल प्रवाह द्वारा होने वाले मृदा कटाव से गहरी नालियों का निर्माण हो जाता है जिसे नाली अपरदन के रूप में जानते हैं। इस तरह से बनी नालियों को जुताई कार्यों से नहीं भरा जा सकता है। यह रिल (गली) लगातार, चौड़ाई एवं लम्बाई में बढ़ती जाती है जो अंत में अधिक सक्रिय हो जाती है। नालियों के आकार (U या V आकार), गहराई (सूक्ष्म, मध्यम या वृहत) के आधार पर इसका वर्गीकरण किया जाता है।

**5. धारा तट अपरदन–** नदी तल से जल प्रवाह द्वारा नदी के किनारों के मृदा कटाव को धारा तट अपरदन कहते हैं। धारा तट अपरदन व नाली अपरदन विभेदन करने योग्य हैं। धारा तट अपरदन मुख्यतया सहायिकाओं के निचले स्तर पर तथा नाली अपरदन समान्य रूप से सहायिकाओं के ऊपरी सिरे से होता है। वानस्पतिक कटाव, अतिचारण या किनारों के निकट जुताई करने से तीव्र हो जाता है।

**6. भूस्खलन अपरदन–** भूस्खलन या मृदापिंड अपरदन पहाड़ी सतह या पर्वतीय ढाल के नीचे गीली ढालदार भूमि पर होता है। इसके मुख्य कारण जैसे ढालों पर कटाई या खुदाई, कमजोर भूगर्भ या ढालों पर वानस्पतिक फैलाव की कमी से अपरदन में वृद्धि हो जाती है।

**7. दर्रा निर्माण–** खड़ी सतहों के साथ गहरी व संकरी नालियाँ सामान्यतः दर्रा कहलाती हैं। दर्रा गम्भीर अपरदन संकट को अभिव्यक्त करता है जो कि भूमि के लगातार अविवेकपूर्ण उपयोग के कारण रिल के फैलने से उत्पन्न होता है। दर्रा निर्माण के मुख्य कारणों जैसे नदी के तट व इससे जुडी भूमि के साथ ऊंचाई में अचानक परिवर्तन, गहरा व सूक्ष्म रंधमुक्त मृदा सतह, कम वानस्पतिक फैलाव व उतार के समय नदी जल का विपरीत प्रवाह द्वारा गंभीर रूप से तट अपरदन होता है जो अंतोगत्वा दर्रा निर्माण को प्रोत्साहित करता है।

## जल अपरदन को प्रभावित करने वाले कारकः

मृदा अपरदन के नियंत्रण हेतु नीति निर्धारण के लिये अपरदन को प्रभावित करने वाले कारकों का ज्ञान होना अति आवश्यक है। अपरदन को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित कारक हैं–

- जलवायु
- स्थलाकृति
- मृदा
- वनस्पति
- जैविक गतिविधियां

## मृदा संरक्षण के उपाय

हमारे देश में भूमि कटाव की समस्या दिन प्रतिदिन गंभीर होती जा रही है। अतः जल ग्रहण व्यवस्था में भूमि संरक्षण प्रमुख कार्य होता है। इसकी उपयोगिता पर्वतीय जल संग्रह करने से और अधिक बढ़ जाती है। जल संग्रहण क्षेत्र सामान्यतया ढलानदर होते हैं। इससे ढाल का भूमि क्षरण पर प्रत्यक्ष प्रभाव होता है। ढाल अधिक होने से बहने वाले जल का वेग अधिक हो जाता है। गिरती हुई वस्तु के नियम के अनुसार वेग, खड़े ढाल के वर्गमूल के अनुसार बदलता है। यदि भूमि का ढाल चार गुणा बढ़ जाता है तो बहते हुए जल का वेग लगभग दो गुणा हो जाता है। बहते हुए जल का वेग दोगुना हो जाने पर जल क्षरण क्षमता चार गुणा अधिक हो जाती है। इस प्रकार जल परिवहन क्षमता 32 गुना बढ़ जाती है। यही कारण है कि ढलानदार स्थानों में भू–क्षरण अधिक होता है। मृदा एंव जल संरक्षण के लिये किये गए उपायों को मुख्यतया दो भागों में बांटा जा सकता है (क) जैविक उपाय (ख) अभियन्त्रिकी उपाय।

**(क) जैविक उपाय–** फसलों या वनस्पतियों से सस्य क्रियाओं द्वारा भू–क्षरण को नियंत्रित करने के लिये उपयोग में लाई गई विधियाँ जैविक उपायों के नाम से जाने जाते हैं।

भू–क्षरण को नियंत्रित करने के लिये निम्नलिखित जैविक उपायों का प्रयोग किया जाता हैः

1. समोच्च जुताई (कंटूर कल्टीवेशन)
2. पट्टीदार खेती (स्ट्रिप क्रापिंग)
3. भू–परिष्करण प्रक्रियाएं (टिलेज प्रेक्टिसेज)
4. वायु अवरोधक व आश्रय आवरण (विंड ब्रेक तथा शेल्टर बेल्ट)

**1. समोच्च जुताई–** इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के कृषि कार्य जैसे बुआई, जुताई, भू–परिष्करण, खरपतवार नियंत्रण इत्यादि समोच्च रेखा पर किये जाते हैं। अर्थात इन कार्यों की दिशा खेत के ढाल के समानांतर न होकर लम्बवत होती है जिससे भू–क्षरण में कमी आती है। इसके अंतर्गत क्यारियां बनाकर (रिज फरो सिस्टम) वर्षा जल प्रवाह को कम करके भू–क्षरण को रोका जाता है।

**2. पट्टीदार खेती–** यह पद्धति भूमि की उर्वरता बढ़ाने तथा अप्रवाह एवं भू–क्षरण रोकने हेतु प्रयोग में लाई जाती है। इसके अंतर्गत खेत में पट्टियों पर भू–क्षरण अवरोधक फसल लगाईं जाती है। इस क्रम में पट्टियों पर फसलें उगाकर भूमिक्षरण को कम किया जाता है।

**3. भू–परिष्करण प्रक्रियाएं–** सामान्यतः सख्त मृदा सतह के कारण मिट्टी में जल प्रवेश कम हो जाता है जिससे जल प्रवाह को प्रोत्साहन मिलता है। अतः हल द्वारा उचित प्रकार से की गई जुताई मिट्टी को ढीली एवं पोली करके जल प्रवेश को बढ़ाती है। मृदा की जल धारण क्षमता में भी वृद्धि होती है जिसके फलस्वरूप अप्रवाह कम होने से भूमिक्षरण भी कम होता है। वर्षा पूर्व जुताई करने पर नमी संरक्षण में लाभप्रद परिणाम मिलता है।

**4. वायु अवरोधक व आश्रय आवरण–** यह वानस्पतिक उपायों के अंतर्गत आते हैं तथा मुख्यतया वायु अपरदन को कम करने में सहायक होते हैं। ये वानस्पतिक उपाय मृदा सतह के पास वायु की गति को धीमा करके वायु अपरदन कम करते हैं। वानस्पतिक या यांत्रिक वायु अवरोधक वायु वेग से प्रभावित क्षेत्र को वायु अपरदन सुरक्षा प्रदान करते हैं जबकि वायु तथा पेड़ों से बना हुआ आश्रय आवरण, वायु अवरोधक की तुलना में लम्बा होने के साथ–साथ अधिक प्रभावशाली होता है।

**ख) अभियांत्रिकी उपाय–** मृदा सतह पर जल संरक्षण करने योग्य अभियान्त्रिकी संरचनाओं का निर्माण मृदा अपरदन को रोकने का एक भावी विकल्प है जो अतिरिक्त वर्षा जल निकास में भी सक्षम होता है। इसमें निम्नलिखित संरचनाएं सम्मिलित हैं:

1. समोच्च बंध (कंटूर बंड)
2. श्रेणीबद्ध बंध (ग्रेडेड बंड)
3. वृहत आधार वाली वेदिकाएं (ब्रोड बेस टेरेसेज)
4. सीढ़ीनुमा वेदिकाएं (बैंच टेरेसेज)

**1. समोच्च बंध–** शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों में जहाँ अधिक रिसाव एवं जल प्रवेश की सम्भावना होती है, वहाँ इस पद्धति का प्रयोग अत्यंत प्रभावी हो जाता है। इन क्षेत्रों में 6 प्रतिशत ढाल होने तक समोच्च बंध प्रणाली को अपनाया जा सकता है। समोच्च बंध खेत की ढाल के लम्बवत बनाया जाता है जो खेत में नमी संरक्षण करने में आशातीत भूमिका निभाता है।

**2. श्रेणीबद्ध बंध–** इस पद्धति का प्रयोग ऐसे क्षेत्रों जहाँ मिट्टी की जल रिसाव एवं जल प्रवेश क्षमता कम हो, वहाँ किया जाता है क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में अप्रवाह जल की अधिक मात्रा होने से उसका सुरक्षित निकास आवश्यक हो जाता है। ज्ञातव्य है कि इस विधि का प्रमुख उद्देश्य खेत में नमी संरक्षण के बजाए खेत से अतिरिक्त अप्रवाह जल का सुरक्षित निकास है।

**3. वृहत आधार वाली वेदिकाएं–** अपेक्षाकृत कम ढाल वाले खेतों में नमी वा संरक्षण के उद्देश्य से इन वृहत आधार वाली वेदिकाओं का निर्माण किया जाता है जो नमी संरक्षण के उद्देश्य के लिये बनाई जाती हैं। ये वर्षा जल के प्रवाह को कम करते हुए भू–क्षरण को कम करते रहते हैं। वृहत आकार वाली वेदिकाओं के ऊपर फसल उगाई जा सकती है जबकि बंधों के ऊपर फसल उगाना सम्भव नहीं होता।

**4. सीढ़ीनुमा वेदिकाएं–** पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक ढाल वाले खेतों में सामान्यतया सीढ़ीनुमा वेदिकाएं बनाकर फसलें उगाई जाती हैं। उन क्षेत्रों में जहाँ मृदा की पर्याप्त गहराई उपलब्ध हो वहाँ 6 प्रतिशत से 50 प्रतिशत ढाल वाली भूमि पर सीढ़ीनुमा वेदिकाएं बनाई जा सकती हैं। ये मुख्य रूप से तीन प्रकार की होती हैं:

**क) बाह्यमुखी सीढ़ीनुमा वेदिकाएं (आउटवर्ड वैंच टेरेसेज)–** ये वेदिकाएं मुख्यतया कम वर्षा वाले क्षेत्रों में जहाँ की मृदा अधिक पारगम्य हो वहाँ बनाई जाती हैं। फलस्वरुप मृदा वर्षा जल को पूर्णतया सोख लेती है जिससे अप्रवाहित जल की मात्रा कम हो जाती है। अतिरिक्त वर्षा जल के सुरक्षित निकास के लिये स्वस्थ बंधों का निर्माण भी किया जाता है।

**ख) समतल सीढ़ीनुमा वेदिकाएं (लेवल बैंच टेरेसेज)–** मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में जहाँ भूमि समतल तथा मृदा अधिक पारगम्य हो वहाँ इन वेदिकाओं का निर्माण किया जाता हैं। ऐसा करने से वर्षा जल वितरण सामान्य हो जाता है और अधिकांशतः वर्षा जल मृदा के अंदर प्रवेश कर जाता है जिससे वर्षा जल अप्रवाह में काफी कमी आ जाती है।

**ग) अन्तर्मुखी सीढ़ीनुमा वेदिकाएं (इनवर्ड बैंच टेरेसेज) :** मुख्यतया अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में इन वेदिकाओं की उपयोगिता अधिक होती है, जहाँ अधिकांशतः वर्षा जल का खेत से सुरक्षित निकास आवश्यक होता है। उनमें एक उपयुक्त निकास नाली का निर्माण किया जाता है, जिसे अंत में एक उपयुक्त निकासद्वार से जोड़ दिया जाता है। इन्हें पर्वतीय सीढ़ीनुमा वेदिकाओं के नाम से भी जाना जाता है।

मृदा एवं जल संरक्षण के उपयुक्त एवं प्रभावी उपायों जैसे जैविक तथा अभियांत्रिकी का संयुक्त प्रयोग अत्यधिक लाभदायक होता है। अतः इन दोनों का एक साथ प्रयोग करने की पुरजोर सिफारिश की जाती है।

❖❖❖

# मधुमक्खियों की बीमारी एवं रोकथाम

**शिवांगी तिवारी एवं आदित्य कुमार**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

मधुमक्खियों के सफल प्रबंधन के लिए उनमें लगने वाली बीमारियों और उनके शत्रुओं के बारे में पूर्ण जानकारी होनी आवश्यक है। जिससे उनसे होने वाली क्षति को बचाकर शहद उत्पादन और आय में आशातीत बढ़ोतरी की जा सकती है। मधुमक्खी एक सामाजिक प्राणी होने के कारण समूह में रहती हैं। जिससे इनमें बीमारी फैलाने वाले सूक्ष्म जीवों का संक्रमण बहुत तेजी से होता है। इनके विषय में उचित जानकारी न होने से अपूर्णीय क्षति हो सकती है।

**नाशीजीवः**

**यूरोपियन फाउलब्रूडः** यह एक जीवाणु मैलिसोकोकस प्लयुटान से होने वाला एक संक्रामक रोग है। इसका रंग गहरा होता है तथा इनसे प्रौढ़ मक्खी भी नही निकलती है। इस बीमारी की पहचान के लिए एक माचिस की तीली को लेकर मरे हुए डिम्भक के शरीर में चुभोकर बाहर की ओर खींचने पर एक धागेनुमा संरचना बनती है। जिसके आधार पर इस बीमारी की पहचान की जा सकती है ।

**रोकथाम–** प्रभावित समूहों को मधु वाटिका से अलग कर देना चाहिए। प्रभावित समूहों के फ्रेम और अन्य सामान का संपर्क किसी दूसरे स्वस्थ समूह से नही होने देना चाहिए। प्रभावित मौन समूह को रानी विहीन कर देना चाहिए तथा कुछ महीनों बाद रानी देनी चाहिए। संक्रमित छत्तों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। बल्कि उन्हें पिघलाकर मोम बना देना चाहिए संक्रमित समूहों को टेरामाईसिन की 240 मिलि.ग्रा. मात्रा प्रति 5 लिटर चीनी के घोल के साथ ओक्सीटेट्रासाईक्लिन 3.25 मि.ग्रा. प्रति गैलन के हिसाब से देना चाहिए।

**अमेरिकन फाउलब्रुडः** यह भी एक जीवाणु बैसिलस लारवी के द्वारा होने वाला एक संक्रामक रोग है। जो यूरोपियन फाउलवूड के समान होता है। यह बीमारी कोष्ठक बंद होने के पहले ही लगती है, जिससे कोष्ठक बंद ही नहीं होते। यदि बंद भी हो जाते हैं तो उनके ढक्कन में छिद्र देखे जा सकते हैं। इसके अंदर मरा हुआ डिम्भक भी देखा जा सकता है। जिससे सड़ी हुई मछली जैसी दुर्गन्ध आती है। इनका आक्रमण गर्मियों में या उसके बाद होता है।

**रोकथाम–** प्रभावित समूहों को मधु वाटिका से अलग कर देना चाहिए। प्रभावित समूहों के फ्रेम और अन्य सामान का संपर्क किसी दूसरे स्वस्थ समूह से नही होने देना चाहिए। प्रभावित मौन समूह को रानी विहीन कर देना चाहिए, तथा कुछ महीनों बाद रानी देनी चाहिए। संक्रमित छत्तों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। बल्कि उन्हें पिघलाकर मोम बना देना चाहिए। संक्रमित समूहों को टेरामाईसिन की 240 मि.ग्रा. मात्रा प्रति 5 लिटर चीनी के घोल के साथ ओक्सीटेट्रासाईक्लिन 3.25 मि.ग्रा. प्रति गैलन के हिसाब से देना चाहिए।

**नोसेमा रोगः** यह एक प्रोटोजोआ नोसेमा एपिस से होता है। इस बीमारी से मधुमक्खियो की पहचान व्यवस्था बिगड़ जाती है। रोगग्रसित मधुमक्खियाँ पराग की अपेक्षा केवल मकरंद ही एकत्र करना पसंद करती हैं। ग्रसित रानी नर सदस्य ही पैदा करती है तथा कुछ समय बाद मर भी सकती है। जब मधुमक्खियों में पेचिस, थकान, रेंगने तथा बाहर समूह बनाने जैसे लक्षण दिखे तो इस रोग का प्रकोप समझना चाहिए।

**रोकथाम–** फ्युमिजिलिन–बी का 0.5 से 3 मि.ग्रा. मात्रा प्रति 100 मि. ग्रा. घोल के साथ मिला कर देना चाहिए। वाईसाईक्लो हेक्साईल अमोनियम फ्युमिजिल भी प्रभावकारी औषधि है।

**सैकब्रूडः** यह रोग भारतीय मौन प्रजातियों में बहुतायत में पाया जाता है। यह एक विषाणु जनित रोग है जो संक्रमण से फैलता है। संक्रमित समूहों के कोष्ठकों में डिम्भक खुली अवस्था में ही मर जाते हैं या बंद कोष्ठको में दो छिद्र बने होते हैं। इससे ग्रसित डिम्भकों का रंग हल्का पीला होता है। अंत में इसमें थैलीनुमा आकृति बन जाती है।

**रोकथाम–** एक बार इस बीमारी का संक्रमण होने के बाद इसकी रोकथाम बहुत कठिन हो जाती है। इसका कोई कारगर उपाय नहीं है। संक्रमण होने पर प्रभावित समूहों को मधु वाटिका से हटा देना चाहिए तथा संक्रमित समूहो में प्रयुक्त औजारों का कोई भी भाग दूसरे समूहों तक नहीं ले जाने देना चाहिए। समूहों को कुछ समय रानी विहीन कर देना चाहिए। टेरामाईसिन की 250 मि. ग्रा. मात्रा प्रति 4 लिटर चीनी के घोल में मिलाकर खिलाया जाये तो रोग का नियंत्रण हो जाता है। गंभीर रूप से प्रभावित समूहों को नष्ट कर देना चाहिए।

**एकेराईनः** यह आठ पैरों वाला बहुत ही छोटा जीव है, जो कई तरह से मधुमक्खियों को नुकसान पहुंचाता है। इस रोग में श्रमिक मधुमक्खियाँ मौन गृह के बाहर एकत्रित होती हैं। इनके पंख कमजोर हो जाते हैं, जिससे ये उड़ नही पाती हैं या उड़ते उड़ते गिर जाती हैं। इसका प्रकोप होने पर संक्रमित समूहों को अलग कर गंधक का धुंआ देना चाहिए। गंधक की 200 मि.ग्रा. मात्रा प्रति फ्रेम के हिसाब से बुरकाव करना चाहिए। डिमाईट या क्लोरोबेन्जिलेट जो क्रमशः पीके और फल्बेकस के नाम से बाजार में आते हैं, को धुंए के रूप में देना चाहिए।

यह अष्टपादी जीव कछुए के आकार का होता है। जो मधुमक्खी के बाह्य परजीवी के रूप में नुकसान पहुचाता है। प्रौढ़ मादा अष्टपादी 5 दिन पुराने मौन लारवा वाले खण्ड में 2 से 4 अंडे देती है, जिनमें एक या दो दिन बाद कोष्ठक बंद हो जाते हैं। इसके ठीक बाद माईट के अन्डों से निम्फ निकलते हैं और मधुमक्खी के लारवा पर भोजन लेकर उसे कमजोर बना देते हैं या अपंग बनाकर उसे मार देते हैं। इस अष्टपादी का ज्यादा प्रकोप होने पर नए श्रमिक बनने बंद हो जाते हैं। जिससे मौन समूह कमजोर हो जाते हैं, तथा कुछ समय बाद पूरा समूह समाप्त हो जाता है।

**रोकथाम–** प्रायः ऐसा देखने में आता है कि मौनपालक जाने अनजाने

मौनों को बचाने के लिए जहरीले रसायनों का प्रयोग करते हैं, जिससे काफी मात्रा में मौन मर जाती हैं। परिणामस्वरुप मौन पालकों को लाभ के बजाय नुकसान उठाना पड़ता है। इनके प्रबंध के लिए ऐसे मौन गृह से फ्रेम की संख्या कम कर देनी चाहिए। साथ ही मौन गृह में मधुमक्खियों की संख्या बढ़ाने के उपाय करने चाहिए। नर कोष्ठक वाले फ्रेम को बाहर निकाल देना चाहिए तथा उसमें उपस्थित सभी नर शिशुओं को मार देना चाहिए तथा दोबारा इस फ्रेम को मौन परिवार में नहीं देना चाहिए। सल्फर का 5 ग्राम पाउडर प्रति समूह के हिसाब से एक सप्ताह के अंतर पर भुरकाव करना चाहिए। फार्मिक एसिड की एक मि.लि. मात्रा एक छोटी प्लास्टिक की शीशी में डाल कर उसके ढक्कन में एक बारीक सुराख बनाकर प्रत्येक मौन गृह में रख देना चाहिए। साथ ही मौन गृह में भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित करनी चाहिए।

**ट्रोपीलेइलेप्स क्लेरी**: यह माईट जंगली मधुमक्खी या सारंग मौन का मुख्य रूप से परजीवी है। इसका प्रकोप इटैलियन प्रजाति में भी होता है। प्रभावित समूह में प्युपा की अवस्था में बंद कोष्ठक में छिद्र देखे जा सकते हैं। कुछ प्यूपा मर जाते हैं जिनको साफ कर दिया जाता है। जिससे कोष्ठक खाली हो जाते हैं। जो डिम्भक बच जाते हैं उनका विकास विकृत हो जाता है, जैसे पंख, पैर या उदर का अपूर्ण विकास होना इसका लक्षण माना जाता है।

**रोकथाम–** एकेराईन बीमारी की तरह ही इसकी रोकथाम की जाती है।

**वरोआ माईट**: सर्वप्रथम यह माईट भारतीय मौन में ही प्रकाश में आई थी, लेकिन अब यह मेलिफेरा में भी देखी जाती है। इसका आकार 1.2 से 1.6 मि.मी. है। यह बाह्यपरजीवी है जो वक्ष और उदर के बीच से मौन का रक्त चूसती है। मादा माईट कोष्ठक बंद होने से पहले ही इसमें घुसकर 2 से 5 अंडे देती है जिससे 24 घंटे में शिशु लारवा निकलता है तथा 48 घंटे में यह प्रोटोनिम्फ में बदल जाता है ।

**नियंत्रण–** फार्मिक एसिड की 5 मि.लि. प्रतिदिन तलपट में लगाने से इसका नियंत्रण हो जाता है। अन्य उपाय इकेरमाईट के तरह ही करने चाहिए।

**मोमी पतंगा**: यह पतंगा मधुमक्खी समूह का बहुत बड़ा शत्रु है। यह छत्तों की मोम को अनियमित आकार का सुरंग बनाकर खाता रहता है, जिससे अंदर ही अंदर छत्ता खोखला हो जाता है तथा मधुमक्खियाँ छत्ता छोड़कर भाग जाती हैं। इनके द्वारा सुरंगों के उपर टेढ़ी मेढ़ी मकड़ी के जाल जैसे संरचना देखी जा सकती है। इनके प्रकोप की आशंका होने पर छत्तों को 5 मिनट के लिए तेज धूप में रख देना चाहिए। जिससे इनमें उपस्थित मोमी पतंगा की सूड़ियां बाहर आकर धूप में मर जाती हैं। इस प्रकार इसके प्रकोप का आसानी से पता चल जाता है तथा साथ ही सूड़ियां नष्ट हो जाती हैं।

**रोकथाम–** इसका प्रकोप वर्षा के दिनों में जब मधुमक्खियों की संख्या कम हो जाती है तब होता हैं। जब मौन गृहों में आवश्कता से अधिक फ्रेम होते हैं तो इसके प्रकोप की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए अतिरिक्त फ्रेम को मौन गृहों से बाहर उचित स्थान पर भंडारित करना चाहिए। वर्षा में प्रवेश द्वार संकरा कर देना चाहिए। मौन गृह में प्रवेश द्वार के अलावा अन्य दरारों को बंद कर देना चाहिए। कमजोर समूहों को शक्तिशाली समूहों के साथ मिला देना चाहिए।

**शहद पतंगा**: यह बड़े आकार का पतंगा होता है। जिसका वैज्ञानिक नाम एकेरोंशिया स्टीवस है। यह मौन गृहों में घुस कर शहद खाता है। अधिकतर मधुमक्खियां इस पतंगे को मार देती हैं। इस कीट से ज्यादा नुकसान नहीं होता है।

**चींटियाँ**: इनका प्रकोप गर्मी और वर्षा ऋतु में अधिक होता है जब समूह कमजोर हों तो इनसे नुकसान बढ़ जाता है। इनसे बचाव के लिए स्टैंड के कटोरियों में पानी भरकर उसमे कुछ बूंद किरोसिन ऑयल भी डाल देनी चाहिए। जिससे चींटियो को मौन गृहों पर चढ़ने से बचाया जा सके।

❖❖❖

# मधुमक्खी पालन और उससे जुड़ी आवश्यक जानकारी

**शिवांगी तिवारी एवं आदित्य कुमार**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

कृषि क्रियाएं लघु व्यवसाय से बड़े व्यवसाय में बदलती जा रही हैं। कृषि और बगवानी उत्पादन बढ़ रहा है। जबकि कुल कृषि योग्य भूमि घट रही है। कृषि के विकास के लिए फसल, सब्जियां और फलों के भरपूर उत्पादन के अतिरिक्त दूसरे व्यवसायों से अच्छी आय भी जरुरी है। मधुमक्खी पालन एक ऐसा ही व्यवसाय है जो मानवजाति को लाभान्वित कर रहा है। यह एक कम खर्चीला घरेलु उद्योग है जिसमें आय, रोजगार व वातावरण शुद्ध रखने की क्षमता है। यह एक ऐसा रोजगार है जिसे समाज के हर वर्ग के लोग अपना कर लाभान्वित हो सकते हैं। मधुमक्खी पालन कृषि व बागवानी उत्पादन बढ़ाने की क्षमता भी रखता है।

मधुमक्खियां मौन समुदाय में रहने वाली कीट वर्ग की जंगली जीव हैं। इन्हें उनकी आदतों के अनुकूल कृत्रिम गृह (हाईव) में पाल कर उनकी वृद्धि करने तथा शहद एवं मोम आदि प्राप्त करने को मधुमक्खी पालन या मौन पालन कहते हैं।

शहद एवं मोम के अतिरिक्त अन्य पदार्थ, जैसे गोंद (प्रोपोलिस, रायल जेली, डंक–विष) भी प्राप्त होते हैं। साथ ही मधुमक्खियों से फूलों में परपरागण होने के कारण फसलों की उपज में लगभग एक चौथाई अतिरिक्त बढ़ोतरी हो जाती है।

आजकल मधुमक्खी पालन ने कम लागत वाले कुटीर उद्योग का दर्जा ले लिया है। ग्रामीण भूमिहीन बेरोजगार किसानों के लिए आमदनी का एक साधन बन गया है। मधुमक्खी पालन से जुड़े कार्य जैसे बढ़ईगिरी, लोहारगिरी एवं शहद विपणन में भी रोजगार का अवसर मिलता है।

**मधुमक्खी परिवार:** एक परिवार में एक रानी, कई हजार कमेरी/श्रमिक तथा 100–200 नर होते हैं।

**रानी–** यह पूर्ण विकसित मादा होती है एवं परिवार की जननी होती है। रानी मधुमक्खी का कार्य अंडे देना हैं अच्छे पोषण वातावरण में एक इटैलियन जाति की रानी एक दिन में 1500–1800 अंडे देती है। जबकि देशी मक्खी करीब 700–1000 अंडे देती है। इसकी उम्र औसतन 2–3 वर्ष होती है।

**कमेरी/श्रमिक–** यह अपूर्ण मादा होती हैं और मौनगृह के सभी कार्य जैसे अण्डों, बच्चों का पालन पोषण करना, फलों तथा पानी के स्त्रोतों का पता लगाना, पराग एवं रस एकत्र करना, परिवार तथा छत्तों की देखभाल, शत्रुओं से रक्षा करना इत्यादि। इसकी उम्र लगभग 2–3 महीने होती है।

**नर मधुमक्खी/निखट्टू–** यह रानी से छोटी एवं कमेरी से बड़ी होती है। रानी मधुमक्खी के साथ सम्भोग के सिवा यह कोई कार्य नही करती। सम्भोग के तुरंत बाद इनकी मृत्यु हो जाती है और इनकी औसत आयु करीब 60 दिन की होती है।

**मधुमक्खियों की किस्में:** भारत में मुख्य रूप से मधुमक्खी की चार प्रजातियाँ पाई जाती हैं:

छोटी मधुमक्खी (एपिस फ्लोरिया), भैंरो या पहाड़ी मधुमक्खी (एपिस डोरसाटा), देशी मधुमक्खी (एपिस सिराना इंडिका) तथा इटैलियन या यूरोपियन मधुमक्खी (एपिस मेलिफेरा)।

इनमें से एपिस सिराना इंडिका व एपिस मेलिफेरा जाति की मधुमक्खियों को आसानी से लकड़ी के बक्सों में पाला जा सकता है। देशी मधुमक्खी प्रतिवर्ष औसतन 5–10 किलोग्राम शहद प्रति परिवार तथा इटैलियन मधुमक्खी 50 किलोग्राम तक शहद उत्पादन करती हैं।

**मधुमक्खी पालन के लिए आवश्यक सामग्री:** मौन पेटिका, मधु निष्कासन यंत्र, स्टैंड, छीलन छुरी, छत्ताधार, रानी रोक पट, हाईव टूल (खुरपी), रानी रोक द्वार, नकाब, रानी कोष्ठ रक्षण यंत्र, दस्ताने, भोजन पात्र, धुआंकर और ब्रुश आदि।

**मधुमक्खी परिवार का उचित रखरखाव एवं प्रबंधन:** मधुमक्खी परिवारों की सामान्य गतिविधियाँ 33 और 36 डिग्री सें. के बीच में होता है। उचित प्रबंध द्वारा प्रतिकूल परिस्तिथियों में इनका बचाव आवश्यक है। उत्तम रखरखाव से परिवार शक्तिशाली एवं क्रियाशील बनाये रखे जा सकते हैं। मधुमक्खी परिवार को विभिन्न प्रकार के रोगों एवं शत्रुओं का प्रकोप समय समय पर होता रहता है। जिनका निदान उचित प्रबंधन द्वारा किया जा सकता है। इन स्थितियों को ध्यान में रखते हुए निम्न प्रकार वार्षिक प्रबंधन करना चाहिए।

**शरदऋतु में मधुवाटिका का प्रबंधन–** शरद ऋतु में विशेष रूप से अधिक ठंढ पड़ती है जिससे तापमान कभी कभी 10 या 20 डिग्री से. से नीचे तक चला जाता है। ऐसे में मौन वंशों को सर्दी से बचाना जरुरी हो जाता है। सर्दी से बचने के लिए मौनपालकों को टाट की बोरी की दो तह बनाकर आंतरिक ढक्कन के नीचे बिछा देना चाहिए। यह कार्य अक्टूबर में करना चाहिए। इससे मौन गृह का तापमान एक समान गर्म बना रहता है। यदि संभव हो तो पोलीथिन से प्रवेश द्वार को छोड़कर पूरे बक्से को ढंक देना चाहिए या घास फूस या पुवाल का छप्पर बना कर बक्सों को ढक देना चाहिए।

इस समय मौन गृहों को ऐसे स्थान पर रखना चाहिए, जहाँ जमीन सूखी हो तथा दिन भर धूप रहती हो। परिणामस्वरूप

मधुमक्खियाँ अधिक समय तक कार्य करेंगी। अक्टूबर में यह देख लेना चाहिए कि रानी अच्छी हो तथा एक साल से अधिक पुरानी तो नहीं है। यदि ऐसा है तो उस वंश को नई रानी दे देनी चाहिए। जिससे शरद ऋतु में श्रमिकों की आवश्यकता बनी रहे, जिससे मौन समूह कमजोर न हो। ऐसे क्षेत्र जहाँ शीतलहर चलती हो तो इसके प्रारम्भ होने से पूर्व ही यह निश्चित कर लेना चाहिए कि मौन गृह में आवश्यक मात्रा में शहद और पराग है या नहीं।

यदि शहद कम है या नहीं है तो मौन वंशों को 50:50 के अनुपात में चीनी और पानी का घोल बनाकर उबालकर ठंडा होने के पश्चात मौन गृहों के अंदर रख देना चाहिए। जिससे मौनों को भोजन की कमी न हो। यदि मौन गृह पुराने हो गये हों या टूट गये हों तो उनकी मरम्मत अक्टूबर नवम्बर तक अवश्य करा लेनी चाहिए। जिससे इनको सर्दियों से बचाया जा सके। इस समय मौन वंशों को फूल वाले स्थान पर रखना चाहिए। जिससे कम समय में अधिक से अधिक मकरंद और पराग एकत्र किया जा सके। ज्यादा ठंढ होने पर मौन गृहों को नही खोलना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर ठण्ड लगने से शिशु मक्खियों के मरने का डर रहता है। साथ ही श्रमिक मधुमक्खियाँ डंक मरने लगती हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक ऊंचाई वाले स्थानों पर गेंहूँ के भूसे या धान के पुवाल से अच्छी तरह मौन गृह को ढंक देना चाहिए।

**बसंत ऋतु में मौन प्रबंधन–** बसंत ऋतु मधुमक्खियों और मौन पालकों के लिए सबसे अच्छी मानी जाती है। इस समय सभी स्थानों में पर्याप्त मात्रा में पराग और मकरंद उपलब्ध रहते हैं। जिससे मौनों की संख्या दुगनी हो जाती है। परिणामस्वरूप शहद का उत्पादन भी बढ़ जाता है। इस समय देख रेख की आवश्यकता उतनी ही पड़ती है जितनी अन्य मौसमों में होती है। शरद ऋतु समाप्त होने पर धीरे धीरे मौन गृह की पैकिंग (टाट, पट्टी और पुरल के छप्पर इत्यादि) हटा देना चाहिए। मौन गृहों को खाली कर उनकी अच्छी तरह से सफाई कर लेनी चाहिए। पेंदी पर लगे मोम को भलीभांति खुरच कर हटा देना चाहिए। मौन गृहों पर बाहर से सफेद पेंट लगा देना चाहिए, जिससे बाहर से आने वाली गर्मी में मौन गृहों का तापमान कम रह सके।

बसंत ऋतु के प्रारम्भ में मौन वंशो को कृत्रिम भोजन देने से उनकी संख्या और क्षमता बढ़ती है। जिससे अधिक से अधिक उत्पादन लिया जा सके। रानी यदि पुरानी हो गयी हो तो उसे मारकर अंडे वाला फ्रेम दे देना चाहिए। जिससे दूसरे वाला सृजन शुरू कर दें। यदि मौन गृह में मौन की संख्या बढ़ गयी हो तो मोम लगा हुआ अतिरिक्त फ्रेम देना चाहिए। जिससे कि मधुमक्खियाँ छत्ते बना सकें। यदि छत्तों में शहद भर गया हो तो मधु निष्कासन यंत्र से शहद को निकाल लेना चाहिए। जिससे मधुमक्खियां अधिक क्षमता के साथ कार्य कर सकें। यदि नरों की संख्या बढ़ गयी हो तो नर प्रपंच लगा कर इनकी संख्या को नियंत्रित कर देना चाहिए।

**ग्रीष्म ऋतु में मौन प्रबंधन–** ग्रीष्म ऋतु में मौनों की देख–भाल ज्यादा जरुरी होती है। जिन क्षेत्रों में तापमान 40 डिग्री सें. से उपर तक पहुंचता है वहां पर मौन गृहों को किसी छायादार स्थान पर रखना चाहिए। लेकिन सुबह की सूर्य की रौशनी मौन गृहों पर पड़नी आवश्यक है, जिससे मधुमक्खियाँ सुबह से ही सक्रिय होकर अपना कार्य करना प्रारम्भ कर सकें। इस समय कुछ स्थानों जहाँ पर बरसीम, सूर्यमुखी इत्यादि की खेती होती है, वहां पर मधुस्त्राव का समय भी हो सकता है। जिससे शहद उत्पादन किया जा सकता है। इस समय मधुमक्खियों को साफ और बहते हुए पानी की आवश्यकता होती है। इसलिए पानी की उचित व्यवस्था मधुवाटिका के आसपास होनी चाहिए। मौनों को लू से बचाने के लिए छप्पर का प्रयोग करना चाहिए, जिससे गर्म हवा सीधे मौन गृहों के अंदर न घुस सके। अतिरिक्त फ्रेम को बाहर निकाल कर उचित भण्डारण करना चाहिए।

❖❖❖

# मक्के की खेती

**पूनम कुशवाहा एवं बिनीता देवी**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

**परिचयः**

मक्का, एक प्रमुख खाद्य फसल है, जो मोटे अनाजों की श्रेणी में आता है। मक्के की रोटी, भात, हलवा, दारा, दलिया, भुट्टा लावा बड़े चाव से खाया जाता है। आजकल तो मक्का से तेल भी निकाला जाता है जिसे कॉर्न ऑयल कहते हैं।

भारत के अधिकांश मैदानी भागों से लेकर 2700 मीटर उँचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों तक मक्का सफलतापूर्वक उगाया जाता है। इसे सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है तथा बलुई व दोमट मिट्टी मक्का की खेती के लिये बेहतर समझी जाती है।

मक्का खरीफ ऋतु की फसल है। परन्तु जहां सिंचाई के साधन हैं वहां रबी और खरीफ की अगेती फसल के रूप में ली जा सकती है। मक्का कार्बोहाइड्रेट का बहुत अच्छा स्रोत है। यह एक बहुपयोगी फसल है व मनुष्य के साथ–साथ पशुओं के आहार का प्रमुख अवयव भी है तथा औद्योगिक दृष्टिकोण से इसका महत्वपूर्ण स्थान भी है।

**उपयोगिताः**

चपाती के रूप में, भुट्टे सेंककर, मधु मक्का को उबालकर कॉर्नफ्लेक्स, पॉपकार्न, लइया के रूप मे आदि के साथ–साथ अब मक्का का उपयोग कॉर्न ऑयल, बायोफ्यूल के लिए भी होने लगा है। लगभग 65 प्रतिशत मक्का का उपयोग मुर्गी एवं पशु आहार के रूप में किया जाता है। साथ ही साथ इससे पौष्टिक रुचिकर चारा प्राप्त होता है। भुट्टे काटने के बाद बची हुई कंडवी पशुओं को चारे के रूप में खिलाते हैं। औद्योगिक दृष्टि से मक्का में प्रोटिनेक्स, चॉक्लेट, पेन्ट्स, स्याही, लोशन, स्टार्च, कोका–कोला के लिए कॉर्न सिरप आदि बनने लगा है। बेबीकार्न मक्का से प्राप्त होने वाले बिना परागित भुट्टों को ही कहा जाता है। बेबीकार्न का पौष्टिक मूल्य अन्य सब्जियों से अधिक है।

**जलवायु एवं भूमिः**

मक्का उष्ण एवं आर्द जलवायु की फसल है। इसके लिए ऐसी भूमि जहां पानी का निकास अच्छा हो उपयुक्त होती है।

**खेत की तैयारीः**

खेत की तैयारी के लिए पहला पानी गिरने के बाद जून माह मे हेरो करने के बाद पाटा चला देना चाहिए। यदि गोबर की खाद का प्रयोग करना हो तो पूर्ण रूप से सड़ी हुई खाद अन्तिम जुताई के समय जमीन मे मिला दें। रबी के मौसम में कल्टीवेटर से दो बार जुताई करने के उपरांत दो बार हैरो करना चाहिए।

**बुवाई का समयः**

1. खरीफ :– जून से जुलाई तक।
2. रबी :– अक्टूबर से नवम्बर तक।
3. जायद :– फरवरी से मार्च तक।

**किस्मः**

| संकर किस्म | अवधि (दिन में) | उत्पादन (क्वि./हे.) |
|---|---|---|
| गंगा–5 | 100–105 | 50–80 |
| डेक्कन–101 | 105–115 | 60–65 |
| गंगा सफेद–2 | 105–110 | 50–55 |
| गंगा–11 | 100–105 | 60–70 |
| डेक्कन–103 | 110–115 | 60–65 |

**कम्पोजिट जातियांः**

सामान्य अवधि वाली– चंदन मक्का–1
जल्दी पकने वाली– चंदन मक्का–3
अत्यंत जल्दी पकने वाली– चंदन सफेद मक्का–2

**बीज की मात्राः**

संकर जातियां :– 12 से 15 किलो/हे.
कम्पोजिट जातियां :– 15 से 20 किलो/हे.
हरे चारे के लिए :– 40 से 45 किलो/हे.
(छोटे या बड़े दानों के अनुसार भी बीज की मात्रा कम या अधिक होती है।)

**बीजोपचारः**

बीज को बोने से पूर्व किसी फंफूदनाशक दवा जैसे थायरम या एग्रोसेन जी.एन. 2.5–3.0 ग्रा./कि. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए। एजोस्पाइरिलम या पी.एस.बी.कल्चर (5–10 ग्राम प्रति किलो) से बीज का उपचार करें।

**पौध अंतरणः**

1. शीघ्र पकने वाली– कतार से कतार–60 से.मी. तथा पौधे से पौधे–20 से.मी.
2. मध्यम/देरी से पकने वाली– कतार से कतार–75 से.मी. तथा पौधे से पौधे–25 से.मी.
3. हरे चारे के लिए– कतार से कतार–40 से.मी. तथा पौधे से पौधे–25 से.मी.

**बुवाई का तरीकाः**

वर्षा प्रारंभ होने पर मक्का बोना चाहिए। सिंचाई का साधन हो तो 10 से 15 दिन पूर्व ही बोनी करनी चाहिए। इससे पैदावार मे वृध्दि होती है। बीज की बुवाई मेंड़ के किनारे व उपर 3–5 से.मी. की गहराई पर करनी चाहिए। बुवाई के एक माह पश्चात मिट्टी चढ़ाने का कार्य करना चाहिए। बुवाई किसी भी विधि से की जाय परन्तु खेत मे पौधों

की संख्या 55–80 हजार/हेक्टेयर रखनी चाहिए।

**खाद एवं उर्वरक की मात्रा:**

शीघ्र पकने वाली– 80 : 50 : 30 (N:P:K)
मध्यम पकने वाली– 120 : 60 : 40 (N:P:K)
देरी से पकने वाली– 120 : 75 : 50 (N:P:K)

भूमि की तैयारी करते समय 5 से 8 टन अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद खेत मे मिलानी चाहिए तथा भूमि परीक्षण उपरांत जहां जस्ते की कमी हो वहां 25 कि.ग्रा./हे जिंक सल्फेट वर्षा से पूर्व डालना चाहिए।

**खाद एवं उर्वरक देने की विधि:**

**1. नत्रजन–**

1/3 मात्रा बुवाई के समय (आधार खाद के रूप मे)
1/3 मात्रा लगभग एक माह बाद (साइड ड्रेसिंग के रूप में)
1/3 मात्रा नरपुष्प (मंझरी) आने से पहले

**2. फास्फोरस व पोटाश –**

इनकी पूरी मात्रा बुवाई के समय बीज से 5 से.मी. नीचे डालनी चाहिए। चूंकि मिट्टी में इनकी गतिशीलता कम होती है, अतः इनका निवेशन ऐसी जगह पर करना आवश्यक होता है जहां पौधों की जड़ें हों।

**निराई–गुड़ाई:**

बोने के 15–20 दिन बाद डोरा चलाकर निंराई–गुड़ाई करनी चाहिए या रासायनिक निंदानाशक में एट्राजीन नामक निंदानाशक का प्रयोग करना चाहिए। एट्राजीन के उपयोग हेतु अंकुरण पूर्व 600–800 ग्रा./एकड़ की दर से छिड़काव करें। इसके उपरांत लगभग 25–30 दिन बाद मिट्टी चढावें।

**अन्तरवर्ती फसलें:**

मक्का के मुख्य फसल के बीच निम्नानुसार अन्तरवर्ती फसलें लीं जा सकती है :–

मक्का : उड़द, बरबटी, ग्वार, मूंग (दलहन)
मक्का : सोयाबीन, तिल (तिलहन)
मक्का : सेम, भिण्डी, हरा धनिया (सब्जी)
मक्का : बरबटी, ग्वार (चारा)

**सिंचाई:**

मक्का की फसल को पूरे फसल अवधि मे लगभग 400–600 एम.एम. पानी की आवश्यकता होती है तथा इसकी सिंचाई की महत्वपूर्ण अवस्था पुष्पन और दाने भरने का समय है। इसके अलावा खेत में पानी की निकासी भी अतिआवश्यक है।

**उपज:**

1. शीघ्र पकने वाली– 50–60 क्विंटल/हेक्टेयर
2. मध्यम पकने वाली– 60–65 क्विंटल/हेक्टेयर
3. देरी से पकने वाली– 65–70 क्विंटल/हेक्टेयर

**फसल की कटाई व गहाई:**

फसल अवधि पूर्ण होने के पश्चात अर्थात् चारे वाली फसल बोने के 60–65 दिन बाद, दाने वाली देशी किस्म बोने के 75–85 दिन बाद, व संकर एवं संकुल किस्म बोने के 90–115 दिन बाद तथा दाने मे लगभग 25 प्रतिशत् तक नमी हाने पर कटाई करनी चाहिए।

कटाई के बाद मक्का फसल में सबसे महत्वपूर्ण कार्य गहाई है। इसमें दाने निकालने के लिये सेलर का उपयोग किया जाता है। सेलर नहीं होने की अवस्था में साधारण थ्रेशर में सुधार कर मक्का की गहाई की जा सकती है तथा इसमें मक्के के भुट्टे के छिलके निकालने की आवश्यकता नहीं है। सीधे भुट्टे सूखे होने पर थ्रेशर में डालकर गहाई की जा सकती है साथ ही दाने का कटाव भी नहीं होता।

**भण्डारण:**

कटाई व गहाई के पश्चात प्राप्त दानों को धूप में अच्छी तरह सुखाकर भण्डारित करना चाहिए। यदि दानों का उपयोग बीज के लिये करना हो तो इन्हें इतना सुखा लें कि आर्द्रता करीब 12 प्रतिशत रहे। खाने के लिये दानों को बॉस से बने बण्डों में या टीन से बने ड्रमों में रखना चाहिए तथा 3 ग्राम वाली एक क्विकफास की गोली प्रति क्विंटल दानों के हिसाब से ड्रम या बण्डों में रखें। रखते समय क्विकफास की गोली को किसी पतले कपडे में बाँधकर दानों के अन्दर डालें या एक ई.डी.बी. इंजेक्शन प्रति क्विंटल दानों के हिसाब से डालें। इंजेक्शन को चिमटी की सहायता से ड्रम में या बण्डों में आधी गहराई तक ले जाकर छोड़ दें और ढक्कन बन्द कर दें।

❖ ❖ ❖

# जैविक खेती

**शीलेन्द्र कुमार उपाध्याय**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

हम रसायनिक खादों, जहरीले कीटनाशकों के उपयोग के स्थान पर, जैविक खादों एवं दवाईयों का उपयोग कर, अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं जिससे भूमि, जल एवं वातावरण शुद्ध रहेगा और मनुष्य एवं प्रत्येक जीवधारी स्वस्थ रहेंगे। भारत वर्ष में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है और कृषकों की मुख्य आय का साधन खेती है। हरित क्रांति के समय से बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए एवं आय की दृष्टि से उत्पादन बढ़ाना आवश्यक है। अधिक उत्पादन के लिये खेती में अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशक का उपयोग करना पड़ता है जिससे सामान्य व छोटे कृषक के पास कम जोत में अत्यधिक लागत लग रही है और जल, भूमि, वायु और वातावरण भी प्रदूषित हो रहा है साथ ही खाद्य पदार्थ भी जहरीले हो रहे हैं। इसलिए इस प्रकार की उपरोक्त सभी समस्याओं से निपटने के लिये गत वर्षो से निरन्तर टिकाऊ खेती के सिद्धान्त पर खेती करने की सिफारिश की गई है। जिसे प्रदेश के कृषि विभाग ने इस विशेष प्रकार की खेती को अपनाने के लिए, बढ़ावा दिया जिसे हम ''जैविक खेती'' के नाम से जानते हैं।

## जैविक खेती से लाभ:

**कृषकों की दृष्टि से लाभ–**

भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि हो जाती है। सिंचाई अंतराल में वृद्धि होती है। रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से लागत में कमी आती है। फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है।

**मिट्टी की दृष्टि से–**

जैविक खाद के उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है। भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती है। भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होगा।

**पर्यावरण की दृष्टि से–**

भूमि के जल स्तर में वृद्धि होती है। मिट्टी, खाद्य पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है। कचरे का उपयोग, खाद बनाने में, होने से, बीमारियों में कमी आती है। फसल उत्पादन की लागत में कमी एवं आय में वृद्धि अंतरराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद की गुणवत्ता का खरा उतरना भी है।

❖❖❖

# अनाज व बीज का सुरक्षित भंडारण

**अजीत सराठे[1] एवं डूमर सिंह[2]**
[1]कृषि इंजीनियरिंग विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)
[2]कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)

भंडारण के दौरान बीज व अनाज की क्षति में कीट अहम भूमिका निभाते हैं। भंडार गृह में कीटों की लगभग 50 प्रजातियाँ हैं जिनमें से करीब आधा दर्जन प्रजातियाँ ही आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। भंडार कीटों में कुछ कीट आंतरिक (प्राथमिक) तो कुछ बाह्य (गौड़) भक्षी होते हैं।

ऐसे कीट जो स्वयं बीज को सर्वप्रथम क्षति पहुँचाने में सक्षम होते हैं वे प्राथमिक कीट कहे जाते हैं। इनमें सूड वाली सुरसुरी, अनाज का छोटा छिद्रक प्रजातियाँ प्रमुख हैं। गौड़ कीट वे हैं जो बाहर रहकर भ्रूण या अन्य भाग को क्षति पहुंचाते हैं। इनमें आटे का कीट, खपरा बीटल, चावल का पतंगा आदि प्रमुख हैं। अलग–अलग प्रकार के अनाजों को नुकसान पहुँचाने वाले कीट भिन्न हो सकते हैं परन्तु सामान्यतया उनको नियंत्रित करने के उपाय एक जैसे ही होते हैं।

## बीज व अनाजों को क्षति पहुँचाने वाले प्रमुख कीटः

1. छोटा छिद्रक या घुन– राइजोपरथा डोमिनिका
2. सूंडवाली सुरसुरी– साइटोफिलिस ओराइजी
3. खपरा बीटल– ट्रोगोडरमा ग्रेनेरियम
4. आटे का कीट– ट्राइबोलियम कैस्टेनियम
5. दाल का ढोरा– कैलोसोब्रुकस चाइनेन्सिस
6. अनाज का पतंगा– साइटोट्रोगा सीरियलेला
7. चावल का पतंगा– कोरकायरा सिफेलोनिका

## भण्डार कीटों की पहचानः

भण्डार कीट मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं, एक भृंग या बीटल समूह के, दूसरे पतंगा या फिड़का समूह के। इन दोनों प्रकार के कीटों को पहचानने के लक्षण निम्नवत् हैं।

### 1) छोटा छिद्रक या घुन–

**पहचान–**

1. शरीर की लम्बाई 2.5 से 3 मि.मी. एवं रंग भूरा–लाल होता है।
2. सिर के उपर का आवरण बड़ा होता है जो मुखांग को उपर से पूरी तरह ढंक कर रखता है। सिर नीचे की ओर झुका होता है।
3. एंटीना के आखिरी तीन खण्ड नुकीले, बड़े एवं कुन्दरूप होते हैं।
4. कीट का अगला व पिछला भाग नुकीला नहीं होता एवं वक्ष व उदर भाग के बीच संकुचन होता है। शरीर के आवरण पर गड्ढे होते हैं।
5. लार्वा पीले–सफेद रंग का होता है जिसका सिर भूरा एवं पेट का हिस्सा झुका होता है। ये ज्यादातर बीज के अन्दर रहता है।

**क्षतिग्रस्त होने वाले बीज एवं उत्पाद–**

यह गेहूँ, जौ, मक्का, धान, अन्य खाद्यान्न, आटा एवं उनके उत्पादों को क्षति पहुंचाता है।

**क्षति का स्वरूप–**

- वयस्क एवं लार्वा (ग्रब) दोनों हानिकारक होते हैं। इस कीट के मुखांग शक्तिशाली होते हैं जो साबुत गेहूँ व जौ के बीजों को आसानी से क्षति पहुंचाने में सक्षम होते हैं।
- बीज भरे बोरों व थैलों पर आटे के धब्बों के मौजूद होने से प्रकोप का संकेत मिलता है।
- क्षति ग्रस्त ढेर का तापमान बढ़ जाता है।
- भंडार में क्षति केवल उपरी सतह तक सीमित नहीं होती है।

**जीवन चक्र–**

इस कीट का एक जीवन चक्र लगभग 25 दिनों में पूर्ण हो जाता है। वयस्क दीर्घकाल तक जीवित रहता है एवं उड़ने की क्षमता अधिक होती है।

### 2) सूंड वाली सुरसुरी–

**पहचान–**

1. शरीर की लम्बाई लगभग 3 से 3.5 मि.मी. होती है। अग्रभाग लम्बा थूथन (स्नाउट) जैसा होता है। रंग गाढ़ा भूरा–लाल होता है।
2. एंटीना झुके हुए एवं कुन्दनुमा होते हैं।
3. पृष्ठ भाग के आवरण पर चार हल्के पीले रंग के धब्बे होते हैं।
4. वक्ष भाग के आवरण पर गोलनुमा गड्ढे होते हैं।
5. लार्वा टांग रहित, मांसल, सफेद रंग का एवं सिर पीला–भूरा होता है।

**क्षतिग्रस्त होने वाले बीज–**

यह कीट गेंहूँ, जौ, ज्वार, चावल, मक्का इत्यादि के बीज व अनाज को क्षति पहुँचाता है।

**क्षति का स्वरूप–**

वयस्क एवं लार्वा दोनों हानिकारक होते हैं। मादा कीट बीज में एक छिद्र कर उसमें एक अंडा देकर उपर से चिपचिपे पदार्थ द्वारा ढक देती है। लार्वा बीज को खाकर पूरा खोखला कर देता है। जब विकसित होकर वयस्क बाहर निकलता है तब बीज में छोटा, गोलाकार छिद्र छोड़ देता है। इसके अधिक प्रकोप से बीज के ढेर का तापमान बढ़ जाता है।

### 3) खपरा बीटल–

**पहचान–**

1. वयस्क 1.5 से 3 मि.मी. के होते हैं। नर, मादा से काफी छोटा होते है।

2. शरीर के आवरण का रंग लाल–भूरा होता है एवं उस पर कुछ हल्के पीले रंग की टेढ़ी धारियां (विशेषतः मादा में) होती हैं।
3. वक्ष व उदर भाग स्पष्ट तौर पर बंटे नहीं होते हैं। सिर के मुखांग, आवरण के अंदर–बाहर होने में सक्षम होते हैं।
4. लार्वा या ग्रब हल्के पीले रंग का होता है जो खंडों के जोड़ पर पीला–भूरा होता है एवं जोड़ के दोनों ओर गुच्छेदार, भूरे बाल होते हैं जो कि पूंछ के अंतिम छोर पर ज्यादा होते हैं।

**क्षतिग्रस्त होने वाले बीज एवं उत्पाद–**

यह कीट गेहूँ, मक्का, ज्वार, चावल, दालें, तिलहन एवं उनकी बालियों को हानि पहुँचाता है। गेहूँ पैदा करने वाले शुष्क क्षेत्र जैसे राजस्थान एवं मध्यप्रदेश में गेहूँ का प्रमुख कीट है। गेहूँ आयातक देश इस क्वारनटाइन पेस्ट के लिए निरीक्षण अवश्य करते हैं।

**क्षति का स्वरूप–**

वयस्क स्वयं हानि नहीं पहुंचाते केवल लार्वा अवस्था ही हानिकारक होती है। इसके लार्वा के मजबूत मुखांग पहले अंकुर भाग को क्षति पहुंचाते हैं फिर अन्य भाग को खाते हैं। ये ज्यादातर सतह से 30 से 45 सेमी. गहराई तक ही क्षति पहुंचाते हैं। ग्रस्त बीज में लार्वा के त्वचामोचन ज्यादा संख्या में पाये जाते हैं।

**जीवन चक्र–**

इस कीट का एक जीवन चक्र 50 दिनों में पूर्ण होता है एवं वयस्क केवल दो सप्ताह तक ही जीवित रहते हैं।

**4) आटे का कीट–**

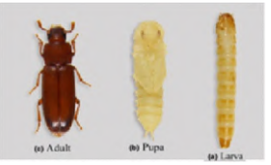


**पहचान–**

1. शरीर की लम्बाई 3 से 4 मि.मी. एवं शरीर का रंग लाल व लाल–भूरा होता है।
2. एंटीना 5 से 6 खण्डवाला होता है जिसके अंतिम तीन खंड असामान्य रूप ज्यादा बड़े होते हैं।
3. लार्वा पीले–सफेद रंग का, 5 मि.मी. लम्बा एवं बेलनाकार होता है।
4. शरीर एवं सिर पर छोटे–छोटे पीले रंग के शल्कीय बाल होते हैं।

**क्षति ग्रस्त होने वाले बीज एवं उत्पाद–**

यह कीट टूटे या क्षतिग्रस्त बीज व अनाज को हानि पहुँचाता है। गेहूँ, जौं, चावल के अतिरिक्त यह तिलहन, मसाले वाली फसलों एवं सब्जियों के बीजों को भी भंडारग्रह में क्षति पहुँचाता है। यह आटा एवं उससे बने उत्पादों को ज्यादा नुकसान पहुँचाता है एवं अधिक प्रकोप होने पर आटे से दुर्गन्ध आती है।

**क्षति का स्वरूप–**

लार्वा एवं व्यस्क दोनों ही हानिकारक होते हैं एवं टूटे या क्षतिग्रस्त बीज व अनाज को हानि पहुँचाते हैं। यह बीज के भ्रूण एवं अग्र भाग को पहले क्षति पहुँचाता है।

**जीवन चक्र–**

कीट का एक जीवन चक्र 40 से 45 दिनों में पूर्ण होता है। वयस्क एक से डेढ़ वर्ष तक जीवित रहते हैं।

**5) दालों का ढ़ोरा–**

**पहचान–**

1. इस कीटा का आकार गोलाकार एवं 4 से 5 मि.मी. लम्बा होता है। एंटीना दंतुर होते हैं। कीट भूरे–धूसर रंग का होता हैं।
2. वक्ष एवं उदर भाग के जोड़ पर बीच का भाग उभरा एवं उस पर सफेद दंति जैसे दाग होते हैं। इसका आवरण उदर भाग के अंतिम छोर को नहीं ढकता है।
3. लार्वा या ग्रब मोटा, टेढ़ा, बिना पैर के, पीले–सफेद रंग का होता है जिसका सिर काले रंग का होता है।

**क्षति ग्रस्त होने वाले बीज एवं उत्पाद–**

क्षतिग्रस्त होने वाले बीजों में लगभग सभी दालें मूँग, लोबिया, मटर, चना इत्यादि शामिल हैं। मूंग एवं लोबिया में इसका प्रकोप ज्यादा पाया जाता है।

**क्षति का स्वरूप–**

वयस्क स्वयं हानि नहीं पहुँचाते, केवल लार्वा ही हानिकारक होता है। मादा बीज के उपर एक–एक करके कई अण्डे देती है, उनमें से केवल एक लार्वा ही बीज के अंदर विकसित होता है जो उसे अंदर से पूरा खोखला करके एक बड़े छिद्र के द्वारा बाहर निकलता है।

**जीवन चक्र–**

इस कीट का एक जीवन चक्र 25 से 30 दिन में पूर्ण होता है एवं एक वर्ष में 7 से 8 पीढ़ियाँ होती हैं। वयस्क सामान्यतया 2 से 4 दिन तक जीवित रहते हैं।

**6) अनाज का पतंगा–**

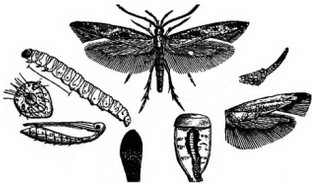

**पहचान–**

- शरीर की लम्बाई 6 से 9 मि.मी. व पंख का फैलाव लगभग 16 मि.मी. होता है।
- डपरी पंख का रंग पीला–भूरा होता है। पंख की निचली तरफ शल्कीय बाल हाते हैं जो पिछले पंख में ज्यादा बड़े होते हैं। पिछले पंख नुकीले होते हैं जो दूरस्थ छोर पर कुछ मुड़े होते हैं।
- इस कीट का लार्वा (इल्ली) 4 से 7 मि.मी. लम्बा, शरीर का रंग सफेद एवं सिर पीले रंग का होता है। लार्वा बीज के अन्दर ही रहता है।

**क्षति ग्रस्त होने वाले बीज–**

यह कीट खासकर धान, ज्वार व मक्का में अधिक लगता है परन्तु कभी–कभी जौ और गेंहूँ को भी क्षति पहुँचाता है।

**क्षति का स्वरूप–**

इस कीट का लार्वा ही क्षति पहुँचाता है। ग्रस्त बीज में केवल एक छिद्र होता है जो वयस्क के निकलने का कारण बनता है। यह कीट

खेत एवं भण्डार गृह दोनों जगह आक्रमण करता है। बीज भण्डार में यह कीट उपरी सतह तक सीमित रहता है एवं ज्यादातर केवल एक फुट की गहराई तक ही पाया जाता है।

**जीवन चक्र**

इस कीट के अंडे से पतंगा बनने का पूरा जीवन चक्र लगभग एक माह में पूरा होता है एवं एक वर्ष में 3 से 4 चक्र पूर्ण हो जाते हैं।

**7) चावल का पतंगा–**

**पहचान–**

1. इस कीट के उपर पंख का रंग बैंगनी–भूरा व फैलाव 25 मि. मी. होता है।
2. इस कीट का लार्वा 12 से 15 मि.मी. लम्बा, भूरा–सफेद एवं सिर हल्के लाल–भूरे रंग का होता है। उदर खण्ड में टांगे होती हैं।

**क्षति ग्रस्त होने वाले बीज एवं उत्पाद–**

यह कीट गेंहूँ, जौ, ज्वार, चावल, दालें, तिलहन, सूखे फल, मसालों व सब्जियों के बीज एवं उनके उत्पाद को क्षति पहुँचाता है।

**क्षति का स्वरूप–**

इस कीट का लार्वा ही क्षति पहुँचाता है। यह बाह्य भक्षी होता है एवं अनाज को जाल (वेब) से ढेले बनाकर उसके अन्दर खाता है।

**जीवन चक्र–**

इस कीट का जीवन चक्र 33 से 52 दिनों में पूर्ण होता है एवं एक वर्ष मे 5 से 6 चक्र पूर्ण होते हैं।

## बीज भंडार से पूर्व व बाद में भंडारण कक्ष में पात्र को कीट मुक्त करना:

**बीजों को बचाने हेतु समय–** समय पर उपयुक्त उपायों को अपनाकर कीट के प्रकोप को निर्धारित सीमा के नीचे रखा जाता है। वास्तव में कीट प्रबन्धन का कार्य फसल की कटाई से ही शुरु हो जाता है। इसके लिए कटाई, गहाई एवं ढुलाई में प्रयुक्त यंत्रों व साधनों को कीट मुक्त रखना चाहिए।

खलिहान को भी समतल एवं साफ करके ही फसल वहाँ रखनी चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि फसल कटने के बाद वर्षा या अन्य कारणों से बीज व अनाज भीगना नहीं चाहिए क्योंकि भीगे अनाज व बीजों में कीटों का प्रकोप अधिक होता है।

भण्डारण कक्ष एवं भण्डारण पात्र को कीट मुक्त रखने हेतु समुचित उपाय करना आवश्यक होता है, जो निम्नवत् हैं:

**भंडारण से पूर्व–**

- सबसे पहले बीज भंडारण के लिए प्रयोग होने वाले कमरे, गोदाम या पात्र जैसे कुठला इत्यादि के सुराखों एवं दरारों को यथोचित गीली मिट्टी या सीमेंट से भर दें।
- यदि भंडारण कमरे या गोदाम में करना है तो उसे अच्छी तरह साफ करने के पश्चात् एक लीटर मैलाथियान को 100 ली. पानी में (40 मि.ली. कीटनाशी एक लीं. पानी में) घोलकर हर जगह छिड़काव करना चाहिए।
- बीज रखने हेतु नई बोरियों का प्रयोग करें। यदि बोरियां पुरानी है तो उन्हें गर्म पानी में 50 डिग्री सें. पर 15 मिनट तक भिगोएं या फिर उन्हें 40 मि.ली. मैलाथियान 50 ईसी या 40 ग्राम डेल्टामेथ्रिन 2.5 डब्ल्यू पी (डेल्टामेथ्रिन 2.8 ईसी की 38.0 मि.ली.) प्रति 15 ली. पानी के घोल में 10 से 15 मिनट तक भिगोकर छाया में सुखा लें और इसके बाद उनमें बीज या अनाज भरें।
- यदि मटके में भंडारण करना है तो पात्र में आवश्यकतानुसार उपले या गोसे डालें और उसके उपर 500 ग्रा. सूखी नीम की पत्तियां डालकर धुआं करें एवं उपर से बन्द करके वायु अवरोधी कर दें। उस पात्र को 4 से 5 घंटे बाद खोलकर ठंडा करने के पश्चात् साफ करके बीज या अनाज का भंडारण करें। यदि मटका अंदर व बाहर से एक्रीलिक (एनेमल) पेंट से पुते हों तो 20 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को एक ली. पानी में मिलाकर बाहर छिड़काव करें एवं छाया में सुखाकर प्रयोग करें। बीज या अनाज भरने के बाद पात्र का मुँह बन्द कर वायु अवरोधी कर दें।
- किसी भी स्थान या पात्र में बीज रखने से पूर्व बीज को अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए जिससे उसमें नमी की मात्रा 10 प्रतिशत या उससे कम रह जाए। कम नमी वाले बीजों में अनाज के साथ नये बीज या अनाज को नहीं रखना चाहिए।
- भंडारण करने से पहले यह जाँच कर लेना चाहिए कि नये बीज में कीड़ा लगा है या नहीं। यदि लगा है तो भंडार गृह में रखने से पूर्व उसे एल्युमीनियम फॉस्फाइड द्वारा प्रधूमित कर लेना चाहिए।
- ऐसे बीज जिनकी बुआई अगली फसल के बीजने तक निश्चित हो, उनको कीटनाशी जैसे 6 मि.ली. मैलाथियान या 4 मि.ली. डेल्टामेथ्रिन को 500 मि.ली. पानी में घोलकर एक क्विंटल बीज की दर से उपचारित करें एवं छाया में सुखाकर भण्डारण पात्र में रख लें। कीटनाशी द्वारा उपचारित इस प्रकार के बीजों को किसी रंग द्वारा रंग कर भण्डार पात्र के ऊपर उपचारित लिख देते हैं। इस प्रकार का उपचार कम से कम छः माह तक काफी प्रभावी होता है। परन्तु ऐसा उपचार खाने वाले अनाज में नहीं करना चाहिए एवं उपचारित बीज को कभी भी मनुष्यों या जानवर को नहीं खाना चाहिए।
- बीज भरी बोरियों या थैलों को लकड़ी की चौकियों, फट्टों अथवा 1000 गेज की पोलीथीन चादर या बॉस की चटाई पर रखना चाहिए ताकि उनमें नमी का प्रवेश न हो सके।

**भंडारण के बाद–**

- भंडारण के कुछ कीट फसल की कटाई से पहले खेत में ही अपना प्रकोप प्रारम्भ कर देते हैं। ये कीट फसल के दानों पर अपने अंडे देते हैं जो आसानी से भंडार गृह में पहुँचकर हानि पहुँचाते हैं। इस प्रकार के कीटों में अनाज का पतंगा प्रमुख है। एसे कीटों से बीजों को बचाने हेतु एल्युमीनियम फॉस्फाइड की दो से तीन गोलियाँ (प्रत्येक 3 ग्रा.) प्रति टन बीज के हिसाब से 7 से 15 दिन

के लिए प्रधूमित कर देते हैं। ऐसा प्रधूमन भण्डार में रखने के तुरंत बाद करें। प्रधूमित कक्ष खोलने के बाद जब गैस बाहर निकल जाए तो उसी दिन या अगले दिन 40 मिली मैलाथियान, या 38 मि.ली. डेल्टामेथ्रिन या 15 मि.ली. बाइफेंथ्रिन प्रति 15 ली. पानी के हिसाब से मिलाकर बोरियों के उपर छिड़काव कर देना चाहिए।

- बीज प्रधूमित करते समय एल्युमीनियम फॉस्फाइड की मात्रा 6.0 से 9.0 ग्रा. (2 से 3 गोली) प्रति टन बीज के हिसाब से आवरण प्रधूमन (कवर फ्यूमीगेशन) एवं 4.5 से 6.0 ग्राम (1.5 से 2.0 गोली) प्रति घन मीटर स्थान (स्पेस या गोदाम फ्यूमीगेशन) के हिसाब से निर्धारित करते हैं।
- प्रधूमन करते समय अच्छी गुणवत्ता वाला वायुरोधी कवर ही प्रयोग करें, जिसकी मोटाई 700 से 1000 गेज व 200 जीएसएम होनी चाहिए। बहुसतहीय, मल्टीक्रास लैमिनेटेड, 200 जीएमएम के कवर प्रधूमन हेतु अच्छे होते हैं।
- ज्यादा कीट प्रकोप होने पर प्रधूमन दो बार करना चाहिए। इसमें पहले प्रधूमन के बाद कवर 7 से 10 दिन खुला रखने के बाद तथा दूसरा प्रधूमन 7 से 10 दिन के लिए पुनः कर दें। इससे कीटों का नियंत्रण अच्छी तरह से हो जाता है।
- भंडार गृह को 15 दिन में एक बार अवश्य देखना चाहिए। बीज में कीट की उपस्थिति, फर्श व दीवारों पर जीवित कीट दिखाई देने पर आवश्यकतानुसार कीटनाशी का छिड़काव करना चाहिए। यदि कीट के प्रकोप की शुरुआत है तो 40 मि.ली. डी.डी.वी.पी. प्रति 15 ली. पानी के हिसाब से मिलाकर बोरियों के उपर एवं अन्य स्थान पर हर जगह छिड़काव करें। कीट नियंत्रण हो जाने के बाद हर पंद्रह दिन बाद उपर लिखे कीटनाशकों को अदल–बदल कर छिड़काव करते रहना चाहिए।
- मटके या कुठले में रखे जाने वाले बीज को एल्युमीनियम फॉस्फाइड की एक गोली द्वारा (एक ग्रा. से आधा टन बीज) प्रधूमित करके रखें। यदि प्रधूमित नहीं किया है तो रखने के कुछ समय पश्चात् उस पात्र में कीटों की उपस्थिति देख लें। अगर कीट का प्रकोप नहीं है तो दुबारा बन्द कर दे और यदि है तो बीज को एल्युमीनियम फॉस्फाइड द्वारा प्रधूमित कर रखना चाहिए।

**अनाज भंडारण में सावधानियाँ:**

- भण्डारण हमेशा कृष्ण पक्ष में करें।
- प्रधूमन हमेशा वायुअवरोधी गोदाम, कक्ष या पात्र में ही करना चाहिए।
- प्रधूमन के दौरान कीटनाशी को खुले हाथों से न छूएं।
- एल्युमीनियम फॉस्फाइड का प्रधूमन हमेशा रिहायशी स्थान से दूर करना चाहिए एवं वह स्थान खुला होना चाहिए।
- प्रधूमन हमेशा स्वयं न करके सरकार द्वारा प्रशिक्षित एवं अधिकृत व्यक्तियों द्वारा कराना चाहिए।
- एल्युमीनियम फॉस्फाइड की गोलियाँ गोदाम या कमरे में श्वास रोक कर, जल्दी–जल्दी डालनी चाहिए एवं दूर हटकर ही श्वास लेना चाहिए या फिर अनुशंसित मास्क पहनकर करना चाहिए। खिड़कियाँ इत्यादि पहले से ही सील रखने चाहिए। निकलने के लिए केवल द्वार को ही खुला रखें एवं बाहर निकलकर उसे भी तुरंत सील कर दें।
- प्रधूमन कभी भी सोने वाले कमरे या इसके समीप नहीं करना चाहिए। यही सावधानी पशुओं के लिए भी रखनी चाहिए।
- उपयोगकर्ता पर कीटनाशी के प्रभाव की दशा में प्रशिक्षित डॉक्टर से सम्पर्क करें।

❖❖❖

# ग्लेडियोलस की बागवानी

**अभिषेक सिंह एवं पुष्पेन्द्र देवांगन**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

ग्लेडियोलस एक बहुत ही महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय फूल है जो मुख्य रूप से घरेलु और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में कटे फूलों के रूप में प्रसिद्ध है। कन्दीय फूलों में ग्लेडियोलस को क्वीन (कन्दीय फूलों की रानी) कहा जाता है। इसके अतिरिक्त ग्लेडियोलस को क्यारियों, गमले तथा गार्डन में आसानी से उगाया जा सकता है।

**भूमि का चुनाव:**

ग्लेडियोलस की खेती के लिए खुला स्थान जहां पूरे दिन धूप रहती हो सबसे अच्छा पाया गया है। यह एक घनकन्दीय वर्ग का पौधा है इसलिए मिट्टी से जल निकास का प्रबन्ध होना चाहिए।

**जलवायु:**

ग्लेडियोलस की खेती सफलतापूर्वक विभिन्न प्रकार के जलवायु में विभिन्न जगहों पर की जा सकती है। मैदानी भागों में इसकी खेती सर्दी के मौसम में तथा पर्वतीय क्षेत्रों में लगभग अलग–अलग ऊँचाई पर पूरे वर्ष की जा रही है।

**प्रवर्धन:**

ग्लेडियोलस का प्रवर्धन घनकन्दों, घनकन्द विभाजन तथा ऊतक संवर्धन विधि द्वारा किया जाता है।

**किस्मों का चुनाव:**

ग्लेडियोलस की अनेक किस्में हमारे देश में कट–फ्लावर के लिए उगायी जाती हैं। जिनमें सुप्रीम, स्नो प्रिंस, सूर्य किरण, मार्निग किस, फ्रेंडशिप, हैप्पी, मैलोडी, पंजाब ग्लांस और सैन्सर आदि प्रमुख हैं।

**खेत की तैयारी:**

मिट्टी का पी.एच. मान 5.5 से 7.0 के बीच में होना चाहिए। इसकी अच्छी फसल के लिए मिट्टी की दो से तीन बार अच्छी तरह 30 से 40 सेंटीमीटर गहरी जुताई करनी चाहिए। जुताई करने के उपरान्त मृदा परीक्षण के परिणाम के अनुसार सड़ी हुई गोबर की खाद एवं उर्वरक की मात्रा मिट्टी में मिला देना चाहिए। ग्लेडियोलस की खेती के लिए क्यारी बनाने की विधि उपलब्ध सिंचाई सुविधा पर निर्भर करती है।

**कंद रोपण, उपचार एवं दूरी:**

ग्लेडियोलस के घनकन्द का रोपण अलग–अलग जलवायु में अलग–अलग समय पर किया जाता है। घनकन्दों को रोपाई से पहले कैप्टान 2 ग्राम का प्रति लीटर पानी के दर से घोल बनाकर एक घंटे तक उपचारित करना चाहिए। यदि मिट्टी में कीड़ों की समस्या हो तो थाईमेट 10 जी का प्रयोग करना चाहिए। घनकन्दों को क्यारियों में पंक्ति से पंक्ति 20 सेंटीमीटर तथा घनकन्द से घनकन्द की दूरी 15 सेंटीमीटर रखनी चाहिए।

**सिंचाई प्रबंधन:**

ग्लेडियोलस में 7–10 दिन के अंतराल पर सिंचाई कर देनी चाहिए। ऐसा करने पर ग्लेडियोलस के घनकन्द का रोपण करने पर जमाव अच्छा होता है।

**खाद और उर्वरक:**

इसकी अच्छी फसल के लिए 30 से 40 टन प्रति हैक्टेयर की दर से गोबर की सड़ी खाद को घनकन्द की रोपाई से 15 से 20 दिन पहले मिट्टी में मिला देना चाहिए। सामान्य तौर पर नत्रजन 250 किलोग्राम, फास्फोरस 125 किलोग्राम तथा पोटाश 250 किलोग्राम प्रति हेक्टयर की दर से डालने पर इसका पुष्प तथा घनकन्द की उपज अच्छी होती है।

**खरपतवार नियंत्रण:**

क्यारियों को साफ–सुथरा रखना जरुरी है। क्योंकि अधिक खरपतवार के कारण ग्लेडियोलस की फसल पर अनेक प्रकार के कीड़ों के प्रकोप की संभावना बढ़ जाती है। इसकी रोकथाम के लिए ग्लेडियोलस लगाने से दो सप्ताह पहले ग्लाइफोसेट 5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के दर से घोल बनाकर खेतों में छिड़काव करना चाहिए।

**फूलों की कटाई:**

ग्लेडियोलस के घनकंदों के रोपाई के बाद अच्छी देखभाल करने पर लगभग 90 से 100 दिनों में पुष्प डण्डियों की कटाई शुरु हो जाती है। कभी–कभी इससे अधिक भी समय लगता है। इसकी पुष्प डण्डियों को स्थानीय बाजार के लिए उस समय काटना चाहिए, जब निचली कली में रंग दिखाई देना शुरु हो जाए। पुष्प डण्डियों को सुबह के समय धारदार चाकू से काटना चाहिए तथा काटने के बाद बाल्टी में पानी में रखना चाहिए। पुष्प डण्डियों को काटते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि एक पौधे पर कम से कम 4 से 5 पत्तियां बनी रहें।

**उपज:**

उपरोक्त वैज्ञानिक तकनीक से एक हैक्टेयर क्षेत्रफल में लगी ग्लेडियोलस की फसल से लगभग 2.5 से 3 लाख पुष्प डण्डियां तथा उतना ही घनकंद की उपज होती है। पुष्प डण्डियों को लम्बाई एवं पुष्प कलिकाओं के आधार पर विभिन्न वर्गों में विभाजित कर लेते हैं, जैसे– 1. फैन्सी– जिस पुष्प डंडी की लम्बाई 107 सेंटीमीटर से अधिक और 16 स्पाइक की संख्या को इस वर्ग में रखते हैं। 2.

स्पेशल– जिस पुष्प डंडी की लम्बाई 97 से 107 सेंटीमीटर तक और 15 स्पाइक संख्या को स्पेशल वर्ग में रखते हैं। 3. स्टेण्डर्ड– जिस पुष्प डंडी की लम्बाई 81 से 96 सेंटीमीटर तक और 12 स्पाइक संख्या को स्टेंडर्ड वर्ग में रखते हैं। 4. यूटीलिटी– जिस पुष्प डंडी की लम्बाई 81 सेंटीमीटर से कम और 10 स्पाइक संख्या को यूटिलिटी वर्ग में रखते हैं।

विभिन्न वर्ग के अनुसार 20 पुष्प डण्डियों का गुच्छा बनाते हैं और इन पुष्प गुच्छों को कागज के डिब्बों में पैक करके बाजार में भेजते हैं।

**धनकंदों की खुदाई और भंडारणः**

ग्लेडियोलस के पुष्प डण्डियों की कटाई करने के 60 से 70 दिन बाद पत्तियां बिल्कुल पीली पड़ जाती हैं। यह घनकन्दों की खुदाई का समय होता है। खुदाई करने के बाद घनकंदों एवं घनकंदिकाओं को आकार के अनुसार विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत कर लेना चाहिए। इन घनकंदों एवं घनकंदिकाओं को 2 ग्राम बेनोमिल एवं 2 ग्राम कैप्टान के घोल में 1 घंटा के लिए डुबोकर उपचारित करना चाहिए। इसके बाद इसे छायादार स्थान पर कुछ समय तक सुखा लेना चाहिए। जब यह सूख जाए इसके बाद इन्हें जालीदार जूट के बैग में रखकर हवादार कमरे में रख देना चाहिए। रोपण से 75 से 85 दिन पहले शीतगृह में भंडारण कर देना चाहिए।

❖❖❖

# मूंग की बसंतकालीन उन्नत खेती कैसे करें, जानिए उपयोगी एवं आधुनिक तकनीक

**धीरेन्द्र प्रसाद चतुर्वेदी, राजवीर सिंह एवं अयोध्या प्रसाद पाण्डेय**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

मूंग की बसंतकालीन उन्नत खेती, संसार में दलहनी फसलों का सबसे अधिक क्षेत्रफल भारत में है। फसल पद्धतियों के विकास में दलहनी फसलों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। एक ओर ये भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखती हैं, दूसरी ओर पोषक आहार के रूप में दाल हमारे भोजन का प्रमुख हिस्सा है। दाल के विशेष महत्व से हम सभी परिचित हैं। वैज्ञानिकों ने यह प्रमाणित किया है कि अन्य दालों की अपेक्षा मूंग की दाल में मौजूद प्रोटीन शीघ्र पाचक होती है और मरीजों के लिये भी यह दाल लाभदायक है।

भारत में मूंग ग्रीष्म और खरीफ दोनों मौसम की कम समय में पकने वाली एक मुख्य दलहनी फसल है। मूंग का उपयोग मुख्य रूप से आहार में किया जाता है, जिसमें 24 से 26 प्रतिशत प्रोटीन, 55 से 60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट और 1.3 प्रतिशत वसा होती है। यह दलहनी फसल होने के कारण इसके तने में नाइट्रोजन की गाठें पाई जाती हैं। जिससे इस फसल के खेत को 35 से 40 किलोग्राम नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। ग्रीष्म मूंग की खेती चना, मटर, गेंहूँ, सरसों, आलू, जौ, अलसी आदि फसलों की कटाई के बाद खाली हुए खेतों में की जा सकती है।

पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और राजस्थान प्रमुख ग्रीष्म मूंग उत्पादक राज्य हैं। धान–गेहूं फसल चक्र वाले क्षेत्रों में जायद मूंग की खेती द्वारा मिटटी उर्वरता को उच्च स्तर पर बनाये रखा जा सकता है। लेकिन अच्छी तकनीकी न होने के कारण जितने क्षेत्र में इसकी फसल उगाई जाती है उसके अनुपात में पैदावार अच्छी नही मिलती है।

गर्मी के मौसम के दौरान सिंचित भूमि में मूंग का गैर मौसमी फसल के रूप में अपना स्थान बन गया है। इस अवधि में अधिकतर किसानों को अपनी भूमि और सिंचाई साधनों के उपयोग का मौका मिल गया है। इस मौसम में बीमारियों का प्रभाव भी कम रहता है। आधुनिक विधि से खेती करने से निश्चित ही यह फसल अच्छी उपज दे सकती है। यदि आप मूंग की परम्परागत खेती की जानकारी चाहते है, तो यहां पढ़ें–

### मूंग की बसंतकालीन खेती हेतु भूमिः

मूंग की बसंतकालीन खेती के लिए उपजाऊ, अच्छी जल निकासी वाली, नमक रहित, मध्यम से भारी दोमट मिट्टी की आवश्यकता होती है।

### खेत की तैयारीः

रबी फसल की कटाई के बाद खेत को दो बार कल्टीवेटर या हैरो चला कर पाटा लगा देना चाहिए, ताकि खेत समतल हो जाए।

### बुआई का समयः

उत्तर भारत में 20 मार्च के बाद मूंग की बुवाई कर देनी चाहिए।

### बीज की मात्राः

मूंग की सफल खेती के लिए बीज की उपयुक्त मात्रा 15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर होती है।

### बीज का उपचारः

बुवाई से पहले बीज को 2 ग्राम थायरम + 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से अच्छी प्रकार उपचारित कर लेना चाहिए। इसके बाद राइजोबियम तथा पी एस बी जीवाणु टीका गुड़ के घोल में मिलाकर बीज से अच्छी तरह मिला दें। इसके बाद बीज को छाया में सुखाकर तुरन्त बुवाई कर दें।

### बुवाई की विधिः

कतार से कतार की दूरी 25 से 30 सेंटीमीटर और कतारों में पौधे से पौधे की दूरी 5 सेंटीमीटर होनी चाहिए बुवाई 3 से 4 सेंटीमीटर गहरी की जानी चाहिए।

### मूंग की उन्नत किस्मेंः

मूंग की उन्नत किस्में इस प्रकार हैं, जैसे–

**1. पूसा विशाल–** यह 12 से 14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देने वाली किस्म है। गर्मी के दिनों में 60 से 65 दिनों का समय लेती है। दाने बड़े और चमकदार हरे रंग के होते हैं। यह पीले मोजैक के प्रति अवरोधी होती है तथा धान–गेहूं–मूंग फसल चक्र के लिए यह किस्म उत्तम होती है।

**2. पी एस 16–** उत्तर–पूर्व के मैदानी इलाकों के लिए यह किस्म उपयुक्त है। इसकी उत्पादन क्षमता 15 से 16 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है और 60 दिनों में फसल पक जाती है। पीले मोजैक के प्रति यह भी अवरोधी होती है।

**3. पी एस 2–** यह उत्तरी क्षेत्र तथा पूर्व–पश्चिमी मैदानी क्षत्रों के लिए उपयुक्त किस्म है। इसकी उत्पादन क्षमता 11 से 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है एवं फसल पकने में 65 दिन का समय लगता है।

**4. पी डी एम 139–** यह उत्तर प्रदेश के लिए उपयुक्त किस्म है। उत्पादन क्षमता 11 से 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है और फसल पकने में 60 से 65 दिन का समय लेती है।

**5. एस एम एल 668–** यह पंजाब, हरियाणा और राजस्थान के लिए उपयुक्त किस्म है। इसकी उत्पादन क्षमता 11 से 12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

**खाद और उर्वरक:**

मूंग की अच्छी उपज के लिए लगभग 5 से 10 टन प्रति हेक्टेयर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद बुआई से लगभग 20 से 25 दिन पहले खेत में अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। उर्वरकों की मात्रा निम्नलिखित प्रकार से होनी चाहिए:

नाइट्रोजन – 20 से 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर
फास्फोरस – 70 से 80 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर
पोटाश – 40 से 45 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर
गन्धक – 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर

अगर फास्फोरस डी ए पी से दिया गया हो तो नाइट्रोजन अलग से देने की आवश्यकता नहीं है। अगर मिट्टी की जांच करके खाद दे रहे हैं, तो खाद की मात्रा उसके हिसाब से ज्यादा या कम कर सकते हैं।

**खरपतवार प्रबंधन:**

गर्मी में लगाई गई मूंग की फसल में खरपतवारों की समस्या अधिक नहीं होती। परन्तु पहले एक महीने तक पौधे की बढ़वार धीमी गति से होने के कारण हमें विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। निम्नलिखित रसायनों के प्रयोग से इन्हें नियंत्रित किया जा सकता है, जैसे– फ्लुक्लोरेलिन या ट्राइफ्लोरेलिन 1 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बुवाई से पहले या पेन्डीमिथालिन 1 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर या मेटाक्लोर 1 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण से पहले 750 से 800 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव कर लेना चाहिए।

**सिंचाई व्यवस्था:**

अच्छी फसल के लिए खेत की जुताई से पहले एक सिंचाई करते हैं और बुवाई के 30 एवं 45 दिनों के उपरांत सिंचाई की आवश्यकता होती है।

**पौध–संरक्षण:**

**कीट प्रबंधन–** फोरेट 10 जी 10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से कुंडों में डालें। इसके पश्चात कीट के प्रकार और क्षति की तीव्रता के अनसार क्युनालफॉस 25 ई सी 1.5 लीटर प्रति हेक्टेयर या मोनोक्रोटोफॉस 36 एस सी 0.8 लीटर प्रति हेक्टेयर के एक या दो छिड़काव करें। एक छिड़काव के लिए पानी की मात्रा 750 से 800 लीटर रखें।

**रोग प्रबंधन–** पीला मोजैक मूंग में लगने वाला सबसे भीषण रोग है, जो सफेद मक्खियों से फैलता है। इसके नियंत्रण के लिए थायोमिथॉकसाम 25 प्रतिशत डब्ल्यू जी 200 ग्राम प्रति हेक्टेयर या मिथाइल डिमेटॉन का 0.8 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

पत्तियों पर होने वाले पर्ण धब्बा रोग की रोकथाम के लिए कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू पी को 0.5 किलोग्राम, 1000 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से बुवाई के 35 और 45 दिन बाद दो छिड़काव करें।

जीवाणु जनित फफोलों का रोग होने पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2 किलोग्राम +स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 200 ग्राम प्रति 1000 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

**फसल चक्र:**

गेंहूँ या अन्य फसल की कटाई के बाद मूंग की फसल को या तो अकेले ही बोया जा सकता है या ईख या कपास की फसल की कतारों के बीच में बुआई की जा सकती है। अविराम फसल पद्धति (रिले क्रॉपिंग) के अन्तर्गत गेहूं तथा मक्का की फसलों के बीच की अवधि में अकेली फसल के रूप में भी इसे बोया जा सकता है।

अविराम फसल पद्धति का अंग होने के कारण मूंग की बुआई गेंहूँ की फसल कट जाने के बाद की जाती है। गेंहूँ की कटाई के कुछ दिन पहले खेत में बुआई कर देनी चाहिए तथा फसल कटते ही मूंग के खेत में 40 से 50 सेंटीमीटर की दूरी पर मक्का की कतारों में बुवाई की जाती है।

जून की शुरूआत में मूंग की फसल में सिंचाई की जाती है। कतारों के बीच में मक्का की बुआई हाथ से चलने वाले नजारे से कर दी जाती है। फलियों को तोड़ने के पश्चात 10 से 12 दिन में मूंग की फसल कट जाती हैं। इसी दौरान जून में वर्षा होने से ही मक्का के बीच अंकुरित हो जाते हैं और पौधे जड़ पकड़ लेते हैं।

मिश्रित फसल पद्धति के अन्तर्गत गर्मी के मौसम में मूंग को गन्ना या कपास की फसलों के बीच कतारों में बोया जा सकता है। इस विधि से फसल उगाने में अतिरिक्त सिंचाई या उर्वरक की जरूरत नहीं पड़ती। मुख्य फसल में लगाई गई लागत से ही मूंग की आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है।

धान के बाद आलू की फसल लेने के पश्चात आलू को कोड़ने से पहले मूंग की बुआई कर देनी चाहिए। उत्तर भारत के सिंचाई वाले इलाकों में अपनाये जाने वाला यह सर्वाधिक आय देने वाला फसल चक्र है।

**कटाई व झड़ाई:**

बुआई के दो मास बाद फसल पर लगी अधिकतर फलियां पक जाती हैं और उन्हें चुन कर एकत्रित कर लिया जाता है। यदि फसल में कुछ फलियां रह गई हों एवं उनके तोड़ने में अधिक लागत न आये तो उन्हें 8 से 10 दिन बाद फिर तोड़ा जा सकता है या फसल को हरी खाद के रूप में फलियों के आने के तुरंत बाद में ही जोता जा सकता है।

कटाई के बाद चार पाँच दिन तक खेत में ही सूखने देना चाहिए, ताकि दानों में नमी की मात्रा 12 प्रतिशत हो जाए। इसके बाद इसकी गहाई कर के या अन्य यंत्र द्वारा निकाल लेनी चाहिए।

**पैदावार:**

अकेली बोई गई मूंग की फसल से 12 से 14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज मिल जाती है। अन्य फसलों के साथ मिलाकर बोने से उपज 5 से 7 क्विंटल प्रति हेक्टेयर हो जाती है। दोनों ही अवस्थाओं में दो ढाई मास की अवधि में जितनी आय मिलती है वह अतिरिक्त होती है।

❖❖❖

ashirvad
by aliaxis
दुनिया में सबसे अधिक बिकने वाले
uPVC कॉलम पाइप्स

स्मार्ट वाटर मैनेजमैंट प्लम्बिंग . सैनिटरी . एग्रीकल्चर

Call: 1800 572 8900 / 9902 333 333 | info@ashirvad.com | www.ashirvad.com

# घर के पिछवाड़े में मुर्गी पालनः बेहतर आजीविका का स्त्रोत

**मनीष मेश्राम, रामेश्वर पटले, नेहा पटले एवं राफिया आमिन**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

हमारे देश में जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा 72.2 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा मुख्यतः अजीविका का स्त्रोत कृषि है। लेकिन प्राकृतिक आपदाओं की वजह से किसानों को नुकसान हो रहा है। इसीलिए किसान कृषि के साथ–साथ मुर्गी पालन को एक व्यवसाय के रूप में जोड़े तो उनके लिए फायदेमंद हो सकता है। इसीलिए लघु एवं सीमांत किसानों के लिए छोटे स्तर पर घर के पिछवाड़े में मुर्गी पालन एक अजीविका का स्त्रोत हो सकता है।

भारत में वर्तमान में मांस व अण्डे के उत्पादन में वृद्धि हुई हैं वर्तमान में 63 अण्डे प्रति व्यक्ति और 2.2 किग्रा मांस प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष उपलब्ध है। अण्डे उत्पादन में भारत का तीसरा स्थान है और चिकन उत्पादन में छटवां स्थान है। पिछवाड़े मुर्गी पालन में मुर्गियों को खुले में रखा जाता है। हमारे देश में कुपोषण एवं गरीबी की समस्या को दूर करने के लिए पारम्परिक मुर्गी पालन अथवा घर के पिछवाड़े मुर्गी पालन की यह पद्धति पुराने समय से चली आ रही है। इस प्रकार के मुर्गी पालन में 20 से 30 मुर्गियों का समुह एक परिवार द्वारा पाला जा सकता है। बैकयार्ड मुर्गी पालन में मुर्गियों में रोग प्रतिरोध क्षमता के साथ–साथ विपरीत प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता अधिक होती है।

### लाभः

1. गरीब व सीमान्त किसानों के लिए रोजगार का प्रमुख साधन है।
2. जमीन की उपजाऊ क्षमता बढ़ जाती है।
3. अधिक लाभप्रद व्यवसाय है।
4. ग्रामीण क्षेत्र के लोगों का जीवन स्तर सुधारने में सहायक है।

### नस्ल का चुनावः

पारम्परिक कुक्कुट पालन में वनराजा, कृष्णाजी, ग्रामलक्ष्मी, ग्रामप्रिया आदि प्रजातियाँ उपयोग की जाती हैं। इनकी वृद्धि दर व उत्पादन कम होने की वजह से वर्तमान में कुछ देशी–विदेशी संकर नस्लें उपयोग में ली जाती हैं। असील, रोड आइलेण्ड रेड, कड़कनाथ आदि का उपयोग किया जाता है। किन्तु अधिक लाभ के लिए नई प्रजातियाँ जैसे कैरी भयामा, कैरी देवेन्द्रा, कैरी निर्भक आदि नस्लों का उपयोग किया जाता है। इनकी वार्षिक उत्पादन क्षमता 180 से 200 अण्डे की है।

### आवास प्रबंधनः

सामान्यतः बैकयार्ड पोल्ट्री फार्मिंग में आवास की आवश्यकता नहीं होती है। परन्तु मौसम की विषम परिस्थितियों एवं शिकारी जानवरों से मुर्गियों को बचाने के लिए आवास बनाना आवश्यक होता है। आवास की लंबाई पूर्व–पश्चिम दिशा में रखी जानी चाहिए। हवा तथा सूर्य के प्रकाश के लिए जाली लगाई जा सकती है। आवास की ऊंचाई 4 से 5 फुट होनी चाहिए। आवास छायादार पेड़ के पास बनाएँ ताकि गर्मियों में पक्षियों को छाया मिल सके।

### स्थान की आवश्यकताः

| उम्र (सप्ताह) | फर्श स्थान (फीट) | भोजन का स्थान (सेमी) | पानी का स्थान (सेमी) |
|---|---|---|---|
| 0–4 | 0.5 | 2.5 | 1.5 |
| 4–8 | 1.0 | 5.0 | 2.0 |
| 8–12 | 2.0 | 6.5 | 2.5 |

### आहार व्यवस्थाः

बैकयार्ड मुर्गी पालन में आहार का मूल्य कम होता है क्योंकि इसमें मुर्गी अनाज के दाने, कीड़े मकोड़े, घास की कोमल पत्तियॉ तथा घर की झूठन आदि खाकर अपना पेट भर लेती हैं। परन्तु इससे इन्हें पूर्ण आहार नहीं मिल पाता है। इस वजह से इन्हें संतुलित आहार देना चाहिए, जिसमें पर्याप्त मात्रा में कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, विटामिन एवं खनिज लवण को अच्छी वृद्धि के लिए चूजों को अलग से 30 से 60 ग्राम प्रतिदिन प्रति चूजा दाना देना चाहिए।

### संतुलित आहार का उदाहरणः

| | | |
|---|---|---|
| पीली मक्का | – | 60 प्रतिशत |
| मूंगफली की खली | – | 27 प्रतिशत |
| मछली व हड्डी का चूरा | – | 5 प्रतिशत |
| खनिज मिश्रण | – | 2 प्रतिशत |
| शीरा | – | 5 प्रतिशत |
| नमक | – | 1 प्रतिशत |

### आयु के अनुसार आहार मात्रा प्रतिदिनः

| | | |
|---|---|---|
| 0–2 माह | – | 50 ग्राम |
| 2–3 माह | – | 75 ग्राम |
| 3–4 माह | – | 100 ग्राम |
| 4–5 माह | – | 110 ग्राम |
| 5–6 माह | – | 130–145 ग्राम |

### टीकाकरणः

बैकयार्ड मुर्गी फार्म में ऐसी प्रजातियों को चुना जाता है, जिनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक होती है। लेकिन फिर भी मुख्य बीमारी जैसे रानीखेत, मेरेक्स, गुम्बरू आदि के टीके लगाये जाते हैं।

### बैकयार्ड मुर्गी पालन में 30 मुर्गी व 10 मुर्गे का आर्थिक विश्लेषणः

| | |
|---|---|
| कुल व्यय = 1600+9000+2000+700+850 | = 14150 |
| 30 मुर्गी व 10 मुर्गे से प्राप्त आय प्रतिवर्ष :– | |
| मुर्गी – प्रति मुर्गी 100 अण्डे, 6 रू. प्रति अण्डा | |
| 30 मुर्गी 3000 अण्डे से आय 3000x6 | = 18000 |
| 30 मुर्गी वजन 3/– कि.ग्रा. बिक्री | = 15000 |
| मुर्गा :– 10 मुर्गा वजन 2/– किलो बिक्री | = 4000 |
| कुल आय | = 37000 |
| कुल वार्षिक आय | = 37000 |
| कुल व्यय | = 14150 |
| लाभ | = 22850 |

# तरुषी eicher ट्रैक्टर्स

हमारे पास सभी नए प्रकार कृषि उपकरण उचित मूल्य पर उपलब्ध हैं।

शासन दुवारा अनुदान में कृषि यंत्र उपलब्ध

रियायती दर पर कृषि यंत्र प्राप्त करने के लिए संपर्क करें

Mobile
9300510075

Designed By
BIX42

NH-7 Maiher road Katni, Madhya Pradesh 483504, India

# अंकुरण परीक्षण के माध्यम से उत्पादन लागत में कमी लायें

**रुची गुप्ता**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

फसल से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए अच्छा बीज सबसे महत्वपूर्ण आदान होता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि बीज गुणवत्तायुक्त तथा अच्छे अंकुरण क्षमता वाला होना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि किसान भाई अनुशंषित बीज दर से अधिक मात्रा में बीज की बुवाई करते हैं। उनकी सोच यह रहती है कि यदि कुछ बीज का अंकुरण नहीं हुआ तो अतिरिक्त मात्रा में बोया गया बीज उसकी भरपाई करेगा। परिणामस्वरूप जब पौधे उगते हैं तो उनकी संख्या आवश्यकता से अधिक होती है। जिससे पौधे कमजोर हो जाते हैं तथा पौधों में कल्ले कम फूटते हैं। जो कल्ले निकलते भी हैं तो कमजोर होते हैं, जिससे अधिक मात्रा में बीज होने के बाद भी पौधों की संख्या कम हो जाती है तथा उत्पादन में भी काफी कमी आ जाती है। यदि किसान भाई यह सुनिश्चित कर लें कि जो बीज वे बोने जा रहे हैं वह गुणवत्ता के साथ–साथ अच्छी अंकुरण क्षमता वाला है तो निश्चित ही कम बीज में अनुशंषित बीज दर पर अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकेंगे। किसी भी बीज के अच्छा या खराब होने का तात्पर्य उसके अंकुरित होने से होता है। यदि सभी बीजों में अच्छा अंकुरण आता है तो वह बीज अच्छा माना जाता है अन्यथा सब कुछ ठीक होने के बाद भी बीज सही नहीं माना जाता है।

किसान भाई यदि चाहें तो बीजों का अंकुरण परीक्षण स्वयं कर सकते हैं। अंकुरण परीक्षण की कुछ सामान्य विधियां हैं, जिन्हें अपनाकर किसान भाई आसानी से बीजों का अंकुरण परीक्षण अपने घर पर ही कर सकते हैं।

## विभिन्न अंकुरण जांच विधियां:

a) **क्यारी विधि–** इस विधि से बीजों का अंकुरण परीक्षण करने के लिए 1.25 मी. X 1.25 मी. की क्यारी बनाकर उसमें 2 तगाड़ी बालू तथा अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद छान कर मिलायें। क्यारी के केन्द्र का 1मी. X 1मी. क्षेत्र बीज बोने के लिए चुन लें। इस क्यारी में 5 X 5 सेमी की दूरी पर कतारें बनाएं। इस प्रकार एक क्यारी में 20 कतारें हो जायेंगी। 400 दाने/क्यारी गिनकर एक–एक कतार में 20 दाने बराबर दूरी पर व एक सेमी. गहराई पर बोयें, तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। बीज 4 से 5 दिन में अंकुरित होने लगते हैं। उगे हुए स्वस्थ अंकुरित बीज की संख्या की गिनती 3–4 दिन तक करते हैं। यदि 400 बीज में से 320–340 बीज उगते हैं तो 80 से 85 प्रतिशत अंकुरण होता है। यदि बीज भी स्वस्थ हों तो वह बीज सामान्य बीज दर से यानि अनुशंषित बीज दर से बोने हेतु उपयुक्त मानना चाहिए।

b) **टॉट/पेपर टॉवेल विधि–** इस विधि से बीज का अंकुरण प्रतिशत जांचने के लिए टॉट/पेपर टॉवेल पर 100 दाने रेण्डम तरीके से लेकर चार नमूने बना लें तथा 10 बीज को टॉट/पेपर कतार में जमायें व उसे थोड़ा सा लपेटें, फिर 10 बीज की कतार व्यवस्थित व फिर लपेटें। इस प्रकार दस कतार में 100 बीज रखें व लपेटें ऐसा करने के बाद टॉट/पेपर को ठीक से लपेटकर उस पर पानी छिड़क कर भिगो लें व उसे नमीयुक्त स्थान पर सुरक्षित रखें। अब 5–6 दिन के बाद उसे खोलें तथा स्वस्थ अंकुरित बीज को गिनें यदि 80 प्रतिशत से अधिक बीज अंकुरित होते हैं तो वह बुवाई के लिए उपर्युक्त होंगे।

c) **बर्तन विधि–** इस विधि से अंकुरण प्रतिशत ज्ञात करने के लिए मिट्टी, रेत व छनी हुई गोबर की खाद को बराबर अनुपात में लेकर अच्छी तरह मिला लें। उसे गमला, टोकरी या फूटे मटके आदि में से किसी एक पात्र में 100 बीज समान दूरी पर एवं एक सेमी गहराई पर बोनी करें। इसी तरह 4 नमूने बनाकर बोयें व हल्की सिंचाई करें। अब 5–6 दिनों के बाद अंकुरित बीजों की गिनती करें। यदि 80 प्रतिशत से अधिक बीज अंकुरित हों तो बुवाई हेतु उपयुक्त है।

d) **बालू या रेत विधि–** एक ट्रे में 6 से 9 सेमी गहराई तक छनी हुई बालू या रेत भरें एवं इसको पानी से सिंचित करें यदि अतिरिक्त पानी है तो उसको ट्रे से निकाल दें एवं 100 बीज गिनकर उचित दूरी पर लगाएं। बीजों को सूखी बालू या रेत से ढककर नमयुक्त सुरक्षित ठण्डे स्थान पर रखें। इसी तरह तीन अन्य ट्रे में भी यही प्रक्रिया दोहराएं। सभी ट्रे का 5–6 दिनों बाद अवलोकन करके अंकुरित बीज को गिन लें। यदि अंकुरण 80 प्रतिशत या इससे अधिक हो तो बीज को बुवाई के लिए उपयोग में लायें।

उपरोक्त विधियों में से किसान भाई अपनी सुविधानुसार किसी भी एक विधि से अंकुरण प्रतिशत की जांच कर सकते हैं। जिससे उन्हें बुवाई के लिए अच्छा बीज चयनित करने में दिक्कत नहीं होगी। किसान भाइयों को बीज अंकुरण की जांच करने के कई लाभ हैं जैसे–

1) प्रति हेक्टेयर बीज की मात्रा निर्धारित करना।
2) बीज फसल में प्रति हेक्टेयर वांछित पौध संख्या बनाये रखना।
3) पौध संख्या उचित होने पर पौधों को मृदा से पोषक तत्वों का उचित मात्रा में उपलब्ध होना।
4) फसल में कीटों एवं रोगों को आसानी से नियंत्रित करना।
5) कृषि कार्यों (निंदाई, गुड़ाई आदि) को आसानी से संपन्न करना।
6) आवश्यकता से अधिक बीज का बोनी हेतु उपयोग करने पर अतिरिक्त बीज पर होने वाले खर्च से बचा जा सकेगा जिससे लागत खर्च कम होगा।

यदि किसान भाई इन बिंदुओं पर अपना ध्यान रखें और बुवाई पूर्व बीज का अंकुरण परीक्षण करें तो उन्हें फसल का अच्छा उत्पादन प्राप्त होगा तथा साथ ही लागत में भी कमी आयेगी।

❖❖❖

दुनिया का पहला कृषि यांत्रिकीकरण तंत्र
भारतीय कृषि विकास के लिए

ग्राहक का पहला भरोसा है, स्वराज ट्रैक्टर. क्योंकि इसके दमदार इंजन और 1800 रेटेड RPM से हर काम बने आसान, और ट्रैक्टर बने लंबी रेस का घोड़ा. इतना ही नहीं, इसकी आकर्षक बनावट उत्साह बढ़ाती है. ट्रैक्टर को तन के चलाने के लिए सही मायने में स्वराज अनगिनत खूबियों से सजा एक सम्पूर्ण ट्रैक्टर है.

क्विक रिलीज कपलर

स्टेबिलाइजर्स बार्स

स्टियरिंग लॉक

तेल में डूबे हुए ब्रेक्स

सीधा फ्रंट एक्सल

# पुरी ट्रेडिंग कार्पोरेशन

सर्किट हाउस के पास, सतना, मो.: 7773887111

# पड़त भूमि में 'गरीबों के फल' बेर की बागवानी

**आदित्य कुमार, अमित सिंह तिवारी, संजीव कुमार सिंह एवं शिवांगी तिवारी**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

बेर का वानस्पतिक नाम जिजिफस मौरिशियाना (*Ziziphus mauritiana* L.) है तथा यह रैम्नेसी कुल के अन्तर्गत आता है। इसकी गुणसूत्र संख्या X=12 है तथा इसकी उत्पत्ति स्थान भारत है। इसे गरीबो का मेवा तथा रेगिस्तान फलों का राजा भी कहा जाता है, क्योंकि यह बहुउपयोगी फलदार पौधा है। इसके फल पशुओं के चारे के लिए एवं इनकी लकड़ी जलाने तथा फर्नीचर बनाने के काम आते हैं। बेर का उत्पादन सबसे अधिक मध्य प्रदेश में होता है। इसके फलों को ताजा खाने, चटनी, कैण्डी, मुरब्बा, जैम, शर्बत व सुखाकर छुहारा के रूप मे उपयोग किया जाता है। इसके अलावा बेर के पौधे लाख के कीड़ों को पालने में भी उपयोगी हैं। इसका फल ड्रूप के अन्तर्गत आता है तथा इसके फलों में विटामिन–सी की प्रचुर मात्रा पायी जाती है। फल शीतल, सुपाच्य, दस्तावर, ओजवर्धक पित्त तथा जलन नाशक और वमन रोधी आदि के लिए उपयोगी होता है। इसका फल नान–क्लाइमेटिक के अन्तर्गत आता है। इसके खाने वाले भाग को पेरिकार्प कहते हैं।

## जलवायु व भूमिः

बेर गर्म व शुष्क जलवायु का पौधा है। इसके पौधे अधिक गर्म व विपरीत स्थिति सहन करने में सक्षम हैं। परन्तु अधिक आद्रता हानिकारक होती है। बेर की बागवानी समुद्रतल से 1000 मी. तक की ऊचाई तक सफलता पूर्वक की जा सकती है। फल देने के पश्चात इसके पौधें गर्मी व लू के कारण सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं। इसकी खेती किसी भी प्रकार की भूमि में आसानी से हो सकती है। इसके लिए बलुई दोमट, हल्की क्षारीय मिट्टी सर्वोत्तम होती है। इसकी जड़ें भूमि में अधिक गहराई से पोषक तत्वों को अवशोषित करने में सक्षम होती हैं।

## किस्मेंः

शुष्क क्षेत्रों के लिए गोला व कैथाली तथा अधिक वर्षा एवं सिंचित क्षेत्र के लिए उमरान किस्म अच्छी मानी जाती हैं।

1. **गोला–** यह एक अगेती किस्म है। इसका फल गोल आकार के 3.8 सेमी. X 3.5 सेमी. तथा 25 ग्राम भार के होते हैं। इसका रंग चमकीला होता है। यह जनवरी के महीने में पकना शुरू हो जाता है। इसकी उपज 85 किग्रा. / पौधा है।
2. **सेब–** यह एक मध्यम प्रकार की किस्म है। यह जनवरी के अंतिम सप्ताह में पकती है। इसका परागणकर्ता के रूप में प्रयोग करते हैं। फल का भार 15–20 ग्राम तथा उपज 90–100 किग्रा. / पौधा है।
3. **उमरान–** यह एक पछेती किस्म है जो कि फरवरी के अंतिम तथा मार्च के प्रथम सप्ताह मे पकती है। फल बडे आकार के लगभग 40 ग्राम व अण्डाकार, रंग पीला, जो कि पकने के बाद चाकलेटी भूरा हो जाता है। इसकी औसतन उपज 250 किग्रा / पौधा है।
4. **बनारसी–** यह उत्तर प्रदेश मे उगायी जाने वाली प्रमुख किस्म है। इसमें कुल घुलनशील पदार्थ 14 प्रतिशत तक पाये जाते हैं। फल अण्डाकार या गोलाकार होते हैं तथा इसका रंग हरा व पकने के बाद पीला होता है। इसकी उपज औसतन 1.5 कुन्तल प्रति पौधा होता है।
5. **कैथाली–** यह हरियाणा की लोकप्रिय किस्म है। इसका फल अण्डाकार होता है। फल मार्च–अप्रैल में आता है। इसके फल का औसतन भार 20 ग्राम होता है। इसकी औसतन उपज 135 किग्रा. प्रति वृक्ष होती है।
6. **जोगिया–** यह एक पछेती किस्म है। इसका फल यातायात के लिए उपयुक्त होता है।

अन्य किस्में– सफेदा, नरमा, कंदन, नारिकेली आदि हैं।

## प्रवर्धनः

बेर में व्यवसायिक रूप से प्रवर्धन छल्ला कलिकायन और शील्ड कलिकायन द्वारा किया जाता है। बेर में छल्ला कलिकायन के लिए जून का महीना अच्छा माना जाता है और शील्ड कलिकायन द्वारा प्रर्वधन जुलाई–अगस्त में करते हैं।

## पौध रोपणः

मई–जून के महीने में 1x1x1 मी. के आकार के गड्ढे तैयार करते हैं तथा इन गड्ढों में 15–20 किलो गोबर की खाद, 50 ग्राम क्यूनॉलफास चूर्ण 1.5 प्रतिशत खोदी गई मिट्टी में मिलाते हैं। पौधों को शाम के समय गड्ढों के बीच में लगाकर तत्काल पानी देना चाहिए। पौधों को लगाते समय कलिकायन वाले भाग को भूमि में 5–10 सेमी. ऊपर लगाना चाहिए। बेर में पौधों को 8 X 8 मी. के अन्तर पर रोपण करना चाहिए। विशेषतया बेर की बागवानी मे कम से कम दो किस्मों को एक साथ लगाना चाहिए।

Mahindra
Rise.

# हमारे सफर की शुरूआत वर्ष 1945 में हुई,

30 लाख
संतुष्ट ग्राहकों का भरोसा

विश्व की
**नंबर 1**
ट्रैक्टर कंपनी

- विश्व का सबसे ज्यादा बिकने वाला ट्रैक्टर
- भारत का 36 सालो से लगातार सबसे ज्यादा बिकने वाला ट्रैक्टर
- मध्यप्रदेश का सबसे ज्यादा बिकने वाला ट्रैक्टर

भारत में तीन दशकों से अधिक, ट्रेक्टर की **नंबर 1** कंपनी, विश्व प्रसार में अग्रसर।

- आस्ट्रेलिया : 1 एसेम्बली प्लांट
- चीन : 2 विनिर्माण प्लांट
- अमेरिका : 3 एसेम्बली प्लांट
- भारत : 6 विनिर्माण कंपनिया

डेमिंग पुरस्कार | जापान गुणवत्ता पदक

डेमिंग पुरस्कार और जापान गुणवत्ता पदक प्राप्त करने वाली महिंद्रा दुनिया की एकमात्र ट्रैक्टर कंपनी

**स्वरूप ट्रैक्टर एजेन्सी, सतना, मो.: 9009799282**

**खाद व उर्वरकः**

| वर्ष | गोबर की खाद (किग्रा.) | नत्रजन (ग्राम) | स्फुर (ग्राम) | पोटाश (ग्राम) |
|---|---|---|---|---|
| 1. | 10 | 50 | 50 | 25 |
| 2. | 20 | 100 | 75 | 50 |
| 3. | 30 | 150 | 100 | 75 |
| 4. | 40 | 200 | 125 | 100 |
| 5 व अधिक | 50 | 250 | 150 | 125 |

खाद तथा पोटाश व फास्फोरस की पूरी मात्रा एवं नत्रजन की आधी मात्रा जुलाई–अगस्त में तथा नत्रजन की बची मात्रा अक्टूबर–नवम्बर माह में देते हैं तथा सिंचाई कर देते हैं।

**सिंचाईः** पौध रोपण के आरंभिक वर्षों में हर माह में एक बार पानी देना जरूरी होता है। इसके बाद नये प्ररोहों के निकलते समय, फूल के आने का समय तथा फलों की वृद्धि के समय सिंचाई जरूरी होती है। सिंचाई की कमी होने से फल कच्ची अवस्था मे गिर जाते हैं।

**कृन्तनः** बेर में फल मुख्य रूप से उसी वर्ष पैदा हुई शाखाओं पर पत्तियों के कक्ष में लगते हैं। फल निकलने के बाद जब फलियाँ झड़ जायें तब छटनी करना आवश्यक होता है। मई–जून के महीने में पुरानी शाखाओं को काटते हैं। प्रारम्भ के वर्षों में 4–5 प्राथमिक मुख्य शाखाएं भूमि से एक मीटर ऊपर रखते हैं। बेर में हर वर्ष कृन्तन करना आवश्यक होता है।

**फलनः** उत्तरी भारत के क्षेत्रों में बेर में फूल अक्टूबर–नवम्बर माह में आते हैं। बेर की बागवानी में रोपण के 2–3 वर्ष फल देना शुरू कर देता है। फल बढ़ाने और अपरिपक्व फलों को झड़ने से रोकने के लिए जिबरेलिक अम्ल का छिड़काव अक्टूबर–दिसम्बर में करते हैं।

**उपजः** असिंचित अवस्था में बेर की उपज औसतन 60–80 किग्रा. प्रति पेड़ परन्तु सिंचित क्षेत्रों में 10–20 वर्ष की आयु में 150–200 किग्रा. प्रति पेड़ होती है।

**भण्डारणः** बेर के उचित पके फलों को 30–35 डिग्री से. तापक्रम पर एक सप्ताह तक तथा शीतगृह मे 2–3 डिग्री से. पर 2–3 सप्ताह तक भण्डारण किया जा सकता है।

**कीटः**

1. **फल मक्खी–** इस कीट का प्रकोप सितंबर में फल लगने के साथ ही शुरू हो जाता है। मादा कीट फल को छेद कर उसमें अण्डे देती है। इसके आक्रमण से गुठली के चारों ओर एक खाली स्थान बन जाता है तथा पूर्ण अवस्था के बाद फल से निकलकर जमीन मे चले जाते हैं। इसके रोकथाम के लिए जब फल मटर के आकर के हों उस समय मोनोक्रोटोफॉस 36 एस. एल. 1 मिली. की दर से या मैलाथियान 50 ई.सी. 1.5 मिली. प्रति लीटर के हिसाब से दो छिड़काव 15–25 दिन के अन्तराल पर करते हैं।
2. **छाल भक्षक कीट–** यह कीट पेड़ों की छाल खाता है तथा छिपने के लिए डाली के अन्दर सुरंग बनाता है। इसके नियंत्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस 36 एस. एल. 1 मिली. प्रति ली. पानी में घोल बनाकर सितम्बर–अक्टूबर के महीने में छिड़काव कर दें।
3- **चेफर बीटल–** यह भूरे रंग का कीट होता है तथा वर्षा ऋतु में सक्रिय होता है जो पेड़ों की फलियों को खाता है। इसके रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 36 एस. एल. 1 मिली. प्रति ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करते हैं।

**रोगः**

1. **चूर्णी फंफूद–** यह रोग ओइडियम स्पीसीज फंफूद के द्वारा होता है। इसके प्रभाव से बेर की टहनियां, पत्तियां और फल सफेद कवक से ढँक जाते हैं। इसका प्रकोप अक्टूबर–नवम्बर के माह से शुरू होता है। इसके रोकथाम के लिए कैराथिन 0.05 प्रतिशत का छिड़काव करें।
2. **कंजली फंफूद–** इस रोग का प्रभाव पत्तियों की निचली सतह पर कहीं–कहीं पर काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। इसके बाद धीरे–धीरे पूरे फलों पर फैल जाती है। इसके रोकथाम के लिए मैन्कोजेब 2 ग्राम प्रति ली. पानी में घोल बनाकर पेड़ों पर 15 दिन के अंतराल पर दो बार करें।
3. **झुलसा रोगः–** यह रोग अल्टरनेरिया स्पीसीज द्वारा फैलता है। इसके प्रकोप से पत्तियां सूख कर गिरने लगती हैं। इसके रोकथाम के लिए मैन्कोजेब 3 ग्राम प्रति ली. पानी मे घोल बनाकर दो से तीन छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करें।

❖❖❖

# हरी खाद एक वरदान

**अतुल कुमार सिंह**
**मृदा विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

**परिचयः**

कृषि में हरी खाद उस सहायक फसल को कहते हैं, जिसकी खेती मुख्यतः भूमि में पोषक तत्वों को बढ़ाने तथा उसमें जैविक पदार्थों की पूर्ति करने के उद्देश्य से की जाती है। प्रायः इस तरह की फसल को इसकी हरी स्थिति में ही हल चलाकर मिट्टी में मिला दिया जाता है। हरी खाद से भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है और भूमि की रक्षा होती है।

मृदा के लगातार दोहन से उसमें उपस्थित पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक तत्व नष्ट होते जा रहे हैं। इनकी क्षतिपूर्ति हेतु एवं मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के लिए हरी खाद एक उत्तम विकल्प है। बिना सड़े–गले हरे पौधे (दहलनी एवं अन्य फसलें तथा उनके भाग) को जब मृदा की नत्रजन या जीवांश की मात्रा बढ़ाने के लिए खेत में दबाया जाता है तो इस क्रिया को हरी खाद देना कहते हैं।

हरी खाद के उपयोग से न सिर्फ नत्रजन भूमि में उपलब्ध होता है साथ–साथ मृदा की भौतिक, रसायनिक एवं जैविक दशा में भी सुधार होता है। वातावरण तथा भूमि प्रदूषण की समस्या को भी दूर किया जा सकता है। इसकी लागत कम होने से किसानों की आर्थिक स्थिति बेहतर होती है। भूमि में सूक्ष्म तत्वों की आपूर्ति होती है तथा साथ ही मृदा की उर्वरक शक्ति में भी वृद्धि होती है।

**हरी खाद के लाभः**

1. हरी खाद केवल नत्रजन एंव कार्बनिक पदार्थों का ही साधन नहीं है, बल्कि मिट्टी में कई अन्य आवश्यक पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।
2. हरी खाद के प्रयोग से मृदा में वायु संचार, जल धारण क्षमता में वृद्धि, अम्लीयता/क्षारीयता में सुधार एवं मृदाक्षरण को रोकने में भी सहायक होती है।
3. हरी खाद के प्रयोग से मृदा में सूक्ष्म जीवों की संख्या एवं क्रियाशीलता बढ़ती है तथा मृदा की उर्वरा शक्ति तथा उत्पादन क्षमता भी बढ़ती है।
4. हरी खाद के प्रयोग से मृदाजनित रोगों में भी कमी आती है।
5. अधोसतह में सुधार।
6. मृदा सतह का संरक्षण।
7. खरपतवार नियंत्रण।
8. मृदा संरक्षण में सुधार।
9. फसलों के उत्पादन में वृद्धि।

**हरी खाद के व्यावहारिक प्रयोगः**

- उन क्षेत्रों में जहां नत्रजन तत्व की काफी कमी हो।
- जिन क्षेत्रों की मिट्टी में नमी की कमी कम हो।
- हरी खाद का प्रयोग कम वर्षा वाले क्षेत्रों में न करें। इन क्षेत्रों में नमी का संरक्षण मुख्य फसल के लिए अत्यंत आवश्यक है।
- ये वे फसलें होनी चाहिए जो जल्दी ही जमीन की सतह को ढँक लें।

**हरी खाद वाली मुख्य फसलेंः**

हरी खाद के लिए दलहनी फसलों में सनई, ढेंचा, लोबिया, उड़द, मूंग, ग्वार इत्यादि फसलों का उपयोग किया जाता है। इन फसलों की वृद्धि अतिशीघ्र तथा कम समय में हो जाती है। पत्तियां बड़ी वजनदार एवं बहुत संख्या में रहती हैं। इनको उर्वरक एवं जल की आवश्यकता होती है। जिससे कम लागत में अधिक कार्बनिक पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है। दलहनी फसलों की जड़ों में नत्रजन को वातावरण से मृदा में स्थिति करने वाले जीवाणु पाये जाते हैं।

- अधिक वर्षा वाले स्थानों में जहां जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सनई का उपयोग करें।
- ढेंचा को सूखे की दशा वाले स्थानों में तथा समस्याग्रस्त भूमि में जैसे क्षारीय दशा में उपयोग करें।
- ग्वार को कम वर्षा वाले स्थानों में तथा कम उपजाऊ भूमि में लगायें।
- लोबिया को अच्छे जल निकास वाली क्षारीय मृदा में लगायें।
- मूंग व उड़द का खरीफ या ग्रीष्म काल में ऐसी भूमि में लें जहां जल भराव न हो। इससे इनकी फलियों की अच्छी उपज प्राप्त हो जाती है तथा शेष पौधा हरी खाद के रूप में उपयोग मे लाया जा सकता है।

**हरी खाद की फसलों की उत्पादन क्षमताः**

विभिन्न हरी खाद वाली फसलों की उत्पादन क्षमता निम्न सारणी में दी गई है:

| फसल का नाम | हरे पदार्थ की मात्रा (टन/हे0) | नाइट्रोजन का प्रतिशत | प्राप्त नाइट्रोजन (टन/हे0) |
|---|---|---|---|
| सनई | 20–30 | 0.43 | 86–129 |
| ढेंचा | 20–25 | 0.42 | 84–105 |
| उर्द | 10–12 | 0.41 | 41–49 |
| मूंग | 8–10 | 0.48 | 38–48 |
| ग्वार | 20–25 | 0.34 | 68–85 |
| लोबिया | 15–18 | 0.49 | 74–88 |

- हरी खाद के लिए सर्वोत्तम फसल सनई एवं ढेंचा है। जबकि सनई सबसे उपयुक्त है।
- जलाकृत एवं क्षारीय मृदा में ढेंचा का उपयोग हरी खाद हेतु करना चाहिए।
- इन फसलों के अलावा कुछ अन्य धान्य फसलें भी लगाई जाती हैं,

जैसे– ज्वार, जौ, जई आदि।

**हरी खाद की फसल के लिए आवश्यक गुणः**

1. फसल कम समय में अधिक वृद्धि करती हो।
2. फसल की जड़ें अधिक गहराई तक पहुंचती हों।
3. फसल की वानस्पतिक वृद्धि, शाखाएं व पत्तियाँ हों।
4. फसल के वानस्पतिक भाग मुलायम हों।
5. फसल की जल मांग कम हो।
6. पोषक तत्वों संबंधी मांग कम हो।
7. कीट पतंगों के आक्रमण को सहन करने वाली हो।
8. मृदा पर अच्छा प्रभाव छोड़ती हो।
9. फसल विभिन्न प्रकार की मृदा में पैदा होने में समर्थ हो।
10. फसल के बीज सस्ती दरों पर उपलब्ध हों।
11. फसल कटाई के बाद शीध्र वृद्धि करती हो।
12. फसल कई उद्देश्यों की पूर्ति करती हो जैसे चारा, रेशा, हरी खाद तथा फसल की बीज उत्पादन क्षमता अधिक हो।
13. फसल जलवायु की विभिन्न परिस्थितियों जैसे– अधिक ताप, कम ताप, कम या अधिक वर्षा सहन करने वाली हो।

**हरी खाद देने की विधियांः**

**1. हरी खाद की स्थानित विधि–** इस विधि में हरी खाद की फसल को उसी खेत में उगाया जाता है, जिसमें हरी खाद की फसल का उपयोग करना होता है। यह विधि समुचित वर्षा अथवा सुनिश्चित सिंचाई वाले क्षेत्रों में अपनाई जाती है। इस विधि मे फूल आने से पूर्व वानस्पतिक वृद्धि काल (45–60 दिन) में मिट्टी पलट दी जाती है। मिश्रित रूप से बोई गई हरी खाद की फसल को उपयुक्त समय जुताई द्वारा खेत में दबा दिया जाता है।

**2. हरी पत्तियों की हरी खाद–** इस विधि में हरी खाद की फसल को जिस स्थान में उगाया जाता है, उसे उस स्थान में न मिलाकर किसी अन्य स्थान में मिलाकर हरी खाद दी जाती है। इसमें फसलों की पत्तियों एवं कोमल शाखाओं को तोड़कर खेत में फैलाकर जुताई द्वारा मृदा में दबाया जाता है।

**हरी खाद की फसलों के बुवाई का समय व बीजदरः**

| फसल | बुवाई का समय | बीजदर (बीजदर कि.ग्रा.) |
|---|---|---|
| **खरीफ फसलों हेतु** | | |
| सनई | अप्रैल–जुलाई | 80–100 कि.ग्रा. |
| ढेंचा | अप्रैल–जुलाई | 80–100 कि.ग्रा. |
| लोबिया | अप्रैल–जुलाई | 45–55 कि.ग्रा. |
| उड़द | जून–जुलाई | 20–22 कि.ग्रा. |
| मूंग | जून–जुलाई | 20–22 कि.ग्रा. |
| ज्वार | अप्रैल–जुलाई | 30–40 कि.ग्रा. |
| **रबी फसलों हेतु** | | |
| सैंजी | अक्टूबर–सितंबर | 25–30 कि.ग्रा. |
| बरसीम | अक्टूबर–सितंबर | 20–30 कि.ग्रा. |
| मटर | अक्टूबर–सितंबर | 80–100 कि.ग्रा. |

**हरी खाद एक वरदानः**

मृदा उर्वरकता एवं उत्पादकता बढ़ाने का प्रयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है। सघन कृषि पद्धति के विकास तथा नगदी फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल बढ़ने के कारण हरी खाद के प्रयोग में निश्चित कमी आई है, लेकिन बढ़ते ऊर्जा संकट, उर्वरकों के मूल्यों में वृद्धि तथा गोबर की खाद तथा अन्य कम्पोस्ट जैसे– कार्बनिक स्रोतों की सीमित आपूर्ति से आज हरी खाद का महत्व और बढ़ गया है।

❖❖❖

Kubota

Japanese Technology For Indian Farming

NeoStar - 24HP

Super-draft Control (SDC)

Power Steering

4WD 4 Wheel Drive

# कृष्णा एजेन्सी

रीवा रोड, सतना, मो.: 9522282381

# टमाटर के प्रमुख कीट, रोग एवं उनका नियंत्रण

**अखिलेश जागरे, राजेन्द्र सिंह नेगी, हिमांशु सिंह एवं अनुभव बागरी**
**दीनदयाल शोध संस्थान कृषि विज्ञान केंद्र, मझगवां, सतना**

टमाटर की खेती हमारे देश में लगभग पूरे साल की जाती है। उद्यानिकी फसलों में आलू व प्याज के बाद टमाटर सर्वाधिक महत्वपूर्ण सब्जी है। टमाटर में कार्बोहाइड्रेट, लौह, कैल्शियम तथा अन्य खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। टमाटर में विटामिन ए एवं सी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। टमाटर में लाइकोपिन नामक वर्णक पाया जाता है, जिससे इसके फलों का रंग लाल होता है। यह वर्णक एक महत्वपूर्ण एन्टी आक्सीडेन्ट है, जो कि कैंसर का रोग प्रतिरोधी कारक है। टमाटर को सब्जी एवं सलाद के अलावा परिरक्षण करके चटनी, अचार, सॉस, केचप आदि बनाने के काम में लिया जाता है। चूँकि टमाटर की खेती साल भर की जाती है अतः इसमें अनेक प्रकार के कीटों एवं रोगों का आक्रमण होता है, जिससे फसल को भारी क्षति होती है। अतः फसल संरक्षण अति आवश्यक है। टमाटर के प्रमुख कीट, रोग एवं उनके प्रबन्धन की जानकारी निम्नानुसार हैः

## प्रमुख कीट एवं उनका नियंत्रणः

**1. फल भेदक इल्ली–** इल्ली टमाटर के कच्चे फलों में छेद करके अन्दर घुस जाती हैं तथा अन्दर ही अन्दर फल के गूदे को खाती हैं। इल्ली के शरीर का आधा हिस्सा (अगला) छेद के अन्दर रहता है तथा आधा हिस्सा (पिछला) बाहर रहता है। जिस फल में सुराख हो जाता है वह फल पूर्ण रूप से सड़ जाता है। इस कीट के प्रकोप से 50–60 प्रतिशत तक क्षति हो जाती है।

**नियंत्रण–** गेंदा की फसल को जाल फसल के रूप में लगाने से इस कीट का प्रभावी नियंत्रण होता है। अतः रोपाई करते समय 14 लाईन टमाटर लगाने के बाद एक लाइन गेंदा की रोपाई करनी चाहिए। गेंदा की नर्सरी टमाटर की नर्सरी से 15 दिन पहले डाल देनी चाहिए। फेरोमोन ट्रैप @12 प्रति हेक्टेयर की दर से गेंदे में फूल आते समय लगाना चाहिए।

आवश्यकतानुसार किसी भी कीटनाशक जैसे– इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 एस.जी. 10 ग्राम या इन्डोक्साकार्ब 14.5 एस.सी. @15 मिली/टंकी की दर से 2–3 छिड़काव करके भी इसको नियंत्रित किया जा सकता है।

**2. लीफ माइनर–** कभी–कभी यह कीट बहुत नुकसान पहुँचाता है। इस कीट के आक्रमण से पौधों की पुरानी पत्तियों पर सफेद धारियॉ बन जाती हैं, जिससे पौधों की पत्तियॉ क्लोरोफिल रहित हो जाती हैं अतः पौधा भोजन नही बना पाता है। इस कारण उपज में गिरावट आ जाती है।

**नियंत्रण–** इमिडाक्लोप्रिड दवा @10 मिली या थायमेथोक्जाम 25 (डब्ल्यू.जी.) @10 ग्राम/टंकी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

**3. सफेद मक्खी–** टमाटर की फसल का यह प्रमुख कीट है। यह सफेद रंग की एवं आकार में बहुत छोटी होती हैं। इस कीट का पूरा शरीर सफेद मोम से ढका रहता है। इस कीट के प्रौढ़ एवं शिशु दोनों पत्तियों से रस चूसते हैं, जिससे पत्तियाँ सामान्य से कुछ मोटी, मुड़ी हुई एवं हल्के हरे रंग की हो जाती हैं। इसके बाद पौधों में फूल व फल नहीं लगते हैं। यह कीट टमाटर में लीफ कर्ल रोग का वाहक भी है।

**नियंत्रण–** बीज को बोने से पहले इमिडाक्लोप्रिड 600 (एफ.एस.) @5 मिली/किग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए। आवश्यकतानुसार कीटनाशक जैसे– इमिडाक्लोप्रिड 17.8 (एस.एल.) @10 मिली या एसीटामिप्रिड 20 (एस.पी.) @8 ग्राम/टंकी की दर से 10–12 दिन के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करना चाहिए। एक ही दवा का दोबारा छिड़काव नहीं करना चाहिए।

**4. थ्रिप्स–** इस कीट के प्रौढ़ चमकीले रंग के तथा अत्यंत छोटे होते हैं। जिन्हे हम अपनी नंगी आखों से नही देख पाते हैं। ये झुण्ड में नम पत्तियों पर चिपके रहते हैं एवं उनका रस चूस लेते हैं, जिससे पत्तियों पर धब्बे पड़ जाते हैं एवं पत्तियॉ अन्दर की तरफ मुड़ जाती हैं तथा कुछ समय बाद पूरा पौधा मुरझा कर सूख जाता है। यह कीट टमाटर में स्पोटेड विल्ट रोग का वाहक है।

**नियंत्रण–** इमिडाक्लोप्रिड 600 (एफ.एस.) @5 मिली/किग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करके बुवाई करनी चाहिए। इमिडाक्लोप्रिड 17.8 (एस.एल.) 10 मिली या थायमेथोक्जाम 25 (डब्ल्यू.जी.) @10 ग्राम/टंकी की दर से 10–12 दिन के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करना चाहिए।

## प्रमुख रोग एवं उनका नियंत्रणः

**1. डैम्पिग आफ (पद गलन)–** यह रोपणी में लगने वाला एक प्रमुख रोग है। यह भूमिजनित रोग है। यह रोग टमाटर के अलावा मिर्च, गोभी, बैंगन आदि फसलों में भी लगता है। यह रोग पिथियम, फाइटोफ्थोरा एवं राइजोक्टोनिया नाम फफूदों के मिले–जुले संक्रमण से होता है। सर्वाधिक संक्रमण पिथियम नामक फफूंद से होता है। इस रोग के लक्षण पौधों पर दो रूप में दिखाई देते हैं। एक बीज अंकुरित होकर भूमि की सतह से निकलने के पूर्व ही मर जाता है तथा दूसरा अंकुरण के बाद पौधे का वह भाग जो जमीन की सतह से लगा होता है, वहाँ से पौधा लुढक कर नष्ट हो जाता है।

**नियंत्रण–** नर्सरी का स्थान हर वर्ष बदल दें। नर्सरी स्थल को या तो सौर ऊर्जा से या फार्मेलिन 225 मिली/टंकी की दर से उपचारित करें। गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें। बीज को कार्बेन्डाजिम + मैन्कोजेब (साफ) दवा से 2 ग्राम या ट्राईकोडर्मा विरडी 5 ग्राम/किग्रा बीज की दर से उपचारित करें । यदि नर्सरी में रोग का लक्षण दिखाई दे तो नमी यथा संभव कम करें तथा मोक्सीमेट 72 (डब्ल्यू.पी.) @ 40 ग्राम या सेक्टिन 60 (डब्ल्यू.जी.) @ 40 ग्राम/टंकी की दर से 10–12 दिन के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करें ।

**2. बक आई राट–** यह रोग सामान्यतः कच्चे एवं हरे फल पर दिखाई देता है। यह रोग फाइटोफ्थोरा पैरासिटिका नामक फफूंद से होता है।

प्रो. राकेश पटेल

# सदगुरु ट्रैक्टर्स

लाल गुलाब टावर, यूनियन बैंक के बगल में, सतना

मो.: 9425167998

जो फल जमीन पर नमी के सीधे संपर्क में रहते हैं उन फलों पर इस रोग का आक्रमण होता है। प्रभावित फलों पर हल्के भूरे या काले रंग के गोलाकार धब्बे दिखाई देते हैं। कुछ समय बाद रोगग्रस्त फल जमीन पर गिरकर सड़ जाते हैं।

**नियंत्रण–** पौधों को लकड़ी एवं तार की मदद से सीधा खड़ा करें एवं जमीन की सतह से 20–25 सेमी. ऊपर तक की पत्तियों को तोड़ देना चाहिए।

खेत में रोग का लक्षण दिखाई देते ही मोक्सीमेट 72 (डब्ल्यू. पी.) 45 ग्राम या प्रोपिनेब 70 (डब्ल्यू.पी.) @45 ग्राम/टंकी की दर से 2–3 छिड़काव करें।

**3. अगेती अंगमारी–** टमाटर की फसल का यह प्रमुख रोग है। यह रोग आल्टरनेरिया सोलेनाई नामक फफूंद से होता है। इस रोग के लक्षण निचली पत्तियों पर दिखाई देते हैं। इस रोग में पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के गोलाकार धब्बे बनते हैं। इन धब्बों के चारों ओर पीलापन होता है। नम वातावरण में ये धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों को झुलसा देते हैं।

**नियंत्रण–** नेटीवो 75 (टेबुकोनाजोल 50 प्रतिशत + ट्राईफ्लोक्सीस्ट्रोबीन 25 प्रतिशत) डब्ल्यू.जी.@15 ग्राम या ताकत 75 (डब्ल्यू.पी.) @ 30 ग्राम/टंकी की दर से 10–15 दिन के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करें।

**4. पछेती अंगमारी–** टमाटर के अलावा यह रोग आलू की फसल पर भी लगता है। तापमान 10–20 डिग्री से. हो, बादल छाये हों, हल्की एवं रुक–रुक कर बारिश हो रही हो तो यह रोग बहुत तेजी से फैलता है। रोग का आक्रमण निचली पत्तियों से शुरु होता है। रोग के प्रारम्भिक अवस्था में पत्तियों पर गहरे भूरे या काले रंग के धब्बे बनते हैं। इन धब्बों के ठीक नीचे पत्तियों की निचली सतह पर फफूँद की सफेद बढ़वार दिखाई देती है। रोग का अधिक प्रकोप होने पर ये धब्बे पर्णवृन्त एवं तनों पर फैल जाते हैं एवं नम मौसम में पूरा पौधा मुरझा कर सूख जाता है।

**नियंत्रण–** मोक्सीमेट 72 (डब्ल्यू.पी.) @45 ग्राम या सेक्टिन 60 (डब्ल्यू. जी.) @45 ग्राम/टंकी की दर से 10–15 दिन के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करें।

**5. जीवाणु जनित उकठा रोग–** यह एक भूमि जनित रोग है जो टमाटर उगाने वाले सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। यह रोग राल्सटोनिया सोलेनेसियेरम नामक जीवाणु से होता है। एक ही खेत में लगातार टमाटर, बैंगन, आलू आदि उगाने से इस रोग का प्रकोप ज्यादा होता है। जब फसल पूर्ण विकसित होकर उत्पादन देने की स्थिति में होती है तभी पौधे नीचे की तरफ झुककर अचानक मुरझा जाते हैं और अंत में पूरा पौधा नष्ट हो जाता है।

**नियंत्रण–** धान्य एव तिलहनी फसलों के साथ उचित फसल चक्र अपनायें। रोपणी से पूर्व पौधों की जड़ों को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन @2 ग्राम/10 ली. पानी के घोल में 10–15 मिनट तक डुबोकर एवं आधे घण्टे तक छाया में सुखाकर मुख्य खेत में रोपाई करें।

खेत में रोग के लक्षण दिखाई देते ही स्ट्रेप्टोसाइक्लिन @3 ग्राम/टंकी की दर से छिड़काव करना चाहिए तथा पुनः 7–8 दिन बाद कापर आक्सीक्लोराइड 50 (डब्ल्यू.पी.) @45 ग्राम/टंकी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

❖❖❖

# किसानों के लिए वरदान है ''अजोला'' की खेती

**सात्विक सहाय बिसारिया एवं आशुतोष गुप्ता**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

कृषि उत्पादन की कीमत में अनिश्चितता और कृषि आदानों की तेजी से बढ़ती लागत तथा भूजल स्तर में गिरावट के कारण कृषि लागत बढ़ गयी है। यही कारण है कि पिछले कुछ वर्षों में खेती के प्रति आकर्षण कम हो रहा है। इस समस्या के समाधान के लिए अजोला की खेती बहुत लाभकारी सिद्ध हो सकती है। अजोला एक महत्वपूर्ण बहुगणी फर्न है जिसका उपयोग पशुओं, मछली एवं कुक्कट के चारे के रूप में उपयोग किया जाता है और इसकी लागत भी बहुत कम (एक रूपए से भी कम) होती है। अजोला तेजी से बढ़ने वाला एक प्रकार का जलीय फर्न है, जो पानी की सतह पर छोटे–छोटे समूह में सघन हरित गुच्छे की तरह तैरती रहती है। भारत में मुख्य रूप से अजोला की जाति अजोला पिन्नाटा पायी जाती है। यह गर्मी सहन करने वाली किस्म है।

अजोला की पंखुड़ियों में एनाबिना नामक नील हरित काई की जाति का एक सूक्ष्म जीव होता है जो सूर्य के प्रकाश में वायुमंडल की नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करता है और हरे खाद की तरह फसल को नाइट्रोजन की पूर्ति करता है। अजोला की एक विशेषता यह है कि अनुकूल वातावरण में 5 दिनों में ही दोगुना हो जाता है। यदि इसे पुरे वर्ष बढ़ने दिया जाये तो 300 टन से भी अधिक पदार्थ प्रति हेक्टेयर पैदा किया जा सकता है यानी 40 क्विंटल नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है। अजोला में 3.5 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा कई तरह के कार्बोनिक पदार्थ होते हैं, जो उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं। अजोला किसानों को कम कीमत पर बेहतर खाद मुहैया कराने कि दिशा में यह बड़ा कदम है। दुधारू पशुओं को अजोला देने से दूध का उत्पादन एवं गुणवत्ता बढ़ती है। अजोला दुधारू पशुओं के लिए घी का काम करता है। जिससे यह किसानों के जीविकोपार्जन के लिए वरदान साबित हो रहा है।

### अजोला जैविक हरी खादः

धान के खेतों में इसका उपयोग सुगमता से किया जा सकता है। 2 से 4 इंच पानी से भरे खेत में 10 टन ताजा अजोला को रोपाई के पूर्व डाल दिया जाता है। इसके साथ ही इसके ऊपर 30 से 40 किलोग्राम सुपर फॉस्फेट का छिड़काव भी कर दिया जाता है। इसकी वृद्धि के किये 30 से 35 डिग्री सेल्सियस तापमान अत्यंत अनुकूल होता है। धान के खेत में अजोला छोटे– मोटे खरपतवार जैसे चारा और निटेला को भी दबा देता है तथा इसके उपयोग से धान की फसल में 5 से 15 प्रतिशत उत्पादन वृद्धि संभावित रहती है। अजोला वायुमंडल में कार्बन डाई ऑक्साइड और नाइट्रोजन को क्रमशः कार्बोहाइड्रेट एवं अमोनिया में बदल सकता है और अपघटन क बाद, फसल को नाइट्रोजन उपलब्ध करवाता है तथा मिट्टी में जैविक कार्बन सामग्री उपलब्ध करवाता है। प्रकाश संश्लेषण में उत्पन ऑक्सीजन फसल की जड़ प्रणाली और मिट्टी में उपलब्ध अन्य सूक्ष्म जीवों को श्वसन में मदद करता है। यह धान के सिंचित खेतों से वाष्पीकरण दर को कम करता है। अजोला एक सीमा तक रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरक के विकल्प को कम कर सकता है और यह की उपज और गुणवत्ता को भी बढ़ाता है। अजोला क्यारियों से हटाए गए पानी को सब्जियों की खेती में काम में लेने से यह एक वृद्धि नियामक के कार्य करता है। जिससे सब्जियों एवं फलों के उत्पादन में वृद्धि होती है। अजोला एक उत्तम उर्वरक एवं हरी खाद के रूप में कार्य करता है।

### पशु चाराः

अजोला सस्ता एवं पौष्टिक पूरक पशु आहार है। इसे खिलाने से वसा व वसा रहित पदार्थ सामान्य आहार खाने वाले पशुओं के दूध में अधिक पाई जाती है। यह पशुओं में बाँझपन निवारण में उपयोगी पाया गया है। पशुओं के पेशाब में खून की समस्या फॉस्फोरस की कमी से होती है। पशुओं को अजोला खिलाने से यह कमी दूर हो जाती है। अजोला से पशुओं में कैल्सियम से विकास अच्छा होता है। अजोला में प्रोटीन आवश्यक अमीनो एसिड, विटामिन तथा बीटा–कैरोटीन एवं खनिज लवण जैसे कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटैशियम, आयरन, कॉपर, मैग्नीशियम आदि उचित मात्रा में पाए जाते हैं। प्रति पशु 1.5 किलो अजोला नियमित रूप से दिया जा सकता है, जो पूरक पशु आहार का काम करता है। यदि दुधारू पशु को 1.5 से 2 किलो अजोला प्रतिदिन दिया जाता है तो दूध उत्पादन में 15 से 20 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी है। इसे खाने वाले गाय व भैस के दूध की गुणवत्ता भी पहले से बेहतर हो जाती है। अजोला की वजह से हर गाय–भैंस के दूध में गाढ़ापन बढ़ जाता है।

### दूध उत्पादन में उपयोगी अजोलाः

दूध उत्पादन में अजोला काफी उपयोगी है। इससे दूध में वसा की मात्रा बढ़ती है। अजोला के चलते दूध का उत्पादन बीस फीसदी तक बढ़ाया जा सकता है। संकर नस्लीय गायों में अजोला की सहायता से खर्च भी कम होता है साथ ही दूध का उत्पादन भी 35 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। इसे राशन के साथ समान अनुपात में मिलाकर पशु को खिलाया जा सकता है। इस प्रकार महंगे राशन से खर्च कम किया जा सकता है।

### अजोला कुक्कट आहारः

कुक्कट आहार के रूप में अजोला का प्रयोग करने से ब्रायलर पक्षियों के भार में वृद्धि तथा उत्पादन में भी वृद्धि पाई जाती है। यह मछली पालन करने वाले व्यवसाय के लिए भी बेहद लाभकारी चारा साबित हो रहा है। सूखे अजोला को पोल्ट्री फीड के रूप में उपयोग किया जा सकता है और हरा अजोला मछली के लिए भी एक अच्छा आहार है। इससे जैविक खाद, मच्छरों से बचाने वाली क्रीम, सलाद तैयार करने और सबसे बढ़कर बायोफर्टिलाइजर के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

**अजोला उत्पादन तकनीकः**

- सबसे पहले किसी भी छायादार स्थान पर 2 मीटर लम्बाईX2 मीटर चौड़ा तथा 30 सेंटीमीटर गहरा गढ्ढा खोदा जाता है। पानी के रिसाव को रोकने के लिए गढ्ढे को प्लास्टिक शीट से ढंक देते हैं। जहाँ तक संभव हो पराबैंगनी किरण रोधी प्लास्टिक शीट का प्रयोग करना चाहिए। सीमेंट की टंकी में भी अजोला उगाया जा सकता है। सीमेंट की टंकी में प्लास्टिक शीट बिछाने की आवशयकता नहीं होती है।
- गढ्ढे में 10 से 15 किलो छनी मिट्टी फैला दी जाती है।
- 10 लीटर पानी में 2 किलो गोबर एवं 30 ग्राम सुपर फॉस्फेट से बना घोल शीट पर डाला जाता है। जलस्तर को लगभग 10 सेंटीमीटर तक करने के लिए पानी मिलाया जाता है ।
- अजोला क्यारी में मिट्टी तथा पानी के हलके से हिलाने के बाद लगभग 0.5 से 1 किलो शुद्ध अजोला इनोकुलम पानी पर एक समान फैला दिया जाता है। संचरण के तुरंत बाद अजोला के पौधों को सीधा करने के लिए अजोला पर ताजा पानी छिड़का जाना चाहिए।
- एक हफ्ते के अंदर अजोला पूरी क्यारी में फैल जाती है एवं एक मोटी चादर जैसी बन जाती है।
- अजोला को तेज वृद्धि एवं 50 ग्राम दैनिक पैदावार के लिए दिन में एक बार 20 ग्राम सुपर फॉस्फेट तथा लगभग 1 किलो गाय का गोबर मिलाया जाना चाहिए।
- अजोला में खनिज की मात्रा बढ़ाने के लिए एक–एक हफ्ते के अंतराल पर मैग्नेशियम, आयरन, कॉपर, सल्फर आदि से युक्त सूक्ष्मपोषक भी मिलाया जाता है।
- नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ाने के लिए तथा सूक्ष्मपोषक की कमी को रोकने के लिए 30 दिनों में एक बार लगभग 5 किलो क्यारी की मिट्टी को नई मिट्टी से बदलना चाहिए।
- कीटों तथा बीमारियों से संक्रमित होने पर एजोला के शुद्ध कल्चर को एक नई क्यारी में तैयार किया जाना चाहिए।

**अजोला की कटाईः**

अजोला तेजी से बढ़कर 10–15 दिनों में गढ्ढे को भर देगा। उसके बाद से 500–600 ग्राम अजोला हर रोज काटा जा सकता है। प्लास्टिक की छलनी या ऐसी ट्रे जिसके निचले भाग में छेद हों, की सहायता से 15वें दिन के बाद से प्रतिदिन किया जा सकता है। कटे हुए अजोला से गोबर की गंध हटाने के लिए ताजे पानी से धोया जाना चाहिए।

**अजोला उत्पादन में सावधानियाँः**

- अच्छी उपज के लिए संक्रमण से मुक्त वातावरण का रखना आवश्यक है।
- अजोला की तेज बढ़वार और उत्पादन के लिए इसे प्रतिदिन उपयोग हेतु लगभग 200 ग्राम वर्ग मीटर की दर से बाहर निकाला जाना आवश्यक है।

अच्छी वृद्धि के लिए तापमान एक महत्वपूर्ण कारक है। लगभग 35 डिग्री सेल्सियस तापमान होना चाहिए तथा सापेक्षिक आर्द्रता 65–80 प्रतिशत होनी चाहिए। ठण्ड के मौसम के प्रभाव को कम करने के लिए क्यारी को प्लास्टिक शीट से ढंक देना चाहिए।

❖❖❖

# खेती उजाड़ता कृषि प्रधान भारत

**सात्विक सहाय बिसारिया एवं आशुतोष गुप्ता**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

मानव विकास के सिद्धांत के पुरोधा चार्ल्स डारविन का प्रसिद्ध कथन है कि मानव सभ्यता की गहराई 15 इंच है। उनका आशय संभवतः भूमि की उस परत से है जहां से हमें रोटी व कपड़े के साधन मिलते हैं। संभवतः खेती इस पृथ्वी पर प्रारंभ हुई पहली नियोजित मानव क्रिया है, जो कई मार्ग बदलकर आज पुनः अपना अस्तित्व खोज रही है। वर्तमान खाद्यान्न असुरक्षा इसी भटकी हुई या भटकाई हुई खेती के ही कारण है। औद्योगिक देशों में फसल को नष्टकर उद्योग खड़े किए थे। लेकिन कृषि प्रधान भारत में जहां आज भी तीन चौथाई आबादी खेती पर निर्भर है, वहां इस तरह का भटकाव एक गंभीर मसला है। खेती की इस बदहाली के लिए हमारी राजतंत्र और प्रशासनतंत्र की भी जिम्मेदारी है, जिसने आजादी के बाद पारम्परिक खेती और ग्रामीण समाज की अनदेखी कर औद्योगिक खेती को विकसित करने में सहायता प्रदान की। खाद्यान्न सुरक्षा भारत की बुनियाद थी। यह न केवल मनुष्य के लिए थी बल्कि मवेशियों के लिए भी हर गांव में तालाब और चारागाह हुआ करते थे। सीमित सिंचाई व्यवस्था के कारण भारत में शुष्क खेती का प्रचलन था। ज्वार, बाजरा, मक्का, कोदो, कुटकी, तिवड़ा, मोटा कपास व अलसी जैसी फसलों का बोलबाला था।

बहुफसलीय खेती होने के कारण मिट्टी की सतह और उर्वरता श्रेष्ठ दर्जे की थी। खेतों में कीड़े और रोगों का आक्रमण कम होता था। कम अथवा अधिक वर्षा होने पर भी खाद्यान्न सुरक्षित रहता था क्योंकि उथली जड़ों वाली और गहरी जड़ों वाली फसलें एक साथ बोई जाती थीं। फसलों का उत्पादन और उत्पादकता भी कम नहीं थी। जल, भूमि और ऊर्जा का दोहन होता था, शोषण नहीं होता था।

अलबर्ट हॉवर्ड और जॉन अगस्टिन वोलकेयर जैसे अंग्रेज वैज्ञानिक भी भारतीय किसानों का लोहा मानते थे। मोटे देशी कपास के कारण गांव–गांव में चरखे चलते थे। देशी हल व बक्खरों के कारण लुहार व सुतार गांव–गांव में उपलब्ध थे। ज्वार, बाजरा, मक्का जैसी फसलों के कारण मवेशियों को चारा मिल जाता था।

विदेशी कृषि तंत्रों से प्रभावित हमारे योजनाकारों ने हरित क्रांति के चक्कर में भारतीय फसलचक्र तोड़ा। बहुफसलीय खेती की जगह चावल, गेहूँ और सोयाबीन जैसी नगदी और एक फसल पद्धति को अपनाया जिससे खेतों का संतुलन बिगड़ा। खेतों में जीवांश कम हुए। उत्पादकता घटी और रोगग्रस्तता में वृद्धि हुई। लिहाजा देश में रासायनिक खादों और कीटनाशकों के कारखानों का जाल बिछा। फिर ट्रेक्टर, कार्बाइन व हार्वेस्टर आए। नगदी फसलों के कारण धन (मुद्रा) तो बढ़ा लेकिन दौलत (चारा, मवेशी, लकड़ी, पानी और कारीगरी) कम होती गई। यह सब खेतों में उत्पादन बढ़ाने के लिए हुआ लेकिन योजनाकार भूल गए कि बाहरी संसाधनों के निर्माण में लगने वाली ऊर्जा की खपत बढ़ने से गांवों में ऊर्जा कम हुई। सूखती फसल को बचाने के लिए कुओं पर लगाए गए पंप और मोटर के लिए ऊर्जा गायब हो गई।

महंगे संसाधनों के कारण फसलों का गणित बिगड़ा व लागत खर्च भी बढ़ा। फसलों के वाजिब दाम नहीं मिले। ऐसे में आत्महत्या के सिवाय किसानों के पास चारा ही क्या था? आजादी के बाद खेतों से मिले धन से शहर समृद्ध होने लगे। बड़े–बड़े कल कारखाने, चमचमाती सड़कें, विश्वविद्यालय, फ्लायओवर, मॉल्स, बांध बने परंतु गांव अंधेरे में डूब गए। किसी ने यह समझने की कोशिश ही नहीं की कि फसल को जो भोजन लगता है वह 95 प्रतिशत तो प्रकृति से ही प्राप्त होता है, जिसके लिए न तो बिजली लगती है और न कोई बाहरी संसाधन। उसे तो खेतों में पर्याप्त् जीवांश और नमी चाहिए जो फसल अवशेषों से, गोबर और गोमूत्र से ही प्राप्त हो जाती है। जंगलों को ही लें, वहां कौन सिंचाई करने या खाद या कीटनाशक छिड़कने जाता है, फिर उनकी समृद्धि कहां से आती है? इस मूलभूत तथ्य को भी नजरअंदाज किया जा रहा है क्योंकि हमारे कृषि विश्वविद्यालय और अनुसंधानकर्ता विदेशी कृषि तंत्र को अपनाए हुए हैं, जहां रासायनिक खाद, कीटनाशक और अन्य बाह्य संसाधन आज भी प्रमुख माने जाते हैं।

भारत की जैव–विविधता तथा विशाल वनस्पति संपदा और हमारे प्राकृतिक संसाधनों पर आज भी कृषि विश्वविद्यालय मौन हैं। वहां आज भी गिनी चुनी फसलों की जातियों को विकसित करने पर ही जोर दिया जा रहा है और अब तो जीन रूपांतरित फसलों का बोलबाला है। हमारे अनुसंधानकर्ता भी उसी के पीछे पड़े हैं। प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक बोरलाग, जिन्होने भारत में मैक्सिकन जाति के गेहूं के बीज बोकर हरित क्रांति का शंखनाद किया था, विगत कई वर्षों से अब मक्का पर अनुसंधान कर रहे हैं, जबकि हम आज भी गेंहूँ की नई–नई जातियां विकसित किए जा रहे हैं। गेंहूँ छोड़कर बोरलाग मक्का पर क्यों आए? क्या इसलिए कि बदलते मौसम के कारण गेंहूँ का उत्पादन और उत्पादकता घटने लगी है? या इसलिए कि गेहूँ में निहित ग्लूटिंन मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है या इसलिए कि अमेरिका में अब मोटे अनाज का प्रचलन बढ़ रहा है (जैव ईंधन के कारण?)।

भारत में आजकल एमवे व्यापार जोर–शोर पर है। हमारे प्रबुद्ध समाज घर–घर ओमेगा, 3,6,9 और 12 की गोलियां बेच रहा है? किसी ने जानने की कोशिश की कि क्या है ओमेगा में? वसीय अम्लों पर आधारित ये गोलियां बनी हैं मछली के तेल या अलसी से। अलसी जो कभी भारत में खेतों की जानदार फसल हुआ करती थी। अमेरिका में आजकल अलसी का तेल सबसे महंगा बिक रहा है और देश के अधिकांश हिस्सों में बोने के लिए अलसी का बीज ही उपलब्ध नहीं है। यह है हमारा कृषि प्रधान देश और ये है हमारे कृषि विज्ञानिकों की

सोच! सुना है केंद्र सरकार ने कृषि शिक्षा में सुधार के लिए 2276 करोड़ रूपए मंजूर किए हैं। इससे हमारे विश्वविद्यलयों के अध्ययनकक्ष, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, छात्र–छात्राओं के आवास तथा प्रक्षेत्र सुसज्जित किए जाएंगे। क्या हमारे अनुसंधानकर्ताओं की मानसिकता इस आधुनिकता को पचाने में सक्षम है? कृषि शिक्षा और अनुसंधान में आधुनिकता के मापदंड क्या मोनसेंटो, सिंजेंटा या वालमार्ट तय करेंगे। इस देश का दुर्भाग्य है कि हमारा मीडिया सरकार से इस संबंध में कोई प्रश्न नहीं पूछता है। हमारे देश में पी. साईनाथ, भरत झुनझुनवाला, वंदना शिवा, सुमन सहाय, देवेन्दर शर्मा, भारत डोगरा, सुनील जैसे पत्रकार कभी–कभार अखबारों में उपस्थित मिलते हैं। यह भी दुर्भाग्य है कि हमारा समाज प्रदूषित वातावरण और प्रदूषित अन्न खाकर भी मौन है। खेती–किसानी से और किसानों की गिरती हालत से उसे कुछ लेना–देना नहीं है। अमेरिका के अश्वेत वैज्ञानिक डॉ. जार्ज वाशिंगठन कार्वर (सन् 1863–1943) और कोल्हापुर महाराष्ट्र के श्रीपाद अच्युत दाभोलकर (सन् 1925–2001) ने पारम्परिक खेती के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। उनके प्रयोगों ने सारे संसार में किसानों को लाभान्वित किया है। भारत में भी उनके गिने चुने शिष्य स्वावलंबी खेती कर रहे हैं। अलबर्ट हॉवर्ड, बिल मालिसन और मासानेबू फुकुओका ने प्राकृतिक खेती पर प्रशंसनीय कार्य किया है। इन सभी का योगदान हमारे कृषि विश्वविद्यालयों के लिए कोई मायने नहीं रखता और पाठ्यक्रमों में इनके नाम तक नहीं हैं। यदि हमारे अनुसंधानकर्ताओं ने ही उनकी सुध नहीं ली है उनके बताए नुस्खों पर प्रयोग नहीं किए तो इन वैज्ञानिकों का कार्य किसानों तक कैसे पहुंचेगा और कहां से आएगी हमारे खेती में समृद्धि, कौन बताएगा हमारे खेती में समृद्धि लाने के कारण, कौन बताएगा गावों को कैसे स्वालंबी करें व कैसे दूर होगी खेती की उपेक्षा?

मनुष्य के लिए पेट भरने, तन ढंकने और सिर छिपाने लायक आच्छादन बनाने की समस्या अभी हल नहीं हो पाई थी कि बड़ी मात्रा में उत्पन्न होने वाले कचरे को ठिकाने लगाने की नई समस्या सामने आ गई। प्रकृति अपने उत्पादित कचरे को ठिकाने लगाती और उपयोगी बनाती रहती है। पशुओं के मल–मूत्र, पेड़ों से गिरे पत्ते आदि सड़ गल कर उपयोगी खाद बन जाते हैं और वनस्पति उत्पादन में काम आते हैं। मनुष्य का मल–मूत्र भी उतना ही उपयोगी है। पर इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि उससे खाद न बनाकर नदी–नालों में बहा दिया जाता है और पेय जल को दूषित कर दिया जाता है। इससे दुहरी हानि है, खाद से वंचित रहना और कचरे को नदियों में फेंककर बीमारियों को आमन्त्रित करना । सरकारी तथा गैर सरकारी स्तरों पर किए जा रहे अनेक प्रयासों के बावजूद इन दिनों कचरे में भयानक वृद्धि हो रही है। हर वस्तु कागज, प्लास्टिक की थैली, पत्तल, दोना, डिब्बा आदि में बंद करके बेची जाती है। वस्तु का उपयोग होते ही वह पेकिंग कचरा बन जाती है और उसे जहां–तहां सड़कों, गलियों में फेंक दिया जाता है। इसकी सफाई पर ढेरों खर्च तो होता है, विशेष समस्या यह है कि उसे डाला कहां जाए? आजकल शहरों के नजदीक जो उबड़ खाबड़ जमीनें होती हैं वे भी इस कचरे से भर जाती हैं।

❖❖❖

# किसानों की प्रगति में कठिनाइयाँ

**आशुतोष कुमार, बिनीता देवी एवं अतुल कुमार सिंह**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

## ग्रामीण भारत में रोजगार के अवसर एवं चुनौतियाँ:

महात्मा गांधी कहा करते थे कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है। वे ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आत्मनिर्भरता व स्वशासन की वकालत किया करते थे। गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान खादी और चरखे का प्रचलन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता और स्वनिर्भरता को ध्यान में रख कर किया। आज की स्थिति वैश्वीकरण के साथ विकास की है। तीव्र गति से आर्थिक विकास के नए आयामों को गढ़ा जा रहा है। परंतु इस विकास के साथ भारी असमानता भी उजागर हुई है। ग्रामीण–शहरी, अमीरी–गरीबी के बीच का अंतर व्यापक रूप से दिखता है। आज ग्रामीण क्षेत्र विकास की राह पर शहरों जैसे दौड़ पाने में लाचार बने हुए हैं। इस लाचारी को दूर करने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय ने कई अहम पहल की हैं। पीयूआरए, मनरेगा, ग्रामीण विद्युतीकरण, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, स्वरोजगार कार्यक्रम, आधारभूत संरचना निर्माण सहित ऐसी कई योजनाएं ग्रामीण विकास व रोजगार वृद्धि हेतु चलाई जा रही हैं। पिछले कुछ वर्षों से इन योजनाओं के लाभकारी प्रभाव स्पष्ट दिखे हैं। ग्रामीण विकास तथा रोजगार में वृद्धि हुई है। साथ ही ग्रामीण अर्थव्यवस्था और ग्रामीणों की स्थिति में भी सुधार आया है। कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं व प्रयासों की चर्चा यहां प्रासंगिक है।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि शहरीकरण की व्यापक प्रक्रिया ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के प्रति उदासीनता पैदा की है। शहर न केवल उत्पादन, वितरण और प्रबंधन के केंद्र बने हैं बल्कि संपूर्ण अर्थव्यवस्था की दिशा भी तय कर रहे हैं। संपूर्ण आर्थिक व्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्र विगत कई दशक से महज कच्चे माल के स्रोत बन कर रह गए हैं। पारंपरिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था जो कि कृषि, हस्तशिल्प, लघु–कुटीर उद्योगों पर निर्भर थी, वे औद्योगिकीकरण, शहरीकरण तथा वैश्वीकरण के आगमन के साथ समाप्त–सी होती चली गई। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार कृषि नवीन तकनीकों के इस्तेमाल के बावजूद संकट का सामना कर रही हैं। भारत की कुल श्रम शक्ति का करीब 60 प्रतिशत भाग कृषि व सहयोगी कार्यों से आजीविका प्राप्त करता है। इसके बावजूद देश के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान केवल 16 प्रतिशत है। निर्यात के मामले में भी इसका हिस्सा महज 10 प्रतिशत ही है। ग्रामीण रोजगार के महत्वपूर्ण व आकर्षक क्षेत्र होने के बावजूद कृषि क्षेत्र से लोगों का पलायन जारी है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की एक रिपोर्ट में पिछले दिनों बताया गया था कि करीब 40 प्रतिशत किसान अन्य रोजगार करना चाहते हैं। देश के ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर भारी संख्या में पलायन भी ग्रामीण रोजगार की निराशाजनक तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। परंतु खुशी की बात है कि सरकार की मनरेगा सहित अन्य योजनाओं ने ग्रामीण रोजगार के अवसरों को व्यापक स्तर पर बढ़ाया है।

## मनरेगा:

विश्व की सबसे बड़ी तथा महत्वाकांक्षी योजना महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना 2006 में आरंभ की गई। लागू होने के 6 वर्ष के भीतर इस योजना ने वास्तव में ग्रामीण क्षेत्रों की तस्वीर बदल डाली है। वर्ष 2010–11 के दौरान इस योजना के तहत 5.49 करोड़ परिवारों को रोजगार मिला है। इस योजना के द्वारा अब तक करीब 1200 करोड़ रोजगार दिवस का कार्य हुआ है। ग्रामीणों के बीच 1,10,000 करोड़ रुपये की मजदूरी वितरित की जा चुकी है। आंकड़ों के मुताबिक प्रति वर्ष औसतन एक–चौथाई परिवारों ने इस योजना से लाभ लिया है। यह योजना सामाजिक समावेशन की दिशा में बेहतर सिद्ध हुई है। मनरेगा के द्वारा कुल कामों के 51 प्रतिशत कामों में अनुसूचित जाति व जनजाति तथा 47 प्रतिशत महिलाओं को शामिल किया गया। मनरेगा में प्रति अकुशल मजदूर को 180 रुपये दिये जाते हैं। इसका प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा है। निजी कार्यों के लिए भी पारंपरिक मजदूरी जो कि अपेक्षाकृत काफी कम थी, इसके प्रभाव स्वरूप बढ़ गई है।

निश्चित रूप से मनरेगा न केवल ग्रामीण रोजगार के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ है बल्कि इसने ग्रामीणों की सामाजिक– आर्थिक स्थिति को सुधारने का मौका भी प्रदान किया है।

## ग्रामीण व्यापार केन्द्र:

भारत तीव्र आर्थिक विकास के साथ विश्व की तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था बना है। परंतु इस तीव्र विकास के साथ असमानताएं भी बढ़ी हैं। खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी और कृषि क्षेत्र का पिछड़ापन विकास की समग्र परिभाषा के दायरे से बाहर हैं। तीव्र आर्थिक विकास का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचे, इसे ध्यान में रखकर 2007 में 'ग्रामीण व्यापार केन्द्र योजना' शुरू की गई। चार 'पी' से निर्मित यह एक आदर्श योजना के रूप में सामने आई है। चार 'पी' अर्थात् पब्लिक–प्राइवेट–पंचायत–पार्टनरशिप के तहत इस योजना के व्यापक उद्देश्य हैं। इसका उद्देश्य रोजगार के साधनों में वृद्धि के साथ गैर–कृषिगत कार्यों से आय के स्रोत निर्मित करना, ग्रामीण रोजगार को बढ़ावा देकर ग्रामीण विकास को गति देना है। आरंभ में इस योजना के तहत 35 जिलों का चयन किया गया।

## राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन:

1999 से चल रही स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना को एक नये कार्यक्रम राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन में 24 जून, 2010 को मिला दिया गया। इस नई योजना ने ग्रामीण रोजगार की संभावना को पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ाया है। यह योजना ग्रामीण स्वरोजगार के उद्देश्यों पर केंद्रित है, जिसमें राज्यों को उपलब्ध धन, संसाधनों, कौशल के आधार पर गरीबी उन्मूलन की अपनी योजना चलाने की

छूट है। दो वर्षों के लिए इस योजना के तहत 16400 करोड़ रुपये के बजट का प्रावधान किया गया जिसके तहत करीब 17 लाख गरीब युवाओं को कौशल विकास का प्रशिक्षण देना है।

**राष्ट्रीय ग्रामीण जीविकोपार्जन मिशनः**

3 जून, 2011 को इस योजना का आरंभ राजस्थान के बांसवाड़ा जिले से किया गया। इस योजना का लक्ष्य गरीबी रेखा से नीचे के 7 करोड़ लोगों को रोजगार देना था। इस योजना का संचालन और क्रियान्वयन स्वयंसहायता समूहों द्वारा किया जाता है। योजना पर 2011 में 9 हजार करोड़ रुपये व्यय किए गए।

**आधारभूत संरचना निर्माण में रोजगारः**

ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक रूप से आधारभूत संरचना निर्माण कार्यों में भी रोजगार के नए अवसर सृजित हुए हैं। इसके अलावा संरचना निर्माण के बाद इसके उपयोग से भी ग्रामीणों की आय बढ़ी है।

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, जलापूर्ति, विद्युतीकरण, दूरसंचार क्षेत्रों में कार्यों के बढ़ने से रोजगार व आय में बढ़ोत्तरी देखी जा सकती है। स्वच्छ जलापूर्ति के लिए भारत में 35 लाख से अधिक चापाकल तथा एक लाख पाइप जलापूर्ति योजना चलाई गई। इसमें भारी संख्या में लोग लाभान्वित हुए हैं।

इसी प्रकार पिछले वित्त वर्ष में रोजाना औसतन 144 किमी. सड़क का निर्माण किया गया। इस वित्त वर्ष में 151 किमी. सड़क के निर्माण का लक्ष्य रखा गया है। विश्व बैंक के एक अध्ययन में बताया गया है कि जिन ग्रामीण क्षेत्रों का संपर्क पक्की सड़कों से है, उन क्षेत्रों में सन् 2000 से 2009 के बीच आमदनी में 50 से 100 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में सड़क निर्माण पर जब 10 लाख का निवेश होता है तब करीब 163 लोग गरीबी से बाहर निकल जाते हैं। सरकार ग्रामीण सड़क नेटवर्क को मजबूत करने के लिए व्यापक प्रयास कर रही है। इसी का नतीजा है कि ग्रामीण सड़कों की लंबाई जहां 2005–06 में 22891 किमी. थी वही 2009–10 में यह बढ़कर 54821 किमी. हो गई।

**ग्रामीण पर्यटन और सेवा क्षेत्र में रोजगारः**

ग्रामीण क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सुंदरता व देशज विशिष्टताओं के कारण पर्यटकों के लिए हमेशा से आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। इधर कुछ वर्षों से ग्रामीण विकास मंत्रालय ने ग्रामीण पर्यटन के विकास के लिए कई व्यापक कदम उठाए हैं। पर्यटन क्षेत्र में रोजगार की असीम संभावनाएं हैं। संयुक्त राष्ट्र विश्व पर्यटन संगठन के अनुसार पर्यटन क्षेत्र विश्व के कुल रोजगार का प्रत्यक्ष रूप से 7 प्रतिशत तथा अप्रत्यक्ष रूप से इससे कई गुना अधिक रोजगार प्रदान करता है। भारत में ही देखें तो देश के सकल घरेलू उत्पादन में इसका योगदान 2007–08 में प्रत्यक्ष तौर पर 6 प्रतिशत तथा अप्रत्यक्ष तौर पर 9 प्रतिशत रहा है। देश में ग्रामीण पर्यटन की असीम संभावना को देखते हुए सरकार देश में हस्तशिल्प, ज्ञान, संस्कृति आदि को बढ़ावा दे रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में आज सेवा क्षेत्र की भूमिका भी बढ़ती जा रही है। इस हेतु सरकार विभिन्न योजनाओं व कार्यक्रमों के द्वारा ग्रामीणों को प्रशिक्षित कर रही है। दूरसंचार, चिकित्सा, शिक्षा, मरम्मती कार्यों में सरकार व्यापक सहयोग दे रही है।

**स्वरोजगारः**

सेवा क्षेत्र के उभार, शिक्षा तकनीक, जागरूकता के बढ़ने के साथ लोगों में स्वरोजगार के प्रति काफी आकर्षण है। स्वयंसहायता समूह, खादी ग्रामोद्योग के रोजगार सृजन कार्यक्रमों, मनरेगा के तहत नवीन कार्यों मसलन तालाब निर्माण, मवेशी पालन आदि के तहत सरकार ग्रामीणों को स्वरोजगार हेतु प्रेरित व सहयोग कर रही है। इसके लिए प्रशिक्षण, कौशल विकास, संसाधन, वित्त व्यवस्था, विपणन, प्रबंधकीय क्षमता विकास के लिए सरकार व्यापक प्रावधान व प्रयास कर रही है।

**नवीन संभावनाएंः**

औद्योगिकीकरण, आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण का स्पष्ट प्रभाव गांवों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संरचना पर देखा जा सकता है। इन सबका सम्मिलित प्रभाव ग्रामीण उपयोग स्तर में वृद्धि के मामले में दिखता है। ग्रामीण क्षेत्रों में उपभोक्ता वस्तुओं व सेवाओं की मांग लगातार बढ़ रही है। इस बढ़ती मांग ने गांवों में रोजगार के नवीन अवसरों को भी बढ़ाया है। गांवों का भविष्य रोजगार की असीम संभावनाओं से युक्त दिख रहा है। जरूरत है इसके बेहतर तरीके से नियमन, संचालित प्रबंधन के द्वारा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण भागीदारी का स्तर उठाया जाए।

आज सूचना प्रौद्योगिकी, सेवा, कृषि, उद्योग सहित अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहां गांवों की जरूरत महसूस की जा रही है। गांवों का बदलता स्वरूप अब कच्चे माल के स्रोत के तौर पर नहीं दिखता। बल्कि गांव शहरों से मुकाबला करने को तैयार हो चुके हैं। सस्ता श्रम बल, सस्ती संरचना, सस्ता परिवहन व्यय आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं कि अब उद्योग जगत गांवों की तरफ आकर्षित हो रहे हैं। संभावना है पब्लिक–प्राइवेट पार्टनरशिप और निजी दोनों रूपों में गांव औद्योगिकीकृत होंगे। इस संभावना के साथ ग्रामीण रोजगार के असीम दरवाजे खुलेंगे। सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तार ने ग्रामीण क्षेत्रों में संभावनाएं पैदा की हैं। कॉल सेंटर, बीपीओ, इंटरनेट संबंधी रोजगार के नए अवसर ग्रामीण क्षेत्रों की ओर रूख कर रहे हैं। यह ग्रामीण रोजगार क्षेत्रों के लिए क्रांतिकारी बदलाव होगा।

**चुनौतियां और समाधानः**

नई संभावनाओं के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में चुनौतियों की कमी नहीं है। इनसे निबटे बगैर हम ग्रामीण रोजगार सृजन और इसकी बेहतरी की कल्पना नहीं कर सकते।

**शिक्षण–प्रशिक्षणः**

सबसे बड़ी चुनौती शिक्षा व प्रशिक्षण की है। हम अब भी पारंपरिक शैक्षणिक पद्धति से जुड़े हुए हैं, जबकि आधुनिक समय में व्यावसायिक शिक्षा की मांग जोर पकड़ रही है। आधुनिक रोजगार हेतु हमारी शिक्षा प्रणाली बेहतर श्रम बल तैयार नहीं कर पाती। ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश लोग प्राथमिक और थोड़े–बहुत लोग माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। लेकिन यह शिक्षा विशेषीकृत नहीं होती। हमारा प्रयास ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक से ही व्यवसाय केन्द्रित शिक्षण पद्धति को अपनाने के प्रति होना चाहिए।

इसके अलावा अशिक्षित लोगों के लिए वैकल्पिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। औद्योगिक प्रशिक्षण, गैर–कृषिगत कार्यों का प्रशिक्षण, सूचना प्रौद्योगिकी, सेवा क्षेत्र आदि से जुड़े रोजगार हेतु आवश्यक कौशल विकास के लिए शिक्षण–प्रशिक्षण का प्रयास करना होगा।

**ऊर्जा उपलब्धता:**

नये उद्योग, उत्पादन इकाई या ग्रामीण औद्योगिकीकरण के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा ऊर्जा उपलब्धता की है। ग्रामीण विद्युतीकरण योजनाओं के बावजूद अब भी 25 प्रतिशत गांव पूर्णतः विद्युतीकृत नहीं हैं। 20 राज्यों के करीब 1.15 लाख गांवों में विद्युतीकरण अब भी प्रतीक्षारत है। ग्रामीण रोजगार के लिए ग्रामीण उद्योगीकरण का रास्ता तो खुल रहा है परन्तु ऊर्जा उपलब्धता के नजरिए से यह बड़ी चुनौती है। हमें ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों पर ऐसे गांवों की निर्भरता बढ़ाने के प्रति गंभीर होना होगा। इसके लिए सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा जैसे विकल्पों के प्रसार को गति देनी चाहिए।

**संरचना निर्माण:**

इसके अलावा आधारभूत संरचनाओं के निर्माण के प्रति भी हमें सचेत प्रयास करने होंगे। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना ने ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क नेटवर्क को मजबूत करने की दिशा में अच्छा काम किया है। परंतु अब भी 30 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र पक्की सड़क से नहीं जुड़ पाए हैं। मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, अरुणाचल प्रदेश, असम, बिहार में तो करीब 55 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र पक्की सड़क सुविधा से नहीं जुड़े हैं। पीयूआरए जैसी योजनाओं से ग्रामीण क्षेत्रों में शहरों जैसी सुविधा उपलब्ध कराने के प्रयासों से धीरे–धीरे अच्छे नतीजे आ रहे हैं। इस दिशा में हमारे लिए काफी काम शेष हैं। सड़क, संचार तथा ऊर्जा ये तीन चीजें औद्योगीकरण के लिए बहुत जरूरी हैं। इसे केवल ग्रामीण रोजगार के नजरिये से ही नहीं, बल्कि पूरी अर्थव्यवस्था के लिहाज से देखना होगा। इन सबके साथ ग्रामीण औद्योगिकीकरण का सामना पर्यावरण के मुद्दे से भी होगा। इसके लिए पर्यावरण हितैषी उपायों को ध्यान में रख कर योजनाएं बनाने की जरूरत है।

**नक्सलवाद:**

देश के कई ग्रामीण क्षेत्रों में नक्सलवाद जैसी समस्या भी मौजूद हैं। नक्सली हमलों में प्रायः सरकारी इमारतों, स्कूलों, टेलीफोन टावरों, कारखानों आदि को निशाना बनाया जाता है। इस तरह की स्थितियों के साथ ग्रामीण युवाओं में विघटन की प्रवृत्ति भी पनप रही है। या तो वे शहरों में पलायन कर जाते हैं या नक्सली बन जाते हैं। दूसरी ओर, ऐसे क्षेत्रों में कोई उद्यमी भी नहीं जाना चाहता। हालांकि पिछले दिनों ग्रामीण विकास मंत्रालय ने विकास के बल पर नक्सल समस्या से निपटने की रणनीति बनाई है। इसके साथ ही हमें विकास की प्रक्रियाओं में स्थानीय लोगों की व्यापक भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी। खनन, भूमि अधिग्रहण से विस्थापित ग्रामीणों को परियोजनाओं में रोजगार उपलब्ध कराने चाहिए।

**कृषि पर अत्यधिक निर्भरता:**

पारंपरिक रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि पर अत्यधिक निर्भरता है। जिस काम को 2 लोग आसानी से कर सकते हैं वहां काम के अभाव के कारण 5–7 लोग लगे रहते हैं। हमें गैर–कृषि कार्यों को प्रोत्साहन देना होगा और इसमें नये रोजगार अवसर बनाने होंगे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की असीम संभावनाएं हैं साथ ही चुनौतियां भी। इनके बेहतर तकनीकी, प्रबंधकीय, निगरानी की सुदृढ़ता की जरूरत है।

❖❖❖

# गन्ने की पेड़ी का कुशल प्रबन्धन

**आशुतोष गुप्ता एवं सात्विक सहाय बिसारिया**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

गन्ना भारत की एक प्रमुख नकदी फसल है। प्रतिवर्ष इसकी खेती लगभग 4 मिलियन है. क्षेत्रफल में की जाती है। जिसमें 50 प्रतिशत या इससे अधिक हिस्सेदारी पेड़ी/ रेटून की होती है। पेड़ी का ठीक से प्रबन्धन न होना, भारत में गन्ने की औसत उपज एवं चीनी की उत्पादकता अन्य देशों की तुलना में कम होने का एक मुख्य कारण है। उत्तरी भारत, जिसमें उत्तर प्रदेश व उत्तराखंड के मैदानी भाग भी सम्मिलित हैं, जिनकी पैदावार दक्षिणी भारत से काफी कम है। इस स्थिति से, पेड़ी की उपज को उन्नत तकनीकियों द्वारा बढाकर उबरा जा सकता है।

**पेड़ी क्यों:**

पेड़ी की फसल पर बोवक फसल की तुलना में लगभग 30–35 प्रतिशत तक कम उत्पादन लागत आती है। क्योंकि खेत की तैयारी, गन्ना बीज व बोआई आदि पर होने वाले व्यय की बचत हो जाती है। साथ ही पेड़ी कम समय में पककर तैयार हो जाती है। इस प्रकार गन्ने की खेती को आर्थिक दृष्टि से सक्षम बनाने में पेड़ी का मुख्य योगदान है।

चीनी की प्रतिशत मात्रा पेड़ी में बोवक फसल की अपेक्षा अधिक होती है और कम समय में पकने के कारण पेराई सत्र के प्रारम्भ में कटाई योग्य हो जाती है तथा चीनी का पड़त सुधारने में सहायक सिद्ध होती है।

पेड़ी की समय से कटाई कर दूसरी फसल ली जा सकती है। जैसे कि विभिन्न भागों में गेंहूँ की देर से बोआई की जा रही है।

अतः उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, पेड़ी का समुचित प्रबन्धन आवश्यक हो जाता है, ताकि पेड़ी की फसल से अधिकतम लाभ लिया जा सके। इसके लिए कम उपज के विभिन्न कारणों की जानकारी आवश्यक है, जिनमें बोवक फसल में प्रजातियों का ठीक से चयन न करना, असमय एवं अनुचित तरीके से कटाई करना, खाली स्थानो का न भरा जाना, पेड़ी में अपर्याप्त एवं संतुलित उर्वरक उपयोग, खरपतवार नियंत्रण तथा वाटर शूट एवं कल्लों का ठीक से प्रबन्ध न होना आदि मुख्य हैं। इन समस्याओं का निदान निम्नानुसार वैज्ञानिक विधियाँ अपनाकर किया जा सकता है।

**1. बोवक फसल की समुचित देख–रेख:**

इसके लिए अच्छी पेड़ी देने वाली व शीघ्र पकने वाली प्रजातियों, जैसे को0शा0 88230, को0शा0 8436 को0शा0 96268, को0 238, को0 119 एवं को0ल0 94184 आदि तथा मध्य व देर से पकने वाली को0शा0 8432, को0शा0 94257, को0शा0 95255, को0पन्त 84212, को0पन्त 97222 एवं को0पन्त 99214 आदि, का चयन करें। बीज का चुनाव स्वस्थ फसल से करें एवं समुचित बीज शोधन के उपरान्त ही बुआई करें। फसल की समय से बुआई व उचित मात्रा में संस्तुति अनुसार उर्वरक एवं सिंचाई आदि का प्रयोग करें।

**2. बोवक फसल का कटाई प्रबन्धन:**

सर्वप्रथम, यह ध्यान देने योग्य है कि स्वस्थ बोवक फसल की ही पेड़ी रखें। जहाँ तक सम्भव हो पेड़ी रखने के लिए बोवक फसल की कटाई दिसम्बर व जनवरी माह में न करें, फिर भी यदि करनी पड़े तो कोई सहफसल जैसे बरसीम आदि को अन्तःफसल के रुप में लें तथा 10–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहें। गन्ने की कटाई जमीन की सतह से मिलाकर करें। ऐसा न होने की दशा में तेज धारदार यन्त्र से ठूंठ को जमीन की सतह से मिलाकर काट दें। इससे फुटाव अच्छा होगा व अधिक संख्या में मिल योग्य गन्ने प्राप्त होंगे।

**3. वाटर शूट एवं कल्लों का प्रबन्धन:**

अप्रैल व मई माह में काटी जाने वाली बोवक फसल के कल्लों व वाटरशूट को उगने दें। इसके पूर्व अर्थात दिसम्बर से मार्च तक काटे जाने की स्थिति में वाटरशूट व कल्लो को भी ठूंठ के साथ काट दें। ऐसा करने से ठीक से फुटाव होगा तथा अधिक कल्ले व गन्ने बन सकेंगे।

**4. खाली स्थानो को भरना:**

बोवक फसल की कटाई के उपरान्त ठूठों से फुटाव शुरु हो जाता है। कुछ स्थानों पर ठूंठ न होने अथवा फुटाव न होने कारण खाली स्थान दिखायी पड़ते हैं, ऐसे स्थान यदि 50 सेमी या इससे अधिक हों तो इन्हें बीज टुकड़ों अथवा पौधों से भरें। पौधे सुविधानुसार खेत में अथवा पॉली बैग विधि से तैयार किये जा सकते हैं। गन्ना पेड़ी से अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए एक है. में लगभग 30000 से 35000 झुण्डों का होना आवश्यक होता है।

**5. पेड़ी मे सूखी पत्ती का प्रबन्धन एव अन्तःकर्षण:**

यदि बोवक फसल में कीट एव रोगों का प्रकोप ज्यादा रहा हो तो सूखी पत्तियों को जला दें, कर्षण क्रियाएं कर, सिंचाई व समुचित उर्वरक दें, अन्यथा सूखी पत्तियों को पलवार के रुप में अन्तःकर्षण (निराई, गुड़ाई अथवा कुड़ों के बीच में जुताई), के साथ एकान्तर क्रम मे अपनाए, अर्थात एक पंक्ति में पलवार व दूसरी में अन्तःकर्षण व उर्वरक उपयोग करें। अन्तःकर्षण करने से पुरानी जड़ें कट जाती हैं और नई विकसित होती हैं, जो जल एवं पोषक तत्वों का उपयोग करने में अधिक सक्षम होती हैं। पलवार बिछाते समय 25 कि.ग्रा. दानेदार फोरेट प्रति है0 डालकर सिंचाई कर दें।

**6. पेड़ी में उर्वरक प्रबन्धन:**

पेड़ी की फसल, बोवक की तुलना में पोषक तत्वों का उपयोग करने में कम सक्षम होती है, जिसके कारण इसे बोवक फसल से 25 प्रतिशत अधिक नत्रजन की आवश्यकता होती है। प्रति है0 नत्रजन की आधी मात्रा (200 किग्रा0 यूरिया), फास्फोरस (375 किग्रा0 सिगल सुपर फास्फेट) व पोटाश (70 किग्रा0 म्यूरेट आफ पोटाश) की सम्पूर्ण मात्रा कटाई के तुरन्त बाद अन्तःकर्षण क्रिया के समय दें। उचित होगा

कि यह उर्वरक कूड़ों में लगभग 15–20 सेमी. की गहराई पर दिये जायें। शेष 200 किग्रा0 यूरिया 2 – 3 बार में कटाई के प्रथम 75 से 80 दिनो में दे दें। देर से यूरिया देने पर गन्ने की उपज व चीनी की रिकवरी में कमी आ जाती है।

**7. खरपतवार नियंत्रणः**

कर्षण क्रिया (निराई, गुड़ाई अथवा कुड़ों के बीच में जुताई) के उपरान्त भूमि को समतल कर यथाशीघ्र खरपतवारों के उगने से पूर्व एटराजीन की 2.0 कि0ग्रा0 सक्रिय तत्व को 600 से 800 लीटर पानी में घोलकर, जमीन की सतह पर छिड़काव करें। इसको प्रभावी बनाये रखने के लिए भूमि सतह में नमी का बना रहना आवश्यक है। सूखी पत्तियों को पलवार के रुप में प्रयोग करने से भी सफलतापूर्वक खरपतवार नियंत्रण हो जाता है।

**8. फसल सुरक्षाः**

बोवक फसल की भाँति पेड़ी फसल में भी फसल सुरक्षा का अपना महत्व है। यदि फसल में रोगी पौधे हों, तो उन्हें जड़ सहित खेत से निकाल दें। वर्षा से पूर्व पेड़ी फसल में यदि काले चिकटे कीट का प्रकोप होता है तो पौधे पीले पड़ जाते हैं। इसके लिए 1.25 ली0 क्यूनालफॉस रसायन व 10 किग्रा0 यूरिया को 1000 से 1200 लीटर पानी में घोलकर प्रति है0 की दर से हजारे द्वारा पत्तियों के बीच गोफ में डाल देना चाहिए। कुछ ही समय में फसल का रंग भी बदल जाता है तथा पौधे कीट रहित हो जाते हैं। यदि खेत में दीमक का प्रकोप हो तो, क्लोरोपाइरीफॉस 6.0 लीटर प्रति है0 की दर से प्रयोग करें, तथा गहरी सिचाई करें। यदि शीर्ष बेधक कीट का प्रकोप हो तो जून–जुलाई माह में कार्बोफ्युरान की 30 किग्रा0 मात्रा जड़ों में दें एवं खेत में नमी बनाये रखें।

इन उन्नत सस्य तकनीकों को अपनाने से गन्ना पेड़ी की पैदावार में 30 से 50 प्रतिशत तक वृद्वि की जा सकती है।

**पेड़ी के फायदेः**

- नौलख फसल की तुलना में उत्पादन लागत लगभग 30 से 35 प्रतिशत तक की कमी आती है।
- फसल कम समय में पेराई के लिए तैयार हो जाती है।
- नौलख फसल की अपेक्षा चीनी की अधिक मात्रा।

**पैदावार कम क्योंः**

- ठीक से प्रजातियों का चयन न करना।
- नौलख फसल में, असमय एवं अनुचित तरीके से कटाई।
- खाली स्थानों को न भरा जाना।
- अपर्याप्त एवं असंतुलित उर्वरक का उपयोग।
- अकुशल खरपतवार प्रबन्धन, वाटर शूट एवं कल्लों का कुप्रबंधन।

**प्रजातियाँः**

- **शीघ्र पकने वालीः** को0शा0 8436, को0शा0 88230, को0शा0 96268, को0–0238, को0–0119 व को0ल0–94184.
- **मध्य व देर से पकने वालीः** को0पन्त 84212, को0पन्त 97222, को0पन्त 99214 व को0शा0 8432.

**स्वस्थ बीज का चुनाव व शोधनः**

- 10 माह की नौलख फसल से एवं उपरी भाग।
- गर्म एवं नम भाप से उपचार व पारायुक्त रसायन से उपचार।
- 3 प्रतिशत एगालाल की 500 ग्राम मात्रा व 100 लीटर पानी के घोल में 10 मिनट तक टुकड़ो को डुबोयें।

**नौलख फसल का कटाई प्रबन्धनः**

- दिसम्बर व जनवरी माह में न करें।
- करें तो बरसीम आदि सहफसल के रुप में लें, सिचाई करते रहें।
- गन्ने को जमीन की सतह से मिलाकर कटाई करें।

**वाटर शूट एवं कल्लों का प्रबन्धनः**

- अप्रैल व मई माह में कटाई तो करें पर उगने दें।
- दिसम्बर से मार्च तक काटे जाने की स्थिति में काट दें।

**खाली स्थानों को भरनाः**

- अच्छी पैदावार के लिए में लगभग 30 से 35000 झुण्ड प्रति है0।
- 50 सेमी या इससे अधिक खाली स्थान हो तो इन्हें बीज टुकड़ों अथवा पौध से भर दें।

**सूखी पत्ती का प्रबन्धन एवं अन्तःकर्षण :**

- कीट एव रोगों का प्रकोप हो तो सूखी पत्तियों को जलाएं।
- अन्यथा एकान्तर क्रम अन्तःकर्षण के साथ पलवार के रुप में प्रयोग करें तथा 25 किग्रा फोरेट प्रति है0 प्रयोग करें।

**पेड़ी में उर्वरक प्रबन्धनः**

- कटाई के पश्चात सिंचाई करें तथा ओट आने पर 200 किग्रा0 यूरिया, 375 किग्रा0 सिगल सुपर फास्फेट व 70 किग्रा0 म्यूरेट आफ पोटाश प्रति है0, कूड़ों में दें।

**खरपतवार नियंत्रणः**

- कर्षण क्रिया करें व सूखी पत्तियों को पलवार के रुप में प्रयोग करें।
- एटराजीन 2.0 कि0ग्रा0 सक्रिय तत्व को 600 से 800 लीटर पानी के साथ घोलकर प्रति है0 स्प्रे करें।

**फसल सुरक्षाः**

**दीमक का नियंत्रणः** क्लोरोपायरीफास 1.0 कि0ग्रा0 सक्रिय तत्व प्रति है0 का प्रयोग करें।

❖❖❖

# बीज उत्पादन के शस्य सिद्धांतः जानिए किसान अपने खेत में बीज कैसे तैयार करें

राजबीर सिंह, अयोध्या प्रसाद पाण्डेय एवं डी.पी. चतुर्वेदी
कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)

**1. बीज स्रोतः**

बीज में भौतिक एवं अनुवांशिक शुद्धता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि बीज किसी प्रमाणीकरण संस्था द्वारा मान्य स्रोत से प्राप्त किया जाए। आधार बीज उत्पादन के लिए प्रजनक या आधार बीज व प्रमाणित बीज उत्पादन के लिए आधार बीज का प्रयोग करना चाहिए।

**2. खेत का चुनावः**

बीज उत्पादन के लिए खेत का चयन करते समय बीज उत्पादक को यह ध्यान रखना चाहिए कि पिछले वर्ष वही फसल उस खेत में न उगाई गई हो जो इस वर्ष में बोना चाहते हैं। खेत की मृदा की किस्म व उर्वरता बीज फसल के अनुरूप हो तथा खेत में स्वयं उगे अन्य पौधों, खरपतवारों, मृदा–जनित कीड़ों व रोग से मुक्त हो।

**3. पृथक्करण दूरीः**

बीज फसल को उसी फसल की अन्य किस्मों से एक निश्चित दूरी पर उगाना चाहिए। जिससे कि बीज फसल में पर–परागण द्वारा होने वाले संदूषण, कटाई एवं गहाई के समय अन्य बीजों के मिश्रण तथा रोगों के फैलाव की रोकथाम की जा सके। इस दूरी को बीज फसल की परागण विधि व बीज वर्ग के आधार पर रखा जाता है।

| क्र. | फसल का नाम | पृथक्करण दूरी | |
|---|---|---|---|
| | | आधार बीज (मी.) | प्रमाणित बीज (मी.) |
| 1 | गेंहूँ, जौ, धान | 3 | 3 |
| 2 | मूंग, अरहर, मटर, चना | 10 | 5 |
| 3 | सोयाबीन, मूंगफली | 3 | 3 |
| 4 | सरसों | 100 | 50 |
| 5 | टमाटर | 50 | 25 |
| 6 | गाजर | 1000 | 800 |
| 7 | मक्का, बाजरा, सूरजमुखी | 400 | 200 |

**4. खेत की तैयारीः**

खेत की तैयारी अच्छी होनी चाहिए, इससे फसल के बीजों का अंकुरण अच्छा होता है, खरपतवारों की रोकथाम तथा भूमि में जल प्रबंधन अच्छा होता है।

**5. बुवाईः**

बीज उत्पादन के लिए फसल की बुवाई उपयुक्त समय पर उचित नम अवस्था में की जानी चाहिए। बीज उत्पादन के लिए बीज दर वाणिज्य फसल की अपेक्षा कम रखी जाती है। पंक्ति से पंक्ति व पौधे से पौधे की दूरी अधिक रखी जाती है, जिससे अवांछनीय पौधों को निकालने में सुविधा रहे।

**6. खाद एवं उर्वरकः**

बीज फसल में नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश जैसे प्रमुख पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा में आवश्यकता होती है। जिससे कि बीज फसल के पौधों व दानों का उचित विकास हो सके। इन पोषक तत्वों की पूर्ति जैविक खादों व उर्वरकों के द्वारा पूरी की जाती है। जैविक खाद बुवाई से एक माह पूर्व खेत में मिला देना चाहिए। धान्य फसलों में फास्फोरस व पोटाश की पूर्णमात्रा व नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई से पूर्व खेत की तैयारी करते समय व शेष मात्रा बुवाई के 30–40 दिन बाद और फूल आने से पूर्व दी जाती है।

**7. सिंचाई एवं जल निकासः**

बीज फसल से अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए कई सिंचाई करनी पड़ती हैं और कुछ फसलों में जल निकास की भी आवश्यकता होती है।

**8. फसल सुरक्षाः**

बीज फसल को खरपतवार रोग व कीड़ों से मुक्त रखने के लिए आवश्यकतानुसार निराई–गुड़ाई, कवकनाशकों तथा कीटनाशकों का छिड़काव करना चाहिए। अन्यथा फसल की उपज एवं गुणवत्ता में कमी आएगी।

**9. अवांछित पौधों को निकालनाः**

बीज फसल से पुष्पन से पूर्व अन्य किस्मों के पौधों, रोगी पौधों व खरपतवारों को निकाल देना चाहिए, जिससे पर परागण व रोगों के प्रसार से बीज खराब न होने पाए। शेष बचे अवांछनीय पौधों को बीज मिश्रण रोकने के लिए कटाई से पूर्व निकाल देना खहिए।

**10. कटाई व गहाईः**

बीज फसल की कटाई बीजों के पूर्णतः परिपक्व हो जाने पर व उचित नमी अवस्था होने पर की जाती है। अधिक नमी अवस्था में कटाई करने पर बीज संसाधन के समय बीज की क्षति होती है। जिससे बीज की अंकुरण क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

**11. बीज संसाधनः**

फसल की कटाई के समय जो बीज प्राप्त होता है, उसमें कंकड़, भूसी, खरपतवारों, अन्य किस्मों व फसलों के बीज, कीट एवं रोगों से क्षतिग्रस्त बीज मिले रहते हैं तथा बीज में नमी निर्धारित स्तर से अधिक होती है। ऐसे बीज को बोने से अंकुरण कम होता है और खड़ी फसल पर रोगों तथा कीड़ों का आक्रमण हो सकता है। अतः ऐसे बीज को सुधारा जाना आवश्यक है। बीज को सुरक्षित आर्द्रता मात्रा तक सुखाया जाता है, सफाई करके अशुद्धियाँ दूर की जाती हैं तथा कवकनाशकों एवं कीटनाशकों से उपचारित करके भंडारित किया जाता है।

agriBULL

India's No.1
Tractor Attachments

agri series range of products

Backhoe Dozer | Loader | Backhoe | Dozer | Backhoe Loader

प्रो. पुष्पेन्द्र पटेल

Unnati
Submersible Pump

अधिकृत विक्रेता:

पटेल एग्रीकल्चर एवं मशीनरी स्टोर्स

मो. 9893124531,9755344065

हालमार्क स्प्रिंग्लर उन्नति पम्प एवं सभी कृषि यंत्रों के विक्रेता

पता: गली नं. 3, न्यू राजेन्द्र नगर, सिविल लाइन्स, सतना (म.प्र.)

E-mail : pams18197@gmail.com

# स्वास्थ्यवर्धक तुलसी की खेती: कम पूँजी में अधिकतम लाभ

**राफिया अमीन**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

तुलसी की खेती सबसे सरल और कम लागत में की जा सकती है। यह विभिन्न औषधीय गुणों से भरपूर होती है और लगभग सभी घरों में पायी जाती है। किसान चाहे तो तुलसी की खेती करके भारी मुनाफा कमा सकता है।

तुलसी की ऑसीमम सैक्टम प्रजाति को तेल उत्पादन के लिए उगाया जाता है। तुलसी की इस प्रजाति की खेती भारत मे बड़े पैमाने पर होती है। उतर प्रदेश में बंदायू, मुरादाबाद और सीतापुर जिलों में तथा बिहार के मुंगेर जिले में इसकी खेती की जाती है। तुलसी का उपयोग एलोपैथी, होमियोपैथी व यूनानी दवाओं और कॉस्मैटिक प्रोडक्ट बनाने वाली सभी कंपनी को जरूरत होती है। तुलसी की फसल 3 माह मे तैयार हो जाती है।

## तुलसी की विभिन्न जातियों के वैज्ञानिक नाम:

ऑसीमम सैक्टम (काली तुलसी)
ऑसीमम वेसिलिकम (मरुआ)
ऑसीमम ग्रेटिसिकम (राम तुलसी / वन तुलसी / अरण्यतुलसी)
ऑसीमम किलिमण्डचेरिकम (कर्पूर तुलसी)
इनमे से ऑसीमम सैक्टम को प्रधान माना जाता है। गुण धर्म की दृष्टि से काली तुलसी को ही श्रेष्ठ माना जाता है।

## सेहत के लिए तुलसी के फायदे:

- बुखार, पेचिस और दाँत की समस्याओं के उपचार में इस पारम्परिक औषधि की मान्यता प्राप्त है।
- वातावरण सुंगंधित करने में इसका उपयोग किया जाता है ।
- मलेरिया और डेंगू बुखार को रोकने के लिए एक निरोधक के रूप में काम करती है।
- विशेष रूप से मधुमेह के इलाज के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।
- कब्ज के इलाज में तुलसी के बीज का उपयोग कर दवा तैयार की जाती है।
- तुलसी से त्वचा के कील–मुहाँसे के रोगों का भी इलाज होता है।
- तुलसी में एंटी–बैक्टीरियल तत्व होते हैं जिससे चोट ठीक हो जाती है।
- तेल और पत्तियों का उपयोग मिठाई, चाय, शीतल पेय व ऊर्जा पेय में भी किया जाता है।
- तुलसी के तेल का उपयोग टूथपेस्ट, बॉडीलोशन व साबुन में भी होता है।

## तुलसी की खेती:

**मृदा–** इसकी खेती के लिए जल की निकासी का उचित प्रबंध हो और बलुई दोमट मिट्टी इसके लिए बहुत उपयुक्त होती है। यह नम मिट्टी में स्वाभाविक रूप से बढ़ती है।

**बुवाई का समय–** वर्षा आधारित क्षेत्रों में जुलाई माह में और सिंचित क्षेत्रों में अक्टूबर–नवम्बर माह में इसकी बुवाई की जाती है।

**भूमि की तैयारी–** खेत को अच्छी तरह जोतकर और हैरो चलाकर क्यारियाँ बना ली जाती हैं। मिश्रित गोबर की खाद को मिट्टी में मिलाया जाता है। इसकी खेती बीज द्वारा होती है लेकिन खेतों में बीज की बुवाई सीधे नहीं करनी चाहिए।

**नर्सरी की तैयारी–** बीज क्यारियों में बोया जाता है। एक हेक्टेयर जमीन के लिए लगभग 20–30 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। बुवाई के बाद बालू और मिट्टी के मिश्रण की पतली परत को बीज के ऊपर फैलाया जाता है। बीज अंकुरण के लिए 8–12 दिन का समय लेते है और लगभग 6 सप्ताह के बाद पौधरोपण के लिए तैयार हो जाता है।

**रोपाई–** सिंचित क्षेत्रों में 6–10 से.मी. लम्बे अंकुरित पौधों को जुलाई या अक्टूबर–नवम्बर माह में खेतों में लगाया जाता है। इसकी रोपाई लाइन 60 सें.मी. कि दूरी पर करनी चाहिए तथा पौधे से पौधे 30 सें.मी. कि दूरी पर करनी चाहिए।

**खतपरवार नियंत्रण–** इसमें पहली निराई–गुड़ाई रोपाई के एक माह बाद करनी चाहिए। खरपतवारों की सभी पौधे हाथों से एकत्रित करके हटा दिया जाता है और अच्छे उत्पादन के लिए 4 से 5 बार निराई की आवश्यकता होती है।

**उर्वरक–** इसके लिए 10–12 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद डालनी चाहिए। इसके अलावा 40 कि.ग्रा. / हे. की मात्रा दी जाती है। पौधे के विकास के दौरान 40 कि.ग्रा. / हे. की मात्रा दो भागों में विभाजित करके दी जाती है।

**सिंचाई प्रबंधन–** रोपण के बाद विशेष रूप से मानसून के अंत के बाद खेत की सिंचाई की जाती है। गर्मियों में 3–4 बार आवश्यकतानुसार सिंचाई की जाती है।

**कटाई–** जब पौधे की पत्तियां बड़ी और पीली पड़ने लगें व पूरी तरह से फूल आ जाए तो इसकी कटाई 15 से 20 मीटर ऊँचाई से करनी चाहिए, क्योंकि शाखाओं को काटने के बाद बचे हुऐ तने की फिर से उत्पति हो सके। अंतिम कटाई के दौरान सम्पूर्ण पौधे को उखाड़ा जाता है।

## पैदावार:

इसकी फसल की औसत पैदावार 20–25 टन प्रति हेक्टेयर तथा तेल की पैदावार 80–100 कि.ग्राम हेक्टेयर तक होता है।

## तुलसी प्रोडक्ट:

- तुलसी पाउडर
- तुलसी कैप्सूल
- तुलसी अर्क
- तुलसी लिक्विड
- तुलसी सिरप

❖❖❖

# रजनीगंधा की व्यावसायिक खेती

**पूर्णिमा सिंह सिकरवार एवं बालाजी विक्रम**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

रजनीगंधा बहुवर्षीय, कन्दवाला व्यावसायिक फूल है। इसे अंग्रेजी में ट्यूबरोज कहते हैं। इसके फूल सिंगल, डबल, सेमीडबल एवं वैरीगेटेड होते हैं। फूल चिकने एवं सफेद रंग के होते हैं। सिंगल किस्मों में तेल एवं खुशबू की अच्छी गुणवत्ता होती है। तमिलनाडु राज्य इसके उत्पादन में अग्रणी है। कट फ्लावर, गुलदस्ता, माला, गजरा, सजावट एवं परफ्यूम में इसका प्रयोग बहुतायत से किया जाता है। इसमें 0.08 – 0.10 प्रतिशत तक सुगन्धित तेल प्राप्त होता है। रजनीगंधा की खेती कम लागत एवं कम जोखिम वाली एवं ज्यादा मुनाफे की खेती है। इसके पुष्पों की मांग लगातार बढ़ रही है।

**जलवायु :**

हल्की धूप युक्त खुला क्षेत्र रजनीगंधा के लिए आवश्यक है। अच्छी वृद्धि हेतु 20–25 से. तापक्रम उपयुक्त है। यह गर्म एवं नम जलवायु का पौधा है। मैदानी भागों में यह अप्रैल से नवम्बर तक आसानी से उगाया जा सकता है। रजनीगंधा छायायुक्त क्षेत्रों एवं बगीचे आदि क्षेत्रों में नहीं उगाना चाहिए। सफल उत्पादन हेतु खुले क्षेत्र आवश्यक हैं।

**भूमि एवं भूमि की तैयारी :**

रजनीगंधा के सफल उत्पादन के लिए बलुई दोमट जीवांशयुक्त भूमि सर्वोत्तम है। मृदा का पी.एच. मान सामान्य होना चाहिए। भूमि का जल निकास उत्तम होना चाहिए। भूमि को मिट्टी पलटने वाले हल से एक जुताई करके कम से कम 200–250 कु0 गोबर की सड़ी खाद प्रति हे0 मिला देनी चाहिए। इसके उपरान्त दो से तीन जुताइयां एवं पाटा लगाकर मिट्टी को भुरभुरा कर लेना चाहिए। यदि भूमि में दीमक आदि कीटों की सम्भावना है तो प्रति हे0 20–25 किग्रा. फालीडाल डस्ट का बुरकाव अन्तिम जुताई के समय कर देना चाहिए।

**प्रजाति वर्ग :**

फूलों की बनावट के आधार पर इसकी प्रजातियों को चार भागों में बांटा जाता है –

**इकहरी पंक्ति के फूल वाली किस्में–** ये किस्में मुख्यतः उगाये जाने वाले स्थानों के नाम से प्रचलित हैं, जैसे पंतनगर सिंगल, बंगलौर सिंगल, श्रृंगार आदि। इन प्रजातियों के पुष्पों में खुशबू अच्छी होती है। फूलों की पंखुड़ियां एक कतार में होती हैं। फूल एकदम सफेद रंग के होते हैं।

**दोहरी पंक्ति के फूल वाली किस्में–** इन प्रजातियों को मोती के नाम से जाना जाता है। फूल सफेद रंग के साथ हल्का गुलाबी रंग लिए होते हैं। खुशबू अपेक्षाकृत कम होती है। पंखुड़ियां एक होल में होती हैं। आसानी से हर होल अलग किया जा सकता है। कलकत्ता डबल, बंगलौर डबल, सुभाषिनी आदि कई किस्म इस वर्ग में आती हैं।

**अर्द्ध दोहरी फूलों वाली किस्में–** इन प्रजातियों में फूल डबल की तरह आते हैं, परन्तु पंखुड़ियों की संख्या डबल से कम होती है। जैसे कलकत्ता सेमी डबल प्रजाति।

**रंग बिरंगी फूलों वाली किस्में–** इनमें फूल डबल एवं सिंगल सफेद रंग के ही होते हैं। पत्तियों के बीच का भाग हरा व बाहरी किनारा सफेद अथवा बीच का भाग हरा एवं बाहरी किनारा सुनहरा होता है। यह प्रजातियां पत्ती एवं फूल दोनों आकर्षण हेतु उगायी जाती हैं। स्वर्ण रेखा, रजत रेखा जैसी प्रजातियां बाजार की मांग के अनुरूप हैं। प्रजातियों का चयन स्थान, मांग एवं उद्देश्य को देखते हुए करना चाहिए। खुशबूदार एवं फूलों के उत्पादन हेतु सिंगल या इकहरी पंक्ति के फूलों वाली किस्में जैसे श्रीनगर अधिक उपयुक्त हैं। कोलकाता डबल तथा स्वर्णलता दोहरी पंक्ति के फूलों वाली किस्में स्पाइक उत्पादन में उत्तम है। परन्तु इनमें खुशबू कम होती है।

**उर्वरकः**

गोबर की सड़ी खाद खेत तैयारी के समय देने के अलावा उर्वरकों की भी अच्छे उत्पादन में आवश्यकता होती है। रजनीगंधा में भूमि की उर्वराशक्ति एवं फसल विधि के अनुसार उर्वरकों को प्रयोग किया जाना चाहिए। सामान्यतः नत्रजन 100–150 किग्रा, फास्फोरस 100 किग्रा, एवं पोटाश 100 किग्रा प्रति हे0 की आवश्यकता होती है। फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा खेत तैयारी के समय अन्तिम जुताई के समय देना चाहिए और पाटा लगा देना चाहिए। परीक्षणों के आधार पर पाया गया है कि नत्रजन को कन्दों की बुवाई से पूर्व प्रयोग करने से फूलों के ऊपर कोई विशेष प्रभाव नही पड़ता है। अतः नत्रजन को तीन बार में प्रथम कन्द बुवाई के समय, दूसरा रोपाई के एक माह बाद तथा तीसरा रोपाई के तीन माह बाद प्रयोग करने से फूलों एवं कन्दों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

**कन्दों का रोपणः**

पुरानी फसल के बल्ब एवं बल्बलेट्स प्राप्त करने के उपरान्त कन्दों को अलग–अलग कर लिया जाता है। आकार के अनुसार उनकी ग्रेडिंग (श्रेणीकरण) कर दी जाती है। प्रति हे0 8–9 कु0 कन्दों की आवश्यकता होती है। औसतन 2 सेमी व्यास वाले लगभग 40 ग्राम वजन के कन्द बुवाई हेतु उपयुक्त पाये गये हैं। कन्दों की बुवाई से पूर्व किसी अच्छी फफूंदीनाशक दवा से कन्दों को शोधित करके बुवाई करनी चाहिए तथा साथ ही अच्छे उत्पादन हेतु कन्दों को एजोटोबैक्टर से उपचारित कर लिया जाता है।

मैदानी भागों में कन्द लगाने का उचित समय अप्रैल माह है। कन्द रोपण के समय भूमि में उचित नमी आवश्यक है। कन्द की लाइन से लाइन 25 सेमी एवं कन्द से कन्द की दूरी 10–12 सेमी. रखनी चाहिए। कन्दों को 5 सेमी गहराई में लगाना चाहिए।

**सिंचाईः**

कन्द रोपण के उपरान्त जब तक अंकुरण न हो जाए, खेत में

सिंचाई नहीं करनी चाहिए। अच्छी फसल हेतु गर्मियों में प्रति सप्ताह सिंचाई करनी चाहिए। जाड़ों एवं वर्षा ऋतु में आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए, ताकि भूमि में नमी की कमी न होने पाये।

**खरपतवार नियंत्रणः**

पहली सिंचाई के उपरान्त खेत में खरपतवार उग आते हैं। अतः एक या दो सिंचाइयों के बाद खरपतवार निकालने के साथ–साथ पौधों पर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। इससे पौधों की वृद्धि अच्छी होती है। फूल आने की अवस्था में भी मिट्टी चढ़ाना आवश्यक है। इससे फूलवाली डन्डी के गिरने से बचाव हो जाता है। खरपतवार में कमी लाने हेतु कन्दों के अंकुरण से पूर्व पेंडीमेथलीन दवा की 1.25 किग्रा. मात्रा की 800 ली0 पानी में मिलाकर प्रति हे0 छिड़काव कर देना चाहिए।

**फसल सुरक्षाः**

रजनीगंधा में मुख्यतः फफूंदी (फ्यूजेरियम) रोग से क्षति पहुंचती है। इससे स्पाइक टेढ़ी हो जाती है। उपचार हेतु भूमि शोधन एवं बुवाई से पूर्व कन्द को फफूंदीनाशक दवा के 0.2 प्रतिशत घोल से तीस मिनट तक उपचारित कर लेना चाहिए। स्पाइक एवं पत्तियों पर काले धब्बों का प्रकोप देखते ही फफूंदी नाशक दवाओं का छिड़काव करना चाहिए अन्यथा फूल सड़कर गिरने लगते हैं। फसल में कभी–कभी थ्रिप्स, एफिड तथा माइट का प्रकोप होने लगता है। इससे बचाव हेतु नुवाक्रान अथवा मेलाथियान के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव आवश्यकतानुसार करना चाहिए।

**फूलों की कटाई एवं भंडारणः**

कन्द रोपण के तीन माह बाद फूल तैयार हो जाते हैं। स्पाइक के प्रथम पंक्ति के फूल खिलने के बाद यह काटने योग्य हो जाती हैं। माला, गजरा आदि प्रयोग हेतु फूलों के खिलते ही तुड़ाई कर ली जाती है और इन्हें 10–15 किग्रा क्षमता वाली बांस की टोकरियों में एकत्र कर लिया जाता है। इन स्पाइकों से ऊपरी अन्तिम फूलों की तुड़ाई के उपरान्त स्पाइक को जमीन से 5 सेमी. ऊपर से काट दिया जाता है। कट फ्लावर के प्रयोग हेतु स्पाइक की कटाई नीचे प्रथम पंक्ति फूल खिलने पर की जाती है। कटाई तेज चाकू अथवा सेकेटियर से की जाती है। कटाई अथवा फूलों की तुड़ाई प्रातः अथवा सायंकाल करनी चाहिए।

**उपजः**

रजनीगंधा की औसतन 2–2.25 लाख स्पाइक प्रति हे0 प्राप्त हो जाती है। उपज कन्द रोपण दूरी पर भी निर्भर करती है। फूलों की सीधी तुड़ाई में 15–20 टन लूज फ्लावर प्रति हे0 प्राप्त हो जाते हैं। प्रति हे0 फसल में 20–25 टन कन्द एवं बल्बलेट्स प्राप्त हो जाते हैं, जिसमें अनुमानित 50 प्रतिशत कन्द रोपाई हेतु उपयुक्त होते हैं। कन्दों का प्रयोग अगली फसल बिक्री हेतु कर लिया जाता है।

❖❖❖

# किसानों के लिए उपहार: बागवानी फसलों के रोगों की ट्राइकोडर्मा (बायोएजेंट) कवक के द्वारा रोकथाम

**ज्योति पाण्डेय**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

ट्राइकोडर्मा एक धागेनुमा कवक है। यह मृदा और विभिन्न पौधों के राइजोस्फियर में पाया जाता है। यह एस्कोमाइसिटीज का एक बड़ा समूह है जिसमें 250 से ज्यादा स्पीसीज शामिल हैं। कुछ ट्राइकोडर्मा स्पीसीज आर्थिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे इंडस्ट्रीयल एंजाइम और एण्टीबायोटिक उत्पादित करता है। इनको पादप रोगजनक के विरूद्ध बायोकण्ट्रोल के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। ट्राइकोडर्मा को विधिक कवक माइक्रोबियल समुदाय में शामिल किया जाता है। इन्हें पादप विकास को बढ़ावा देने के लिए प्रमुख एजेंट के रूप में उनके बहुमुखी विकास के लिए दुनिया भर में जाना जाता है। इनका व्यापक रूप से एंजाइम के स्रोत के रूप में कई उद्योगों में उपयोग किया जाता है। अनुसंधान समूह बड़ी संस्था में ट्राइकोडर्मा की विविधता, पारिस्थितिकी और उनके अनुप्रयोगों के विभिन्न क्षेत्र में काम कर रहे हैं। ट्राइकोडर्मा हार्जियानम और ट्राइकोडर्मा विरिडी व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली प्रजातियां हैं। यह किसानों के लिए खेती में अच्छे उत्पादन की सस्ती एवं सरल विधि हैं।

पादप रोग किसानों के लिए खेती की प्रमुख समस्याओं में से एक है। यह समस्या दुनिया भर में व्याप्त है, जिनके कारण कृषि उत्पादन में बहुत बड़ा नुकसान होता है। लगातार बढ़ती आबादी के लिए बाजार में उपज की एक स्थिर और निरंतर आपूर्ति को सुनिश्चित करने के लिए इन पादप रोगों को नियंत्रित करने की आवश्यकता है। रोग प्रबंधन के लिए किसानों द्वारा रसायनों के बढ़ते उपयोग ने मृदा एवं पर्यावरण की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव डाला है। इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए कुछ ऐसे जीवित सूक्ष्मजीवों को खोजा गया जो इन रसायनों के लिए प्रतिरोधी हैं और इसी के साथ इसमें जैविक नियंत्रक कारकों का उपयोग शामिल है। जैविक नियंत्रक ट्राइकोडर्मा प्रजातियों का व्यापक रूप से उपयोग पौधों के कवक रोगों के प्रबंधन में किया जाता है।

एक अध्ययन से पता चला कि इनका उपयोग मृदा संबंधी रोगों के विरूद्ध भी बहुत सफल रहा है। बीज या मृदा अनुप्रयोग द्वारा बहुत सी प्रभावशीलता का पता चलता है कि क्या ये जैविक नियंत्रक फसल पौधों में रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करते हैं। राइजोबैक्टीरिया के समान, ट्राइकोडर्मा प्रजातियों को पादप विकास को बढ़ावा देने वाले एजेंट के रूप में शामिल किया गया है। इसे एकीकृत रोग प्रबंधन विधि के रूप में भी शामिल किया गया है। ट्राइकोडर्मा प्रजातियों के खिलाफ अलग–अलग कीटनाशकों की जांच में कम जोखिम वाले कीटनाशक कैप्टॉन और मैन्कोजेब, बेनोमिल, थीरम, उच्च जोखिम वाले कार्बेन्डिाजिम और क्लोरपायरीफास की पहचान की गई। इस लेख में विभिन्न प्रकार के रोगजनकों पर ट्राइकोडर्मा के प्रभाव एवं उपयोग को बताया गया है।

**सब्जी की फसलें:**

टमाटर, बैगन और शिमला मिर्च के रोगों के प्रबंधन में ट्राइकोडर्मा हार्जियानम प्रभावी पाया गया है। टमाटर देश के लगभग सभी भागों में उगाई जाने वाली एक महत्वपूर्ण फसल है। टमाटर की फसलें कुछ रोगों से अत्यधिक ग्रसित होती हैं, जैसे कि फाइटोथ्योरा इनफेसटेंस के द्वारा लेट ब्लाइट रोग (पछेती झुलसा) आल्टरनेरिया सोलेनाई के द्वारा अर्ली ब्लाइट (अगेती झुलसा) फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम एफ.एस.सी. लाइकोपर्सिसी की वजह से जड़ गलन तथा विगलन रोग और रालस्टोनिया सॉलेनेसियेरम के कारण बैक्टीरियल विल्ट। रोगजनक कवकों के कारण होने वाले रोग प्रबंधन के लिए चुनौती बने हुए हैं। ट्राइकोडर्मा हार्जियानम और ट्राइकोडर्मा विरिडी जैसी कई प्रजातियों के उपयोग ने न केवल रोग की घटनाओं को कम किया है बल्कि सब्जियों की पैदावार में वृद्धि भी की है।

टमाटर और फूलगोभी में ट्राइकोडर्मा प्रजातियों के समान प्रभाव ने रोग को नियंत्रित किया है। ट्राइकोडर्मा विरिडी की तुलना में ट्राइकोडर्मा हार्जियानम को ज्यादा प्रभावी पाया गया है। प्रयोगशाला अध्ययन से पता चला है कि टमाटर में डंपिंग ऑफ रोग के नियंत्रण के लिए ट्राइकोडर्मा हार्जियानम स्ट्रेन एम वाहक आधारित सूत्रीकरण विकसित किया गया है। फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम एफ.एस.सी. लाइकोपर्सिसी के कारण टमाटर के जड़ गलन तथा विगलन रोग के प्रबंधन के लिए जैव विज्ञान और जैविक संशोधनों का उपयोग लाभकारी है।

**बैंगन के रोग:**

बैंगन देश की सबसे अधिक मात्रा में उगाई जाने वाली दूसरी सब्जी फसलों में से एक है। कोलेटोट्रिकम, ग्लियोस्पोरियोइड्स, पेनीसिलियम स्पसीज, फ्यूजेरियम सोलेनाई, आल्टरनेरिया सोलानी इसके महत्वपूर्ण रोगजनक हैं। ये पूरे साल बैंगन के फल को नुकसान पहुंचाते हैं। ट्राइकोडर्मा विरडी रोगों को कम करने में सबसे अधिक प्रभावी है। बैगन के लीफ धब्बे रोग के प्रबंधन में भी ट्राइकोडर्मा का उपयोग लाभकारी है। बहुत से शोधकर्ताओं के द्वारा प्रयोगशाला में इन–विट्रो परिस्थितियों में यह सिद्ध किया गया है कि ट्राइकोडर्मा हार्जियानम बैंगन के रोगों को नियंत्रित करने में सक्षम है।

**प्याज के रोग:**

प्याज भारत की एक महत्वपूर्ण फसल है, जिसका पूरे देश में सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है। इसमें लगने वाले प्रमुख रोग जैसे– फोलियर ब्लाइट रोग जो कि अल्टरनेरिया अल्टरनेटा द्वारा होता है। प्याज के बैंगनी रंग के धब्बे जो कि अल्टरनेरिया पोरी द्वारा

और डंपिंग ऑफ रोग पिथियम प्रजाति के द्वारा होता है। प्याज के बैंगनी धब्बे के नियंत्रण के लिए व्यापक रूप से अध्ययन किया गया है। ट्राइकोडर्मा हार्जियानम, ट्राइकोडर्मा विरडी और टीवी–12 के प्रभावी आइसोलेट्स, रोग में कमी और पौधे के विकास को बढ़ावा देने के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

**फलदार फसलें:**

अमरुद एक फलदार फसल है, जिसका फलों के साथ–साथ सब्जियों के रूप में भी उपयोग होता है। इसमें सबसे ज्यादा बीमारी तब लगती है जब अमरुद को भण्डारण में रखना हो। फाइटोप्थोरा, मैक्रोफोमिना कवक और विभिन्न अन्य कीट फसल कटाई के बाद फलों को खेत और भण्डारण में खराब कर देते हैं। ग्लोकैलेडियम रोसेयम भी फ्यूजेरियम ओक्सीस्पोरम एफ.एस.पी. पिसिडी और फ्यूजेरियम सोलेनाई के अलावा सबसे शक्तिशाली रोगजनक के रूप में जाना जाता है। पादप रोग प्रबंधन में शोध के दौरान अमरुद की बीमारियों को भी ट्राइकोडर्मा तकनीकि द्वारा नियंत्रित करने का प्रयास किया गया है। ट्राइकोडर्मा रोग नियंत्रक के साथ–साथ अमरुद के विकास में भी महत्वपूर्ण है।

**आम के कीटों एवं रोगों पर नियंत्रण:**

आम विभिन्न प्रकार के रोगजनकों द्वारा प्रभावित होकर रोग ग्रस्त हो जाता है, जिससे आम के उत्पादन में बहुत आर्थिक नुकसान होता है। जैसे कि फ्यूजेरियम मोनिलिफॉर्म उपप्रजाति सबग्लोटिनुस आम में रोगजनक का कार्य करता है। इस रोग को कन्ट्रोल करने के लिए ट्राइकोडर्मा हार्जियानम का उपयोग किया जा सकता है।

ट्राइकोडर्मा को आम के अल्फिसोल किस्म में स्क्लेरोसियम रॉल्फसिआई की रोकथाम के लिए उपयोग किया गया और सकारात्मक परिणाम पाये गये।

**कार्यप्रणाली तकनीकि:**

ट्राइकोडर्मा की आन–फॉर्म उत्पादन (ओ.एफ.पी.) पद्धति सरल और कम लागत वाली है यह पद्धति निम्नलिखित चरणों में पूरी होती है।–

- ऑटोक्लैवेबिल बैग (7×11) में लगभग 200 ग्राम अनाज लें और बराबर मात्रा में शुद्ध जल डालें।
- बैग भरने के बाद बैग के मुँह के शीर्ष पर 1.5 इंच का पीवीसी पाईप रखें और इसे रबर से बांध दें।
- बंद पीवीसी पाइप के खुले मुँह को बंद करें। बंद करने के लिए रुई के प्लग का उपयोग करें।
- दानों से भरे बैग को 10–20 लीटर प्रेशर कुकर में एक–तिहाई पानी से भरकर पानी के साथ 40 मिनट तक उबालें।
- धीमी आँच पर उबलने के बाद बैग को कमरे के तापमान पर ठंडा करें।
- एक लकड़ी का कक्ष हो वहां बैग को स्थानान्तरित करें। लगभग 5 से 10 मिनट तक लकड़ी का इनोक्यूलेशन कक्ष में बंद करने के बाद स्पिरिट लैंप जलाना चाहिए, जिससे काम करते समय किसी भी प्रकार के सूक्ष्मजीव इसे प्रभावित न करें।
- अब कक्ष के अंदर प्रत्येक बैग में ट्राइकोडर्मा मदर कल्चर के छोटे टुकड़ों को इनोक्यूलेशन लूप की मदद से डालें। अनाज में कवक को अच्छी तरह मिलाने के लिए अच्छी तरह से बैग को हिलाएँ।
- सभी बैग को कमरें में 25 डिग्री से 30 डिग्री से. तापमान पर रखें।
- कवक वृद्धि के लिए निरिक्षण करें और बैगों को बार बार हिलाएँ नहीं।
- एक बार जब ट्राइकोडर्मा के बीजाणु बनने लगते हैं, तो दानों का रंग हरा हो जाता हैं।
- इस अवस्था को बनाये रखने के लिए और अधिक वृद्धि के लिए 5 से 7 दिन तक वैकल्पिक दिनों में बैग को हिलाएँ।
- दानों पर जब ट्राइकोडर्मा पूरी तरह विकसित हो जाए तब ट्राइकोडर्मा कवक वृद्धि के साथ दानों को बीजाणुओं के साथ साफ प्लास्टिक ट्रे में स्थानान्तरित करें और इसे ब्लॉट पेपर से कवर करें।
- कमरे के तापमान पर लगभग 3–4 दिनों के लिए इन प्लास्टिक ट्रे को और अधिक बीजाणुओं की वृद्धि और सुखाने के लिए रखें।
- वृद्धि को और अधिक बनाएं रखने के लिए 3–4 दिन में बैग को हिलाते रहें, जिससे वह अधिक वृद्धि कर पाएं और सूख जाएं।
- यह सूखा ट्राइकोडर्मा पाउडर पिसे हुए महीन चूर्ण के रूप में बीज उपचार में उपयोग के लिए तैयार होगा।
- ट्राइकोडर्मा ग्रेन्युल्स को इसी अवस्था में मृदा के लिए खाद्य में मिलाकर प्रयोग करें।
- लगभग 500 ग्राम सूखे ट्राइकोडर्मा के कवक एवं बीजाणु का उत्पादन एक किलोग्राम ज्वार के दानों से किया जा सकता हैं जिसे 100 किलोग्राम अच्छी तरह से विघटित खाद्य में मिलाने के बाद सीधे एक हैक्टेयर के लिए मृदा में इस्तेमाल किया जा सकता हैं।

**ट्राइकोडर्मा को प्रयोग करने की विधि:**

**बीज उपचार–** बुआई से पहले प्रति किलोग्राम बीज में 4–10 ग्राम पाउडर मिलाएं।

**नर्सरी उपचार–** नर्सरी क्यारी में प्रति 100 मीटर पर 10–25 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर का प्रयोग करें। ट्राइकोडर्मा पाउडर को गोबर की खाद्य के साथ प्रयोग करें तो प्रभाव ज्यादा पड़ता हैं।

**कटिंग और पौधा उपचार–** 100 ग्राम अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति लीटर पानी के साथ ट्राइकोडर्मा पाउडर 10 ग्राम मिलाकर उसमें कटिंग को रोपण से पहले 10 मिनट के लिए डुबोएं।

**रोपण मृदा उपचार–** 100 किलोग्राम खाद में 1 किलोग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर मिलाएं और इसे 7–10 दिनों तक पॉलिथीन के साथ कवर करें। पानी छिड़कते रहें। मिश्रण को हर 3–4 दिनों के अंतराल में घुमाएं और मैदान में प्रसारित करें।

ट्राइकोडर्मा सभी प्रकार की फल व सब्जियों, जैसे– फूलगोभी, कपास, तम्बाकू, सोयाबीन, गन्ना, बैंगन, टमाटर, मिर्च, आलू, प्याज, नींबू आदि पर रोग नियंत्रण में सबसे उपयोगी है।

**रोग नियन्त्रण:** यह एक शक्तिशाली बायोकंट्रोल एजेंट है।

❖❖❖

# कुंदरु की खेती से कम लागत में अधिक लाभ

**बालाजी विक्रम एवं पूर्णिमा सिंह सिकरवार**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

कुंदरु का वानस्पतिक नाम काक्सीनिया ग्रैंडिस या काक्सीनिया इंडिका है। यह एकलिंगाश्रयी पौधा है जिसमें नर और मादा पुष्प अलग–अलग पौधों पर आते हैं। इसकी खेती हमारे यहाँ उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश में बहुतायत से की जाती है।

## जलवायुः

कुंदरु की खेती जायद व खरीफ (वर्षा ऋतु) मौसम में की जाती है। कुंदरु की बुवाई के समय वायुमण्डल का तापमान 18–20 डिग्री से. होना चाहिए। बीजों के अंकुरण होने से फूल निकलने की अवस्था तक के तापमान का प्रभाव पैदावार पर पड़ता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि बुवाई के 60 दिन के बाद तापमान के अधिक होने पर औसतन वृद्धि और पैदावार पर प्रभाव पड़ता है। वातावरण नम होने से रोग अधिक लगते हैं तथा फलों का विकास अवरूद्ध हो जाता है।

## खेत की तैयारीः

कुंदरु की खेती के लिए खेत की तैयारी जनवरी–फरवरी/जून के दूसरे या तीसरे सप्ताह में की जाती है। इस समय नमी कम होती है, अतः खेत में पलेवा करने की आवश्यकता होती है। पलेवा करने के बाद जैसे ही भूमि जुताई योग्य हो जाए, मिट्टी पलटने वाले हल से लगभग 15 सेमी. गहरी जुताई करनी चाहिए, ताकि खरपतवार आदि दब जाए। फिर दो या तीन बार हैरो करने की आवश्कता पड़ सकती है। अगर खेत ऊंचा–नीचा हो तो उसे समतल करना अत्यन्त आवश्यक है। समतल करने के उपरान्त खेत में मेंड़ व नालियां बना लेते हैं।

## मृदाः

बलुई दोमट तथा सिल्ट दोमट में इन फसलों की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है, परन्तु नदियों के किनारे कछार वाली मिट्टी में भी इन फसलों को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इन मिट्टियों का पी.एच. मान 6–7 तक अच्छा माना जाता है।

## कुंदरु की उन्नतशील प्रजातियाँ :

**1. वी.आर.के. 20–** यह किस्म काफी अगेती है। फल की लम्बाई 6–8 सेमी. तथा मोटाई 2.7 सेमी. होती है। प्रत्येक फल का औसत वजन 20 ग्राम होता है। इसकी औसत उपज क्षमता 300–350 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है।

**2. वी.आर.के. 31–** इसके फल थोड़ी मोटाई लिए होते हैं और फलों का ऊपरी सिरा पतला होता है। प्रत्येक फल का वजन 25–30 ग्राम होता है। औसत उपज 325–350 कुन्तल प्रति हेक्टेयर होती है।

**3. वी.आर.के. 35–** इसमें फल बहुत अधिक लगते हैं। फलों का आकार मध्यम होता है तथा उनकी सतह पर हल्के हरे एवं सफेद रंग के धब्बे पाए जाते हैं। प्रत्येक फल का वजन 15–18 ग्राम होता है। फलों की लम्बाई 6 सेमी. होती है। औसत उपज 250 कुन्तल है।

**4. वी.आर.के. 37–** इस किस्म के फल गोलाकार होते हैं। फलों की मोटाई 1.9 सेमी. व प्रत्येक फल का औसत वजन 16 ग्राम है। इस किस्म का औसत उपज 350–400 कुन्तल प्रति हेक्टेयर है।

## बुवाई का समयः

मैदानी क्षेत्रों में बुवाई ग्रीष्म ऋतु के लिए फरवरी–मार्च तथा वर्षा ऋतु के लिए जून–जुलाई में तथा पहाड़ी क्षेत्रों के लिए मार्च से अप्रैल तक करते हैं।

## बीज की मात्राः

एक हेक्टेयर खेत की बुवाई के लिए 3–4 किग्रा बीज की आवश्यकता पड़ती है।

## बीज उपचारः

फफूंदीनाशक रोगों के कारण कभी–कभी कुंदरु की फसल में काफी हानि हो जाती है। इन रोगों से फसल को बचाने के लिए पूर्व में ही सावधानी बरतनी चाहिए। इसके लिए थीरम या कार्बेन्डाजिम की 2.5 ग्राम मात्रा से प्रति किग्रा. बीज को उपचारित करना लाभदायक होता है।

## बुवाईः

अच्छी प्रकार से तैयार किये गये खेत में 1.25–1.50 मीटर की दूरी पर 70–75 सेमी. चौड़ी नाली बनाकर नालियों के दोनों किनारों पर 45–60 सेमी. की दूरी पर बुवाई करते हैं। एक स्थान पर 2–3 बीज तथा 3–5 सेमी. की गहराई पर लगाना चाहिए।

## खाद का प्रबन्धनः

साधारणतया खेती की तैयारी के समय गोबर की सड़ी खाद

200–250 कुंतल प्रति हेक्टेयर तक देना लाभप्रद रहता है। कुंदरु की अधिक उपज के लिए 60 किग्रा. नत्रजन, 40 किग्रा. फास्फोरस तथा 40 किग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। सम्पूर्ण गोबर की खाद, फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की 1/3 मात्रा को अंतिम जुताई के समय खेत में मिला देना चाहिए तथा शेष 2/3 नत्रजन की मात्रा को दो बराबर भागों में बांटकर टापड्रेसिंग के रूप में प्रथम बार बुवाई के 25–30 दिन बाद तथा 40–45 दिन पर फूल आने के समय देना चाहिए।

### शस्य क्रियायें एवं खरपतवार नियंत्रणः

कुंदरु के जमाव से लेकर शुरुआत के 30–35 दिनों तक निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों को निकाल देना चाहिए। यदि किसान के पास मजदूरों का अभाव हो तो रासायनिक खरपतवारनाशी का प्रयोग करना चाहिए। रासायनिक खरपतवारनाशी के रूप में पेंडीमेथीलीन 3.3 ली0 प्रति हे0 की दर से 1000 ली0 पानी में मिलाकर जमीन के ऊपर बुवाई के 48 घंटे के भीतर छिड़काव करना चाहिए। इससे बुवाई के लगभग 30–35 दिन बाद खरपतवारों का नियंत्रण हो जाता है। बुवाई के लगभग 30–35 दिन बाद नालियों व थालों की गुड़ाई करके मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। इससे पौधों का विकास अच्छा होता है।

### सिंचाईः

कुंदरु की खेती जब बरसात में की जाती है, उस समय फसल की सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। लेकिन मौसम जब सूखा रहता है तो आवश्यकतानुसार पानी लगाते हैं। ग्रीष्मकाल में उगाई जा रही फसल में 4–7 दिन के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। तीन अवस्थाओं तना बढ़ते समय, फूल आने से पहले तथा फल विकास की अवस्था पर पानी की कमी होने पर, उपज में भारी कमी हो जाती है। इसलिए उपयुक्त तीन अवस्थाओं पर पानी की कमी नहीं होने देना चाहिए।

### फलों की तुड़ाई व उपजः

बाजार मांग की आवश्यकतानुसार फल की कच्ची अवस्था में तुड़ाई करते हैं। कच्चे फल के लिए फल लगने के 7–10 दिन के भीतर तुड़ाई करते हैं। इस फल को किसी तेज धारदार चाकू से इस प्रकार पौधे से अलग करना चाहिए कि पूरे पौधे को झटका न लगे अन्यथा पूरा पौधा सूख सकता है। फलों की तुड़ाई सुबह या शाम के समय पर करनी चाहिए। इसमें पानी के छींटे देकर कुछ समय तक छाया में भंडारित किया जाता है। तोड़ने के उपरान्त इन्हें जल्दी से जल्दी बाजार पहुंचा देना चाहिए नहीं तो इसकी गुणवत्ता पर असर पड़ेगा और बाजार मूल्य अच्छा नहीं प्राप्त होगा। इसकी औसत उपज प्रति हेक्टेयर 150–200 कुन्तल तक प्राप्त हो जाती है।

❖❖❖

# कुदरत का करिश्मा–कटहल

**बिनीता देवी, आशुतोष कुमार एवं रमा शर्मा**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

फलों में कटहल, कुदरत का एक अद्भुत करिश्मा है। इस फल की जन्म–स्थली भारत की पवित्र धरती है। यह सत्य है कि विश्व में सर्वप्रथम इसकी बागवानी की शुरूआत भारत से ही हुई थी। इसकी बागवानी बिना किसी विशेष देखभाल के की जा सकती है। कटहल के कच्चे एवं पके दोनों प्रकार के फलों की विशेष अहमियत है। कच्चे फलों की सब्जी तथा अचार बहुत लोकप्रिय है परंतु पके फलों का कोया बड़े चाव से खाया जाता है। इसके कोये से शर्बत, पापड़, नेक्टर एवं जैम भी तैयार किये जाते हैं। कटहल के पुराने वृक्षों की लकड़ी प्राकृतिक पीले रंग की उच्च कोटि की होती है। कटहल का वृक्ष सदाबहार प्रकृति का होता है। इसकी छाया शीतल होती है तथा हरी पत्तियाँ पशुओं के लिए पौष्टिक चारा हैं। भारत में असम सबसे बड़ा कटहल उत्पादक राज्य है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल और दक्षिणी भारत के राज्यों में भी इसकी बागवानी बड़े पैमाने पर होती है। आवश्यकता इस फल की उन्नत किस्मों की व्यावसायिक बाग लगाने की है तथा कटहल पर आधरित अचार, शर्बत, नेक्टर तथा जैम बनाने के उद्योग लगाने की है।

## कुदरत का करिश्मा–कटहलः

यह बात सत्य है कि कटहल को प्रकृति ने कुछ विशिष्ट गुणों से नवाजा है जो अन्य फलों में दुर्लभ सा है। इस फल को बनाने में कुदरत ने क्या करिश्मा दिखाया है वह नीचे वर्णित हैः

- कटहल को अंग्रेजी में जैकफ्रूट तथा वानस्पतिक भाषा में आरट्रोकारपस हेटरोफाइलस कहते हैं, जो मोरेसी पौध कुल का सदस्य है।
- कटहल के वृक्षों पर मुख्य तनों तथा टहनियों पर पुष्प वृन्त इंफ्लोरिसेंस पैदा होते हैं।
- नर तथा मादा पुष्प अलग–अलग पुष्प–वृन्तों पर लगते हैं, जिसे नर तथा मादा लेंढ़ा कहते हैं। नर लेंढ़ा परागण के बाद सूख कर झड़ जाते हैं तथा मादा लेंढ़ा फल के रूप में विकसित होते हैं।
- कटहल का मादा–पुष्प–वृन्त एक फल के रूप में विकसित होता है जिसे सोरोसिस कहते हैं।
- कटहल का फल, दुनिया के सभी फलों में सबसे बड़ा और भारी होता है। इसके फलों का वजन कम से कम 2 किलो तथा अधिक से अधिक 40–50 किलो तक होता है जो किस्मों पर निर्भर करता है।
- कटहल के फल साधरणतया तनों पर जमीन के उपर लगते हैं, परन्तु कभी–कभी फल जमीन के भीतर भी पैदा हो जाते हैं, जिसकी जानकारी वहाँ की जमीन फट जाने से होती है ।
- कटहल के कच्चे फलों की स्वादिष्ट सब्जी तथा अचार बनता है, परन्तु पके फलों का स्वादिष्ट कोया खाया जाता है और उससे शर्बत, पापड़, नेक्टर एवं जैम बनाया जाता है।
- कटहल के बीजों की सब्जी उच्च कोटि की होती है।
- कटहल के एक पौढ़ वृक्ष पर 4–5 क्विंटल फल लगते हैं जो अन्य फलों से सम्भव नहीं है।
- कटहल के पुराने वृक्षों की पीले रंग की लकड़ी, चौखठ, खिड़की, दरवाजे तथा अन्य घरेलू समान बनाने के लिए उच्च गुणवत्ता वाली होती है ।
- कटहल के वृक्षों की अगस्त महीने में कांट–छांट करने पर जलावन के लिए लकड़ी मिल जाती है तथा पत्तियाँ चारे के रूप में प्रयोग की जाती है।

## उपयुक्त जलवायुः

कटहल की बागवानी मैदानी भागों से लेकर समुद्र तल से लगभग 1000 मीटर की ऊँचाई तक पहाड़ों पर भी की जा सकती है। शुष्क और आर्द्र दोनों प्रकार की जलवायु में यह पैदा होता है। परंतु नम और उष्ण जलवायु इसके लिए सबसे उपयुक्त होती है। यद्यपि यह फल विपरीत परिस्थितियों को काफी बर्दाश्त करता है, लेकिन छोटे पौधें को पाला से नुकसान पहुँच सकता है।

## भूमि का चुनावः

कटहल सभी प्रकार की भूमि में पैदा होता है किन्तु गहरी दोमट भूमि इसकी बागवानी के लिए सबसे उपयुक्त होती है। मिट्टी की गहराई कम से कम तीन मीटर होनी चाहिए और पानी का निकास अच्छा होना चाहिए। कटहल की सफल बागवानी के लिए मिट्टी में पानी का तल नीचा होना चाहिए।

## कटहल की उन्नत किस्मेंः

कटहल का प्रसारण बीज द्वारा किया जाता है। अतः एक ही किस्म के बीजों द्वारा तैयार पौधों में भिन्नता पायी जाती है और इस प्रकार इसकी कोई स्थायी किस्म नहीं है। फलों के आकार और कोये के रंग के आधार पर कटहल का वर्गीकरण किया गया है जिसके अनुसार इसकी कुछ प्रमुख किस्में निम्नवत् हैः

**रसदार–** इस किस्म के फल प्रायः बड़े आकार के होते हैं। फल का वजन सामान्यतः 10–40 किग्रा. तक होता है। कोये बड़े एवं रसदार होते है और फल पकने पर पीले रंग के हो जाते हैं।

**खजवा–** इस किस्म के फल के कोये सफेद एवं कोमल होते हैं। इनमें रेशे की कमी रहती है इसलिए इन्हें दाँतों से काटकर खाया जाता है। कटहल के पके फल खाने वाली किस्मों में यह सर्वश्रेष्ठ किस्म है।

**कटहली–** यह मुख्यतः सब्जी वाली किस्म है। इसके फल छोटे परंतु आकार में लम्बे, अंडाकार तथा गोल होते हैं। फलों का औसत वजन 4–5 किग्रा. होता है। पेड़ों पर इसके फल गुच्छों में लगते हैं। इसका कोया भी काफी मीठा तथा स्वादिष्ट होता है।

**रूदाक्षी–** यह दक्षिण भारत की किस्म है। इसके फल छोटे आकार के

होते हैं। छिलका कम काँटेदार तथा पके फलों के कोये का स्वाद फीका होता है।

**कटहल का पौध प्रसारणः**

कटहल का प्रसारण अधिकतर बीज द्वारा ही होता है। परंतु इस विधि से तैयार एक ही किस्म के विभिन्न पौधें में भिन्नता पायी जाती है। इस समस्या के निराकरण हेतु वानस्पतिक प्रसारण विधियों पर प्रयोग किये गये। गहन अनुसन्धान से पता चला है कि कटहल का प्रसारण इर्नाचिंग और गूटी द्वारा सफलता पूर्वक किया जा सकता है। इर्नाचिंग विधि से लगभग 60–70 प्रतिशत तक सफलता मिलती है। पौध प्रसारण का सर्वोत्तम समय जून–जुलाई है। गूटी के लिए भी जुलाई का महीना सर्वोत्तम है तथा गूटी तैयार करने की विधि लीची की तरह होती है। बीज को पके फल से निकालने के बाद ताजा ही बोना चाहिए। इसका बीज 25–30 दिनों में अंकुरित हो जाता है।

**बागों में पौध लगाने की विधिः**

कटहल के व्यावसायिक बाग लगाने के लिए तैयार खेत में पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी 12 मीटर रखते हुए रेखांकन कर लेनी चाहिए। चिन्हित स्थान पर 60 से.मी. आकार के गहरे गड्ढे बनाने चाहिए। गड्ढे गर्मी के दिनों में बनाने चाहिए और वर्षा प्रारंभ होने से पहले 20–25 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट, 50 ग्राम फास्फोरस, 50 ग्राम पोटाश और 50 ग्राम बी.एच.सी. मिट्टी में भली–भाँति मिला कर गड्ढे को जमीन से 15 से.मी. उपर तक भर देना चाहिए। पौधे की रोपाई पहली वर्षा होने के बाद जुलाई में करनी चाहिए। दो से तीन वर्ष पुराने बीज पौधे या कलमी पौधे लगाने के लिए उपयुक्त होते हैं।

**पौधों की सिंचाईः**

पौधे लगाने के बाद प्रारंभिक वर्ष में पौधों की गर्मियों में प्रति सप्ताह और जाड़े में 15 दिनों के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए। बड़े पेड़ों को गर्मी में 15 दिनों और जाड़े में एक महीने के अन्तर पर सिंचाई करने से फलों की उपज अधिक मिलती है।

**पौधे की निकाई–गुड़ाईः**

निकाई–गुड़ाई करके पौधों के थाले साफ रखने चाहिए। बड़े पेड़ों के बागों की वर्ष में दो बार जुताई, पहली वर्षाऋतु के बाद अक्टूबर–नवम्बर और दूसरी वर्षा प्रारंभ होने से पहले जून में करनी चाहिए।

**कटहल के बागों में अन्तरावर्ती फसलेंः**

कटहल के बागों में प्रारंभ के 7–8 वर्षों तक पौधों के बीच पर्याप्त जगह खाली पड़ी रहती है। इस भूमि में फसल लेने से बागवानों को प्रारंभिक वर्षों में अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। आप अन्तरवर्ती फसलों में दलहनी फसलें जैसे मूंग, उर्द, मूंगफली अथवा सब्जी वाली फसलें जैसे लोबिया, फूलगोभी, परवल, खीरा तथा करेला उगा सकते हैं। पेड़ बड़े हो जाने पर इनके नीचे छायादार भूमि में ओल, अदरक और हल्दी की खेती अन्तरवर्ती फसल के रूप में अधिक लाभप्रद सिद्ध हुई है।

**खाद की मात्रा तथा उपयोग की विधिः**

कटहल के पौधों को खाद और उर्वरक उम्र के अनुसार देना चाहिए। एक वर्ष की आयु के पौधे में गोबर की सड़ी खाद 10 किलोग्राम, यूरिया 100 ग्राम, सुपर फास्फेट 50 ग्राम एवं म्यूरेट आफ पोटाश 100 ग्राम प्रति पौधे की दर से डालनी चाहिए। खाद तथा उर्वरक की यह मात्राा प्रति वर्ष जोड़ते जाते हैं जो दसवें वर्ष में बढ़ कर गोबर की खाद–1 क्विंटल, यूरिया–1 किग्रा, सुपर फास्फेट– 500 ग्राम तथा म्यूरेट आफ पोटाश–1 किग्रा हो जाता है। यही मात्रा पौधों को 11वें वर्ष से आगे देते रहना चाहिए।

**कटहल के प्रमुख कीट और रोकथामः**

**मिलीबग–** इस कीट से कटहल की सबसे अधिक हानि होती है। ये फूलों, नई कोपलों एवं डंठलों का रस चूसते हैं। फलस्वरूप फूल गिर जाते हैं। इसकी रोकथाम हेतु मई–जून में बगीचे की जुताई कर देनी चाहिए। इससे अण्डे उपर आकर धूप से नष्ट हो जाते हैं। दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक वृक्षों के तने पर भूमि से एक मीटर की ऊँचाई पर 20–25 से.मी. चौड़ी पॉलीथीन शीट की पट्टी रस्सी से बॉधकर इसके निचले सिरे पर चिकनी मिट्टी का लेप कर देना चाहिए।

**स्केल कीट–** ये पत्तियों की निचली सतह और मुलायम टहनियों पर चिपके रहते हैं और रस चूसकर पत्तियों पर चिपचिपा पदार्थ छोड़ते हैं जिसपर काली फफूंदी पैदा हो जाती है। इनकी रोकथाम हेतु रोगर नामक दवा की 2 मि.ली. मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल कर दो छिड़काव 15 दिनों के अन्तराल पर करनी चाहिए।

❖ ❖ ❖

# पौष्टिक गुणों से भरपूर आंवला कैन्डी

**बालाजी विक्रम एवं पूर्णिमा सिंह सिकरवार**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

आंवला कैन्डी आंवले के मुरब्बे का सूखा प्रतिरूप ही है। बच्चों को आंवले का मुरब्बा खाना पसन्द नहीं आता, लेकिन आंवला कैन्डी बड़े मजे से खाते हैं। आंवला में पाये जाने वाले अनेक गुण हैं। इसमें विटामिन सी की प्रचुर मात्रा निहित रहती है। आंवला किसी भी तरह से खाया जाय वह हमारे शरीर के लिए अत्यन्त लाभकारी है। आंवले से पाचन और शरीर की प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है, इसका आयुर्वेदिक औषधि के रूप में काफी मात्रा में प्रयोग किया जाता है। ये आपको तंदुरुस्त रहने में मदद करेगा। आंवला नवम्बर से जनवरी तक बाजार में खूब मिलता है। इस समय आप ताजा आंवला अपने रोजाना के खाने में चटनी बनाकर, आंवले फ्राई या सूप में किसी भी तरह से प्रयोग में ले सकते हैं। आंवले को विभिन्न तरीके से स्टोर करके रखा जाता है जैसे आंवला पाउडर, आंवले का अचार, आंवले का मुरब्बा, आंवला मीठी चटनी और आंवला कैन्डी बनाकर तैयार करते हैं। ये आंवला कैन्डी कभी भी खायी जा सकती है। आंवला कैन्डी मीठी या मसालेदार आप अपने स्वाद के अनुसार बनाकर तैयार कर लीजिए। तो आइये बनाना शुरू करते हैं साधारण एवं मसालेदार आंवला कैन्डीः

## आवश्यक सामग्रीः

**मीठी आंवला कैन्डी**

| | | |
|---|---|---|
| आंवला | : | 1 किग्रा |
| चीनी | : | 650 ग्राम |
| पिसी हुई चीनी | : | 50 ग्राम |

**चटपटी मसालेदार आंवला कैन्डी**

| | | |
|---|---|---|
| आंवला | : | 1 किग्रा |
| चीनी | : | 700 ग्राम |
| पिसी हुई चीनी | : | 50 ग्राम |
| काला नमक | : | एक छोटी चम्मच, |
| काली मिर्च पाउडरः | | आधा छोटी चम्मच |
| अमचूर पाउडर | : | आधा छोटी चम्मच |

## विधिः

**मीठी आंवला कैन्डी–**

- आंवले को साफ पानी से धो लीजिए। किसी बर्तन में इतना पानी डालकर उबालने रखिए कि आंवला उसमें अच्छी तरह डूब सके।
- उबलते पानी में आंवले डालिए और फिर से उबाल आने के बाद 2 मिनट तक आंवले उबलने दीजिए। गैस फ्लेम बन्द कर दीजिए और इन आंवलों को 5 मिनट के लिए ढंककर रख दीजिए। आंवले को ठंडे पानी में मत डालिये, पानी को पहले उबलने दीजिए तब आंवले डालें।
- उबाले हुए आंवले को चलनी में डालकर पानी हटा दीजिए। ठंडा होने पर इनको चाकू की सहायता से काटकर फांके अलग–अलग कर लीजिए और गुठली निकालकर फेंक दीजिए।
- ये आंवले की कली किसी बड़े बर्तन में भरिए और 650 ग्राम चीनी ऊपर से भरकर रख दीजिए, बची हुई 50 ग्राम चीनी का पाउडर बनाकर रख लीजिए।
- दूसरे दिन आप देखेंगें सारी चीनी का शरबत बन गया है। आंवले के टुकड़े उस शरबत में तैर रहे हैं आप इस शरबत को चमचे से चलाकर, ढंककर रख दीजिए।
- 2–3 दिन बाद यह आंवले के टुकड़े शरबत में तैरने के बजाय बर्तन के तली में नीचे बैठ जायेंगे। चीनी आवंले के अन्दर पर्याप्त मात्रा में भर चुकी है, जिससे वह भारी होकर नीचे तले में चले गये हैं।
- अब इस शरबत को चलनी से छानकर अलग कर दीजिए और चलनी में आवंले के टुकड़े रह जायेगें। पूरी तहर से आंवले से शरबत निकल जाये तब इन टुकड़ों को थाली में डालकर धूप में सुखा लीजिए।
- इन सूखे हुए आंवले के टुकड़ों में चीनी का पाउडर मिलाइये। लीजिए ये आंवला कैन्डी तैयार हो गई है। यह कैन्डी आप कन्टेनर (कांच के बर्तन) में भरकर रख लीजिए और रोजाना 6–7 टुकड़े खाइये, यह स्वाद में तो अच्छी है ही आपकी सेहत के लिए बड़ी फायदेमन्द है।

**चटपटी मसालेदार आंवला कैन्डी–** आंवला कैन्डी को मसालेदार बनाने के लिए आप सूखी कैन्डी में पिसी हुई चीनी के साथ एक छोटी चम्मच काला नमक, आधा छोटी चम्मच काली मिर्च पाउडर और आधा छोटी चम्मच अमचूर पाउडर मिलाइये। जिन्हें एकदम मीठा पसन्द नही हो तो वे चटपटी आंवला कैन्डी खा सकते हैं।

**आंवले का शर्बत–** आंवले से निकले मीठे शरबत को आप गाढ़ा करके आने वाले गर्मियों के मौसम में ठंडा आंवले का शरबत बनाकर पीजिए। शरबत को गाढ़ा करने के लिए इस शरबत को गैस फ्लेम पर पकने रख दीजिए। जब ये शरबत गाढ़ा दिखाई देने लगे, शरबत को ठंडा कीजिए और छान कर किसी कांच या प्लास्टिक के एअर टाईट कन्टेनर में भरकर रख लीजिए। इस शरबत का स्वाद आंवले का विशिष्ट फ्लेवर लिए हुए होता है। जो आंवले का मुरब्बा या चटनी पसंद करते हैं उन्हें यह शरबत अवश्य पसंद आयेगा।

❖❖❖

# गन्ने में चीनी की मात्रा बढ़ाने की तकनीकियां

**आशुतोष गुप्ता एवं सात्विक सहाय बिसारिया**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

उत्तरी भारत में चीनी की औसत रिकवरी 9 से 10 प्रतिशत के मध्य रहती है, जबकि दक्षिण भारत में लगभग 11 प्रतिशत है। कम चीनी रिकवरी के लिए अकुशल फसल प्रबन्ध से लेकर इसके उत्पादन तक विभिन्न स्तरों पर होने वाली कुछ तकनीकी खामियाँ हैं, जिन्हें उचित प्रबन्धन द्वारा दूर कर चीनी रिकवरी को बढ़ाया जा सकता है। इससे न केवल चीनी उद्योग की स्थिति अच्छी होगी, वरन् किसानों को उनकी फसल के उचित दाम व समय से भुगतान के रुप में मिलना होगा।

## गन्ने में चीनी की मात्रा बढाने हेतु मुख्य सुझाव :

**प्रजातियों का उचित चयन–** गन्ने का पेराई सत्र नवम्बर प्रथम सप्ताह से शुरु होकर मई के अन्त तक चलता है। ऐसे में प्रजातियों का चुनाव बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। किसान गन्ना क्षेत्र में 40 से 50 प्रतिशत अगेती प्रजातियां को0शा0 88230, को0शा0 8436 को0शा0 96268 को0 238एवं को0ल0 94184 तथा 50 प्रतिशत में मध्य एव देर से पकने वाली को0 एच 0119 को0शा0 8432, को0शा0 94257, को0शा0 95255, को0पन्त 84212, को0पन्त 97222 एवं को0पन्त 99214 आदि चयन करें।

**उचित समय पर बोआई–** उत्तरी भारत में 70 प्रतिशत गन्ने की बोआई बसन्तकालीन होती है, अतः फरवरी–मार्च माह सर्वाधिक उपयुक्त है। साथ ही कुछ क्षेत्रफल शरदकालीन गन्ने के अन्तर्गत भी है। जिसका बोआई का उचित समय अक्टूबर का प्रथम पखवाड़ा है। देर से बोआई की अवस्था में गन्ने की उपज एवं चीनी की मात्रा कम मिलती है। अतः फसल की बुवाई उचित समय पर ही की जानी चाहिए।

**संतुलित, समेकित एवं सामयिक उर्वरक उपयोग–** प्रायः किसान भाई नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश आदि पोषक तत्वों को संतुलित मात्रा में प्रयोग नहीं कर पा रहे हैं। सामान्यतयाः नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश को 4:2:1 के अनुपात में प्रयोग किया जाना चाहिए। जबकि इनका उपयोग 6.7:2.6:1 में हो रहा है। फास्फोरस एवं पोटाश पौधे को विभिन्न रोगों एवं गिरने से बचाने के साथ–साथ नत्रजन से मिलने वाले लाभ को भी बढाते है, जिससे गन्ने की उपज में वृद्धि होती है व चीनी की मात्रा भी बढ़ती है। मृदा जाँच के अनुसार उर्वरकों का उपयोग किया जाना चाहिए। ऐसा न होने की दशा में उत्तराखण्ड के मैदानी भागों में शरद कालीन गन्ने में किसान भाई प्रति हे. 325 किग्रा. यूरिया, 500 किग्रा. सिगंल सुपर फास्फेट व 60 किग्रा. म्युरेट आफ पोटाश दें। बसन्त कालीन गन्ने में यह मात्रा क्रमशः 260, 375 व 65 किग्रा. रखें। पेड़ी में 395 किग्रा. यूरिया, 375 किग्रा. सिगंल सुपर फास्फेट व 65 किग्रा. म्युरेट आफ पोटाश दें। यूरिया की आधी मात्रा एवं सिंगल सुपर फास्फेट व म्युरेट आफ पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा बोआई के समय कूड़ों में दें। यूरिया की शेष आधी मात्रा 2–3 बार में, शरदकालीन गन्ने में बोवाई के प्रथम 150 दिनो में, बसन्तकालीन गन्ने में प्रथम 120 दिनों में तथा पेड़ी फसल में कटाई के प्रथम 75 दिनों में दें। देर से यूरिया देने पर इसका उपयोग नहीं हो पाता है और चीनी की रिकवरी भी विपरीत रुप से प्रभावित होती है। उपलब्धता के अनुसार गोबर की खाद, कम्पोस्ट व प्रेसमड का भी प्रयोग करें और यूरिया की मात्रा में कमी करें। इससे सूक्ष्म तत्वों की भी पूर्ति हो जाती है तथा जल उपयोग क्षमता में भी सुधार आता है।

**कटाई योजना–** गन्ने की कटाई के समय का उसकी उत्पादन क्षमता, शर्करा प्रतिशत तथा गुणवत्ता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। गन्ने के रस में 18 प्रतिशत ब्रिक्स होने पर कटाई करें। फसल की कटाई, बोआई के समय एवं प्रजाति के आधार पर करनी चाहिए। पेराई सत्र में सर्वप्रथम पेड़ी की कटाई करें, इसके बाद शरदकालीन व फिर बसन्तकालीन एवं देर से बोये गन्ने को काटें। अगेती प्रजातियों की कटाई पहले तथा मध्य एवं देर से पकने वाली प्रजातियों को बाद में काटें। कटाई के समय सूखी एवं हरी पत्तियों को गन्ने से हटा देना चाहिए।

**कटाई के बाद प्रबन्धन–** गन्ने की कटाई एवं पेराई के मध्य समय का अन्तराल कम होना चाहिए। अन्तर ज्यादा होने पर गन्ने के वजन एवं चीनी की रिकवरी दोनों में कमी आती है। इसके लिए किसान एवं चीनी मिलों में सामंजस्य स्थापित होना आवश्यक है। गन्ने की पेराई कटाई के 48 घण्टे के अन्दर होनी चाहिए। किसान कटाई के बाद खेत में गन्ने को ढेर बनाकर सूखी पत्ती से ढंके एवं यथाशीघ्र मिल को आपूर्ति करें। मिल स्तर पर अविलम्ब गन्ना ढुलाई तथा पेराई कर ली जानी चाहिए। वर्तमान में गन्ने की कटाई एवं पेराई में 3 से लेकर 7 दिन या इससे भी अधिक तक का अन्तराल देखा जा रहा है जो सर्वथा अनुचित है। इससे चीनी की रिकवरी कम होने के साथ साथ चीनी उत्पादन/शोधन की लागत बढ़ जाती है और इसकी गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है। किसान खड़े गन्ने का अगोला न काटें, ऐसा करने से भी गन्ने के वजन एवं चीनी की रिकवरी में ह्रास होता है। किन्ही कारणों से यदि गन्ना जल जाता है तो उसे 24 घन्टों के अन्दर कटाई कर पेराई की व्यवस्था की जानी चाहिए।

**जल प्रबन्धन–** कुछ गन्ना क्षेत्रों में वर्षा ऋतु में जल भराव की समस्या रहती है। ऐसे क्षेत्रों में जल निकास का समुचित प्रबन्ध करें। इससे उपज एव चीनी की रिकवरी दोनों में सुधार आता है। फसल में कटाई से 1 माह पूर्व सिंचाई बन्द कर दें।

**बीज का प्रयोग–** गन्ने का ऊपरी हिस्सा बीज के लिए सर्वोत्तम होता है जबकि नीचे का भाग चीनी की दृष्टि से अच्छा होता है। गन्ने का एक बड़ा भाग बीज के रुप में प्रयोग होता है। अतः उपरी भाग को बीज के लिए एवं निचले हिस्से को चीनी उत्पादन के लिए प्रयोग करने से भी चीनी की रिकवरी को बढाया जा सकता है। इससे गन्ने के उत्पादन में भी आशातीत वृद्धि होगी।

**मिल स्तर पर सावधानियाँ–** पेराई सत्र के प्रारम्भ होने से पूर्व व बीच–बीच में विभिन्न मशीनों की जॉच होती रहनी चाहिए, ताकि गन्ने से अधिकतम सीमा तक रस को निकाला जा सके एवं रस शोधन के दौरान होने वाली अवाँछनीय हानियों से बचा जा सके।

उपर दिए गये बिन्दुओं को किसान एवं मिल स्तर पर योजनाबद्ध रुप में अपनाकर 1 से 1.5 प्रतिशत तक चीनी की रिकवरी बढायी जा सकती है।

# चने की फसल का कीटों एवं रोगों से बचाव

**आदित्य कुमार, डूमर सिंह एवं शिवांगी तिवारी**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

दलहनी फसलों में चने का महत्वपूर्ण स्थान है। दलहनी फसलों के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रफल का लगभग 27% हिस्सा चने की खेती का है चना रबी की मुख्य फसल है। दलहनी फसलों के उत्पादन में लगभग 33.5% चने का योगदान होता है। चने की फसल में बहुत से कीटों व रोगों के कारण चने के उत्पादन में कमी आ रही है। सही तरीके से पादप संरक्षण विधियों का उपयोग न करने से राष्ट्रीय उत्पादकता मात्र 623 किग्रा. प्रति हेक्टेयर रह गई है। चने की फसल पर भारत में मुख्य रूप से लगभग 10 कीट आक्रमण करते हैं। जबकि दुनियाभर में लगभग 60–70 कीट चने पर आक्रमण करते हैं। भारत में मुख्य रूप से इन कीटों व रोगों में फली बेधक, कर्तन कीट, सेमीलूपर, उकठा रोग, जड़ सड़न, कालर राट और पत्ती झुलसा आदि चने को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं। इस लेख में चने के कीटों व रोगों के निदान के बारे में विशेष जानकारी दी गई है।

### फली बेधकः

फली बेधक, फसलों को बहुत ज्यादा मात्रा में हानि पहुंचाता है। यह चने का मुख्य कीट है। यह मुख्य रूप से चना और अरहर को नुकसान करता है। इसके अलावा यह टमाटर, तम्बाकू, कपास, सनई, भिंडी, मटर आदि फसलों को नुकसान करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में ये कपास का भयंकर कीट है। यह कीट सूंड़ी की अवस्था में क्षति कारक होता है। इनके मुखांग काटने व चबाने वाले होते हैं। सूड़ियां खेत में नवंबर से दिखाई देती हैं और मार्च तक क्षति पहुंचाती हैं। एक सूंड़ी 30–40 फलियों को खाकर खोखली बना सकती हैं।

इस कीट द्वारा 20 से 60% तक क्षति का अनुमान लगाया जाता है। सूंड़ी फली के अंदर घुसकर दानों को खाती हैं और आधा शरीर बाहर व आधा शरीर अंदर रहता है। मादा पत्तियों के निचले भाग व फूलों के ऊपर 500–1000 अंण्डे देती हैं। अंडे गोलाकार होते हैं। अण्डे लगभग 5–7 दिन में फूटते हैं। अण्डे से निकली सूंड़ी लगभग 2–2.5 मिमी लंबी होती है। इनका रंग ऊपर से हरा तथा नीचे से सफेद होता है। पूर्ण विकास कर लेने पर लगभग 35 मिमी लंबी हो जाती हैं।

**प्रबंधन–**

- गर्मी में खेतों की गहरी जुताई करें।
- फसल की बुवाई समय से अक्टूबर के दूसरे सप्ताह तक अवश्य करें।
- फसल के फूल अवस्था पर फेरोमोन लगाकर नर प्रौढ़ कीट को आकर्षित करें।
- नीम का तेल 10000 पीपीएम 2 मिली प्रति ली. की दर से छिड़काव करें।
- इण्डोक्साकार्व 14.5 एससी (500 मिली) प्रति हे. की दर से छिड़काव करें।

### कर्तन कीटः

यह कीट चने के अलावा कपास, भिंडी, कद्दू कुल के पौधों, तंबाकू एवं दलहनी फसलों पर आक्रमण करता है। इस कीट की मादा रात के समय में पत्तियों पर अंडे देती है। एक मादा 1000 अंडे तक दे सकती है। ये गोल पीले रंग के होते हैं। इनकी आकृति गुंबज जैसी होती है। इसका जीवन चक्र एक दो महीने में पूरा होता है। इनकी सूंड़ी जमीन में चने के पौधे के पास मिलती है तथा 30–35 दिनों की फसल में जमीन की सतह से पौधों को काट देती है।

**प्रबंधन–**

- खेतों के पास सायंकाल अंधेरा होने पर प्रकाश प्रपंच लगाएं जिससे प्रौढ़ कीट आकर्षित होते हैं। 20 फेरोमोन ट्रैप प्रति हेक्टेयर की दर से लगाकर नर वयस्क कीटों को आकर्षित करके नष्ट किया जा सकता है।
- सायंकाल खेत में जगह–जगह घास–फूस का ढेर रखें। सुबह इसमें छिपी सूड़ियों सहित उठाकर जलावें।
- आक्रमण की दशा में क्लोरपायरीफास 20 ई.सी. एक लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। या नीम का तेल 3 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें।

### सेमीलूपरः

इस कीट का लार्वा हरे रंग का होता है। जो पीठ को उठाकर अर्थात् अर्द्ध लूप बनाते हुए चलता है। इसीलिए इसे सेमीलूपर कहते हैं। यह पत्तियों को कुतर कर खाता है। एक मादा लगभग 400–500 तक अण्डे देती है। अण्डे से 7 दिन मे लार्वा निकलता है। जो 35–40 दिनों तक सक्रिय रहकर पूर्ण विकसित हो जाता है। पूर्ण विकसित लार्वा पत्तियों को लपेटकर उन्हीं के अंदर कृमिकोष बनाता है। इनसे एक दो सप्ताह बाद सुनहरे रंग का पतंगा बाहर निकलता है।

**प्रबंधन–**

- गर्मियों में खेतों की गहरी जुताई करनी चाहिए।
- प्रतिरोधी जातियों की बुवाई करनी चाहिए।
- खेत में पक्षियों को बैठने के लिए 20–30 ठिकाने प्रति हेक्टेयर लगायें।
- बीजों को उपचारित करके बुवाई करनी चाहिए।
- आक्रमण की दशा में क्लोरपायरीफास 20 ईसी एक लीटर प्रति हे0 की दर से छिड़काव करें या इण्डोक्साकार्व 14.5 एससी (500

मिली प्रति हे0) का छिड़काव करें।

- बुवाई से पहले ट्राइकोडरमा विरडी, ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम का 4 ग्राम प्रति किलो की दर से बीजों का उपचार करें।
- बोने के तीस दिन बाद चने के पौधें की खुटाई (निपिंग) करें।
- रूट नाट सूत्रकृमि से ग्रसित मृदा मे खरीफ के मौसम में सोलेनेसी कुल फसलों जैसे कि टमाटर, मिर्च, बैगन आदि न लगायें।
- समय–समय पर खरपतवारों का प्रबंधन करें।
- फसल को हानि पहुंचाने वाले चूहों से बचाने के लिए नियमित रूप से मिट्टी में बने उनके घरों को नष्ट करें।
- अधिक पैदावार हेतु पौधों से पौधों की दूरी 30 सेमी. के बजाय 45 सेमी. रखें। जिसके परिणाम स्वरूप पैदावार बढ़ोत्तरी के अलावा बोट्राइटिस फफूंद का संक्रमण नहीं होगा।
- चने के साथ अलसी/सरसों/धनियां या रबी ज्वार अंतःसस्यन क्रिया के तहत उगाएं।
- चने के नेमेटोड से चने की फसल को बचाने के लिए चने के मध्य या किनारों पर एक एक लाइन गेंदा के पौधों को लगाएं।
- मृदा में पाये जाने वाले रोग जैसे कि उकठा और जड़ सड़न से चने को बचाने के लिए नियमित रूप से अदलहनीय फसलों के साथ उचित फसल चक्र अपनाकर लगायें।
- नेमेटोड से ग्रसित प्रक्षेत्र में कार्बोफ्यूरॉन 15 किग्रा/हे. की दर से इस्तेमाल करें।
- फसल को बोने से पहले पिछली फसल के अवशेषों को नष्ट कर दें।
- आक्रमण की दशा में इण्डोक्साकार्व 14.5 एससी (500 मिली प्रति हे0) का छिड़काव करें।
- नीमबान (1000,1500,10000 पीपीएम) 2 मिली/ली. की दर से छिड़काव करें।
- बैसिलस थुरिनजैंसिस प्रजाति क्रुर्सटकी एच–3ए, 3बी, स्टेन जेड–52 का 0.75 से लेकर एक किलो/हे. से छिड़काव करें।

**रोगः**

**उकठा रोग–** यह रोग फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम फार्म स्पीसीज सिसेराई नामक कवक से लगता है। यह मृदा में रहने वाला कवक है। जो मृदा एवं संक्रमित बीज द्वारा अगले वर्ष फसल में पहुंचता है। यह कवक रोगी एवं स्वस्थ दिखने वाले पौधों की जड़ों तथा अन्य फसल अवशेषों मे वर्षभर रहता है। चने के अलावा यह रोग मटर, मसूर, मूंग, उड़द, सोयाबीन आदि फसलों में भी सक्रिय अवस्था में बना रहता है। इस कवक के बीजाणु गर्मियों में भी सुषुप्तावस्था में जीवित बने रहते हैं।

● **प्रभावित होने की अवस्था व लक्षण–** म.प्र. में यह रोग नवंबर से फरवरी–मार्च में लगता है। फसल में प्रारंभिक अवस्था में इस रोग के कारण सर्वाधिक हानि होती है। फसल में फूल आने की अवस्था में इस रोग के लगने से दानों का रंग भद्दा एवं उनका वजन कम हो जाता है। इसके प्रकोप से पौधों की नीचे की पत्तियां पीली पड़कर सूखने लगती हैं। जो धीरे–धीरे ऊपर बढ़ने लगती हैं। पत्तियों के डण्ठल नीचे गिरने लगते हैं। रोगग्रस्त पौधों में अनियमित शाखाएं निकलती हैं। ऊपर की कुछ पत्तियां हरी अवस्था में ही सूख जाती हैं और पूरा पौधा मुरझा जाता है। रोगी पौधे को उखाड़कर उसकी जड़ तोड़ने पर दारू ऊतक गहरे भूरे या काले रंग के दिखाई देते हैं। बुवाई के 3–5 सप्ताह बाद ही यह रोग फसल में दिखाई देने लगता है। फसल में फूल आने पर इस रोग के लगने से पौधे में उपर्युक्त लक्षण दिखाई देते हैं एवं फलों में दाने बनते ही नहीं अथवा बनते हैं तो दाने छोटे, झुर्रीदार तथा कम वजनी होते हैं। रोगी पौधा स्वस्थ पौधे के पहले ही सूख जाता है।

● **कैसे करें रोग प्रबंधन–** क्योंकि यह रोग मृदा एवं बीज जनित है और लगातार वर्ष में दो दलहनी फसलें लेने से यह रोग साल दर साल बढ़ता जाता है।

- चने की फसल कटते ही खेत में गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करायें जिससे रोगी पौधों की जड़ ऊपर आ जाये एवं तेज गर्मी व ताप से कवक मर जाये।
- खेत की मेड़बंदी करायें जिससे वर्षा का जल दूसरे खेत से न आ सके।
- चना की फसल लेने वाले खेतों में खरीफ ऋतु में ज्वार की फसल लें क्योंकि ज्वार की जड़ों से इस कवक को मारने वाले जैव रसायन स्त्रावित होते हैं।
- 2 किलो ट्राइकोडर्मा विरडी या ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम पाउडर को अंतिम जुताई से 10 दिन पूर्व 50–100 किलो अच्छी सड़ी एवं नमी युक्त गोबर खाद, केंचुआ खाद अथवा कम्पोस्ट खाद में मिलाकर छायादार स्थान में रखें। अंतिम जुताई पर खेत में फैलाकर शुष्क जुताई कराकर भूमि उपचार करें।
- 10 ग्राम/कि. बीज के हिसाब से ट्राइकोडर्मा विरडी अथवा ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम को गुड़ के साथ मिलाकर गाढ़ा घोल बना लें। बीज को पक्के फर्श अथवा पालिथीन पर फैलाकर उक्त गाढ़े घोल को छिड़क कर हाथों से अच्छी तरह से मिला लें। बीज को छाया में सुखाकर बुवाई करें। याद रखें कि ट्राइकोडर्मा उपयोग करने की तिथि से 6 माह से अधिक पहले का बना हुआ न हो।
- नत्रजन वाले उर्वरकों का अधिक प्रयोग न करें।
- उकठा अवरोधी प्रजातियां जैसे–जेजी–315, जेजी–14, फूले–जी, जी–5 आदि की बुवाई करें।
- फसल में रोग लगने पर इसके नियंत्रण का कोई प्रभावी उपाय नहीं है। इसलिए फसल बुवाई से पहले ही इस रोग का प्रबंधन आवश्यक है।
- यदि क्षेत्र की मिट्टी इस रोग के लिए अति संवेदनशील है तो चना की फसल लेने हेतु तीन वर्षीय फसल चक्र अपनायें। अर्थात् जिस खेत में पिछले वर्ष चना की फसल उगायी गई हो तो अगले दो वर्षों तक उस खेत में चना तथा अन्य दलहनी फसल न लें। पंक्ति–पंक्ति की दूरी सामान्य व परंपरागत दूरी से डेढ़ (1.5 गुना) अधिक रखें तथा बीज की गहराई 7–8 सेमी. रखें।

❖❖❖

# बिना मिट्टी के भी उगाए जा सकते हैं फल और सब्जियां

**संतोष कुमार**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

आप जिन सब्ज़ियों और फलों को अपने स्वास्थ्य के लिए अच्छा मानकर रोज़ उनका इस्तेमाल करते हैं, वे भी उतनी स्वच्छ नहीं होती हैं। कई बार धोने पर भी उनमें कुछ प्रतिशत कीटनाशक चिपके ही रह जाते हैं। लेकिन सोचिए अगर आपको एक ऐसी सुविधा मिल जाए जहां बिना मिट्टी के आप अपनी ज़रूरत की सब्ज़ियां और फल खुद उगा सकें और वो भी जैविक तरीके से तो आपके स्वास्थ्य के लिए कितना अच्छा होगा।

अब ऐसा मुमकिन है हाइड्रोपोनिक्स तकनीक की मदद से। आप सब्ज़ियों और बाकी हर्ब्स (herbs) को घर पर उगा सकते हैं, वो भी बिना मिट्टी के। हाइड्रोपोनिक्स का मतलब होता है जलीयकृषि। यानि इस खेती में फसल पानी में उगाई जाती है और इसमें मिट्टी का इस्तेमाल नहीं होता। खेती की इस आधुनिक तकनीक में फसल पानी और उसके पोषण स्तर के जरिए बढ़ती है।

भारत के कई हिस्से ऐसे हैं जहां पानी की कमी रहती है लेकिन इस तकनीक से सामान्य तकनीक की अपेक्षा सिर्फ 10 प्रतिशत पानी की ज़रूरत पड़ती है, साथ ही मिट्टी की भी कोई ज़रूरत नहीं होती। साथ ही साथ कम से कम जगह में अधिक से अधिक पौधे उपजा सकते हैं।

बिना मिट्टी के खेती या हाइड्रोपोनिक्स खेती पद्धति एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें पौधे अपने वृद्धि व अपने विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्वों के लिए मिट्टी पर नहीं बल्कि पोषक तत्व घोल पर निर्भर रहते हैं। पौधों को सहारा देने के लिए विभिन्न पदार्थों जैसे– बालू, कंकड़, नारियल का बुरादा (cocopeat), परलाइट (parlite), आदि को किसी गमले, बैग, ट्रफ, नलिका टंकी आदि जिसमें पोषण के लिए घोल का बहाव आसानी से बना रहे सके, में भरकर उनमें पौधे लगाये जाते हैं। इस पद्धति में पौधे मिट्टी सम्बंधित व्याधाओं के प्रकोप से बचे रहते हैं और उत्पाद भी उच्च कोटि के होते हैं।

### उपयुक्त फसलें:

मूल रूप से सभी उच्च मूल्य की फसलों जैसे टमाटर, खीरे, मिर्च और लेट्यूस आदि लगाये जा सकते हैं।

### उपयुक्त स्थान:

ऐसे स्थान जहाँ की मृदा की गुणवत्ता किसी कारण से फसल उत्पादन हेतु उपयुक्त न हो जैसे– मृदा की क्षारीयता या अम्लीयता अधिक हो, सूत्रकृमि व फफूंद जनित रोगों के प्रकोप की अधिकता हो, वहां पर इस प्रकार की खेती की जा सकती है। इसके अलावा इस पद्धति का उपयोग कम जल उपलब्धता वाले क्षेत्रों में भी की जा सकती हैं क्योंकि इसमें जल का नुकसान कम होता है या हम कह सकते हैं कि इस पद्धति की जल दक्षता सर्वाधिक है।

यह पद्धति कुछ मूलभूत सावधानियों जैसे पौधों की किस्म व अवस्था के अनुसार पोषक तत्वों की उचित मात्रा का प्रवाह, घोल का पीएच(pH) मान (5.8 से 6.5 के मध्य व ई.सी. 2 के आस–पास ) होना चाहिए। पोषण घोल में उचित वायु संचार आदि का ध्यान में रखकर इसे आसानी से प्रयोग किया जा सकता है। हाइड्रोपोनिक्स पद्धति से तैयार सब्जियां अपेक्षाकृत अधिक स्वच्छ, आकर्षक व गुणवत्ता वाली होती हैं। जिसके कारण इनका बाज़ार मूल्य भी अपेक्षाकृत अधिक मिलता है। इसका उपयोग पश्चिमी देशों में सब्जी एवं फूल उत्पादन में काफी होता है।

एक हाइड्रोपोनिक उत्पादन इकाई के लिए आवश्यकता स्वच्छ पानी का स्त्रोत, सही स्थान, विशेष रूप से तैयार उर्वरक प्रणाली के लिए दैनिक ध्यान देने का समय पौधों या बागवानी का थोड़ा ज्ञान एक वाणिज्यिक या घरेलू इकाई है।

### जरुरी बातें:

यह जरुरी है कि आपको पौधों के बारे में अधिक से अधिक जानकारी हो। जिससे आप पौधों की आवश्यकताओं को समझ सकें और वर्ष के बाद सफलतापूर्वक सब्जियों का उत्पादन करने में सक्षम हों, साथ ही साथ हाइड्रोपोनिक से परिचित होना जरूरी है जैसे पौधे, विकास माध्यम, पानी और पोषक तत्व। कोई एक समस्या के कारण की पहचान करने में आप सक्षम नहीं होंगे तो उन्हें सही नहीं कर सकते। पौधों में केवल तीन प्रकार के अंग होते हैं, पत्तियां, जड़ें और तना। पता करें कि अंग कैसे दिखते हैं और कैसे वे काम करते हैं ताकि आप अपनी आवश्यकताओं से निपट सकें। मिट्टी का विकल्प जड़ों को ऑक्सीजन प्रदान करने के लिए जड़ों के संपर्क में पानी और मिश्रित पोषक तत्वों को पहुँचाना, पौधों को खुराक/सहारा देना ताकि वे गिरे नहीं, है। इस काम के लिए, कई अलग–अलग सामग्रियों का उपयोग किया जा सकता है ताकि वे जड़ों को ऑक्सीजन, पानी और पोषक तत्वों के साथ प्रदान कर सकें।

### पानी और पोषक तत्व:

सभी पौष्टिक पौधों को पानी में मिला दिया जाता है और वे हर दिन पौधों को आपूर्ति करते हैं। सूक्ष्म तत्वों (एन., पी., के., एस., सीए) को पर्याप्त मात्रा में देना आवश्यक है। जबकि पौधों को बहुत कम मात्रा में सूक्ष्म तत्वों की आवश्यकता होती है (लोहा, जिंक, मेगनीज, मैग्नीशियम, कॉपर, कोबाल्ट)। विशेष रूप से तैयार किए गये उर्वरक का उपयोग करना आवश्यक है। अन्य उर्वरकों की तुलना में हाइड्रोपोनिक के लिए उपयोग किए गए उर्वरक अधिक शुद्ध और महंगे हैं।

### हाइड्रोपोनिक प्रणालियां:

दो अलग–अलग हाइड्रोपोनिक प्रणालियों का उपयोग सब्जियों का उत्पादन करने के लिए किया जाता है– बजरी प्रवाह प्रणाली, और खुले बैग प्रणाली।

**ओपन बैग प्रणाली–** ओपन बैग प्रणाली में पौधों को कंटेनरों में उगाया जाता है और पौधों को प्रतिदिन 12 बार एक ड्रिपर के माध्यम से पोषक तत्वों के घोल का छिड़काव किया जाता है। प्रति दिन सिंचाई चक्र की संख्या पौधों के तापमान और विकास दर पर निर्भर करती है। ड्रेन टू वेस्ट सिस्टम में फसल ऊंचाई लिए होती है और उन्हें बाँधने और छाँटने की जरूरत होती है ताकि वे एक स्टेम के रूप में ऊपर की ओर बढ़ सकें।

**बजरी प्रवाह प्रणाली–** बजरी प्रवाह प्रणाली में, पोषक समाधान का पुनः संचलन होता है और पौधों की जड़ें पोषक तत्व समाधान की एक पतली फिल्म में हर समय खड़ी होती हैं। बजरी या रेत को अक्सर विकास माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाता है।

**पौधों की देखभालः**

विभिन्न फसलों को अलग–अलग रिक्तियों पर लगाया जाता है। छोटे पौधे एक दूसरे के करीब लगाए जा सकते हैं। बड़े पौधों को आगे बढ़ने के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता होती है और इसे आगे अलग करना चाहिए। जल प्रवाह की हर दिन जांच होनी चाहिए और जब आवश्यक हो तो समायोजित किया जाए।

यदि पौधे पीले हो जाते हैं, तो यह आमतौर पर पोषक तत्व की कमी, बहुत कम प्रकाश या बीमारी का लक्षण है। रोग के लक्षणों और कीड़ों के लिए हर दिन पत्तियों का निरीक्षण करें अगर कोई समस्या होती है तो तुरंत निवारण करें।

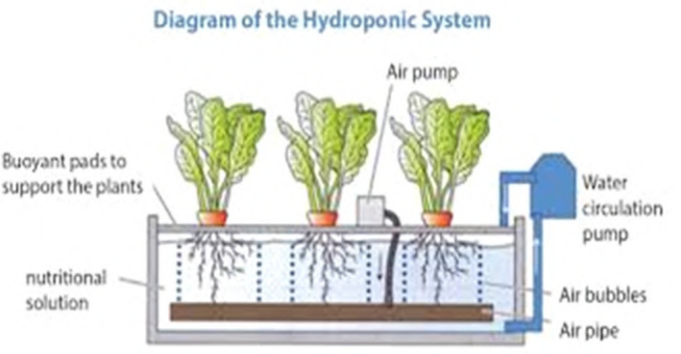


**अनुकूलित वातावरण अथवा ग्रीन हाउसः**

ग्रीनहाउस का उद्देश्य पर्यावरण के बाहर की तुलना में पौधे की वृद्धि के लिए पर्यावरण को अधिक अनुकूल बनाना है। पौधों के आसपास नमी बढ़ाने के लिए व पौधों की रक्षा के लिए ग्रीनहाउस में उगाया जाता है, और कुछ हद तक न्यूनतम और अधिकतम तापमान को एक ही दिन में नियंत्रित किया जा सकता है। अधिकांश ग्रीनहाउस को पॉलिथिन शीटिंग या छाया जाल के साथ कवर किया जाता है। ग्रीनहाउस कई रूपों में आते हैं, सरल और अपेक्षाकृत सस्ते से अत्यंत परिष्कृत और महंगे होते हैं।

❖❖❖

# पीड़कनाशियों के अवशेषी प्रभाव

**डूमर सिंह**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

ऐसा ज्ञात हुआ है कि 1 डालर कीमत के पीड़कनाशी से लगभग 5–10 डालर कीमत के बराबर पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य को क्षति होती है। पर्यावरण के विभिन्न घटकों पर पीड़कनाशियों के कुप्रभावों को सर्वप्रथम रैकल कारसन ने सन् 1962 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''साइलेंट स्प्रिंग'' के द्वारा दुनिया के सामने रखा। 31 मई, 2001 को स्टॉकहोम में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय समझौता में कार्बनिक प्रदूषकों के उत्पादन में ''डर्टी डजन'' के नाम से कुख्यात 12 रसायनों के उत्पादन, उपभोग में कमी एवं अपनाने मे कमी करने का निर्णय लिया गया जिसमें 8 ऑर्गेनोक्लोरीन, एल्ड्रिन, क्लोरडिन, डी.डी.टी., डाईएल्ड्रिन, एनड्रिन, हेप्टाक्लोर, माइरेक्स और टेक्साफीन दो औद्योगिक रसायन–हैक्साक्लोरोबेंजीन और पोलीक्लोरीनेटेड बाईफिनाइल समूह एवं दो औद्योगिक उत्पाद–डाईऑक्जिंस और फ्यूरान्स को रखा गया। यह अंतर्राष्ट्रीय समझौता 17 मई 2004 को प्रभावी हुआ जिसमें 'डर्टी डजन' कहे जाने वाले रसायनों में से 9 रसायनों के उत्पादन, उपभोग एवं अपनाने में कमी की गई। 26 अगस्त 2010 को 9 नये रसायन सूची में शामिल किए गए। जिनमें 4 आर्गेनोक्लोरीन अल्फा हैक्साक्लोरोसाइक्लोहैक्जेन, बीटा हैक्साक्लोरोसाइक्लो हैक्जेन, क्लोर्डेकोन एवं लिण्डेन, 5 औद्योगिक रसायन हैक्साब्रोमोबाई फिनायल, हैक्साब्रोमोडाईफिनाइल ईथर और हैप्टाब्रोमेडाई फिनायल ईथर, पेन्टाक्लोरोबेंजीन, परफ्लूओक्टेन सल्फोनिक अम्ल शामिल हैं।

आज लगभग 220 से अधिक पंजीकृत पीड़कनाशी भारतीय कृषकों को उपलब्ध हैं। भारतीय किसान विकसित देशों की अपेक्षा अधिक कीटनाशी एवं फफूँदीनाशी उपयोग कर रहे हैं, जो शाकनाशियों के अपेक्षा अधिक विषाक्त हैं। इन पेस्टीसाइड्स का सबसे गंभीर प्रभाव मनुष्य जीवन एवं स्वास्थ्य पर पड़ता है। एक आंकलन के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष पेस्टीसाइड्स के विषैले प्रभाव के लगभग 30 लाख केस मिलते हैं जिनमें से लगभग 20 लाख आत्महत्या तथा शेष औद्योगिक दुर्घटना के होते हैं। पेस्टीसाइड्स के प्रतिबंधित उपयोग के बावजूद भारत में विश्व के लगभग एक तिहाई केस पाये जाते हैं। 1953 में केरल की पहली पेस्टीसाइड् दुर्घटना में पैराथियान से 108 लोगों की मृत्यु हो गई। विश्व की सबसे बुरी औद्योगिक आपदा (भोपाल गैस त्रासदी) यूनियन कार्बाइड प्लांट, भोपाल में वर्ष 1984 को घटित हुई। इस प्लांट में कार्बारिल (सबसे सुरक्षित कीटनाशक) बनता था जो आज भी उपयोग में आ रहा है। इस कीटनाशक के बनाने में एक मिथाइल आइसोसाइनेट वाष्प रूप में बनता है, जिसके रिसने से कम से कम 5000 लोगों की मृत्यु हुई और लगभग 50000 लोग स्थायी रूप से अपंग हो गए। त्रासदी की रात गर्भित हुई महिलाओं से उत्पन्न प्रत्येक तीन बच्चों में से एक ही जीवित रह सका। 1350 नये पैदा हुए बच्चों में से 16 अपंग एवं 60 वयस्क होने से पूर्व मृत्यु को प्राप्त हुए।

संयुक्त राज्य अमेरिका की नेशनल रिसोर्स काउंसिल की रिपोर्ट के अनुसार एक से पांच वर्ष की उम्र के 3400 बच्चों में से एक बच्चा कैंसर से पीड़ित हुआ क्योंकि उन्होंने कम उम्र में ही पेस्टीसाइड्स युक्त भोजन खाया। महाराष्ट्र एवं आंध्र प्रदेश के कपास क्षेत्रों में अंधापन, कैंसर, यकृत संबंधी बीमारियां और तंत्रिका तंत्र संबंधी बीमारियां पेस्टीसाइड्स के विषैले प्रभाव के कारण उत्पन्न हुई पाई गईं। डीडीटी एवं मैलाथियान का लगातार छिड़काव करने वाले व्यक्ति की केस स्टडी में पाया गया कि उक्त मजदूर में मानसिक विकार के लक्षण जैसे–स्थायी चिंताजनकता, नींद व्यवधान, डिप्रेसन एवं अत्यधिक सिर दर्द पाये गए। पंजाब के अबोहर से एक पैसेंजर रेलगाड़ी जोधपुर (राजस्थान) तक चलती है। जिसमें सैकड़ों कैंसर मरीज भटिंडा (पंजाब) से आचार्य तुलसी क्षेत्रीय कैंसर उपचार एवं अनुसंधान केन्द्र, बीकानेर सस्ते इलाज के लिए जाते हैं। इस रेलगाड़ी को कैंसर ट्रेन के नाम से जाना जाता है। भटिंडा पंजाब का मालवा के नाम से प्रसिद्ध है। जहां खेती में कृषि रसायनों का अधिक उपयोग किया जाता है। 15 कृषि रसायनों (पेस्टीसाइड) में से 7 पेस्टीसाइड्स के अवशेषी प्रभाव इस क्षेत्र में कैंसर बीमारी जिम्मेदार पाये गए। सघन खेती के लिए पेस्टीसाइड्स एक आवश्यक अवयव है।

अंगूर की अच्छी फसल के लिए प्रतिवर्ष 20 छिड़काव की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार छोटी इलायची के लिए प्रतिवर्ष 12 कीटनाशक एवं फफूंदीनाशकों का छिड़काव किया जाता है। सिंचित मिर्च एवं कपास की फसलों में प्रति फसल अवधि लगभग 12 बार पेस्टीसाइड्स के छिड़काव की आवश्यकता होती है। एक ताजा आंकलन के अनुसार कपास की फसल मे उत्पादन लागत का 36 प्रतिशत, अनार में 35 प्रतिशत, सब्जियों में 30 प्रतिशत, गोभी वर्गीय फसलों में 31 प्रतिशत, धान में 26 प्रतिशत, अंगूर में 25 प्रतिशत एवं आम में 21 प्रतिशत भाग पेस्टीसाइड्स का हैं। कुल उपयोग की गई पेस्टीसाइड्स की 1 प्रतिशत से कम मात्रा ही लक्ष्य पीड़क तक पहुंचती है जबकि 99 प्रतिशत से अधिक मात्रा पर्यावरण के विभिन्न घटकों जैसे–मिट्टी, जल, वायु, खाद्य पदार्थ, दाना, चारा और अन्य पदार्थों में चली जाती है। मनुष्य के खाद्य पदार्थ पेस्टीसाइड्स प्रवेश का मुख्य स्रोत हैं। लेकिन पेयजल, सांस लेने वाली हवा और त्वचा भी मनुष्य में पेस्टीसाइड्स के अवशेष छोड़ते हैं।

**पेस्टीसाइड्स अवशेषः**

पेस्टीसाइड्स अवशेष किसी तत्व या तत्वों के मिश्रण हैं जो पेस्टीसाइड्स के उपयोग से भोजन, दाना, चारा, पानी, हवा आदि में पहुंचता है और विशेष समूह, परिवर्तित उत्पाद उपापचयी तत्व,

अभिक्रिया उत्पाद और अशुद्धियां होते हैं।

**डिपोजिटः**

पेस्टीसाइड्स रसायन की वह मात्रा जो प्रारंभ में सतह पर पहुंचती है। (किसी पेस्टीसाइड्स की वह मात्रा जो उसके निश्चित समयोपरांत भी निष्क्रिय होने से रह जाती है। उसे अवशेषी प्रभाव कहते हैं)।

**अधिकतम अवशेषी सीमाः**

निष्क्रिय होने से बची पेस्टीसाइड्स की वह अनुकूलतम सांध्रता जो किसी जीव के लिए सुरक्षित हो।

**प्रतिदिन की मान्य मात्राः**

प्रतिदिन पेस्टीसाइड्स अवशेष की मात्रा जो पूरे जीवन विषैला प्रभाव न डाल सके।

**प्रतीक्षा अवधिः**

किसी पेस्टीसाइड्स की अवशेषी स्तर को सहनीशील सीमा तक कम करने के लिए आवश्यक अवधि।

बाजार में वसा रहित खाद्य पदार्थों में से 20 प्रतिशत खाद्य पदार्थों के नमूने में अवशेषी प्रभाव अधिकतम अवशेषी सीमा से अधिक पाया गया, दूध के मामलों में 87 प्रतिशत नमूनों में डी.डी.टी. का अपमिश्रण पाया गया, जिनमें से 43 प्रतिशत नमूनों में 0.05 मिग्रा/किग्रा एमआरएल से अधिक डी.डी.टी. पाया गया। इसी प्रकार 90 प्रतिशत नमूनों में मीथेन का अपमिश्रण जिनमें से 78 प्रतिशत में 0.01 मिग्रा/किग्रा से अधिक मीथेन पाया गया। इसके विपरीत विश्व स्तर पर अधिकतम अवशेषी सीमा 1–2 प्रतिशत खाद्य पदार्थों में पाई गई। कैलीफोर्निया में यह केवल 0.12 प्रतिशत ही पाई गई। भारत में महिला दूध के नमूनों में डी.डी.टी. एवं बी.एच.सी. एवं एल्ड्रिन की अधिकतम अवशेषी सीमा बहुत अधिक पाई गई। भारत के अनेक खाद्य पदार्थों में डी.डी.टी., बी.एच.सी., एल्ड्रिन, डाई एल्ड्रिन, हेप्टाक्लोर एवं एण्डोसल्फान की अवशेषी मात्रा पाई गई। सब्जियों में ऑर्गेनोफास्फोरस कीटनाशियों जैसे मोनोक्रोटोफॉस, क्यूनॉलफॉस, ट्राइजोफॉस आदि का अवशेषी स्तर मानक से अधिक पाया गया। खाद्य पदार्थ सब्जी एवं फलों में कीटनाशकों की अवशेषी मात्रा वैध मानक से अधिक पायी जाने पर आयात देश इनके आयात को प्रतिबंधित कर देते हैं। जिससे आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। इन सभी कारणों से भारत सरकार ने कृषि में डी.डी.टी. के उपयोग को 1989 में प्रतिबंधित कर दिया।

भारत के उच्चतम न्यायालय ने सन् 2012 में एण्डोसल्फान के उत्पादन तथा उपयोग को इन्हीं हानिकारक अवशेषी प्रभावों के कारण प्रतिबंधित किया।

❖❖❖

# ज्वार फसल के महत्व एवं उपयोग

**कुमार मंगलम मिश्रा**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना, म.प्र.**

**महत्व एवं उपयोगः**

चारे वाली और धान्य दोनों ही फसलों के रूप में ज्वार का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। ज्वार को जुन्हरी, जुन्डी भी कहा जाता है। ज्वार विश्व की एक मोटे अनाज वाली महत्वपूर्ण फसल है। उत्तर प्रदेश में ज्वार की फसल मुख्य रूप से चारे के लिए उगाई जाती है। चारे के लिए ज्वार का प्रयोग विभिन्न रूपों में किया जाता है जैसे जानवरों को ज्वार हरे चारे, सूखे चारे एवं साइलेज बनाकर खिलाई जाती है। खाद्यान्न फसलों में क्षेत्रफल की दृष्टि से ज्वार का भारत में तृतीय स्थान है। ज्वार का पौधा अन्य अनाज वाली फसलों की अपेक्षा कम प्रकाश संश्लेषण एवं प्रति इकाई समय में अधिक शुष्क पदार्थ का निर्माण करता है। ज्वार को आजकल औद्योगिक फसल के रूप में देखा जा रहा है। सफेद ज्वार के आटे से ब्रेड, बिस्कुट एवं केक बनाये जा सकते हैं। ज्वार के आटे के स्वाभाविक रूप से मीठा होने के कारण चीनी की मात्रा कम रखकर मधुमेह रोगियों के लिए अच्छा स्नैक्स तैयार किया जा सकता है। ज्वार के दाने में क्रमशः 10.4, 1.9, 1.6 व 72 प्रतिशत, प्रोटीन, वसा, खनिज पदार्थ एवं कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है। हरे चारे के अतिरिक्त ज्वार से साइलेज भी तैयार किया जाता है जिसे पशु बहुत ही चाव से खाते हैं। ज्वार के दाने से एल्कोहल व बीयर भी तैयार की जाती है। ज्वार के आटे का प्रयोग जिप्सम बोर्ड बनाने में चिपकाने के काम आता है। ज्वार के पूरे पौधों को सुखाकर एक भोज्य पदार्थ बनाते हैं जिसमें शर्करा की मात्रा काफी होती है। इसे गेहूँ के साथ मिलकर संयुक्त राज्य अमेरिका में बहुत प्रयोग में लाया जाता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में ज्वार सबसे लोकप्रिय फसल है। एक ओर जहाँ ज्वार के पौधे सूखे का सक्षमता से सामना कर सकते हैं, वहीं कुछ समय के लिए भूमि में जलमग्नता को भी सहन कर सकते हैं। ज्वार की विशेष किस्म से स्टार्च तैयार किया जाता है। औद्योगिक क्षेत्र में ज्वार की मांग बढ़ने से ज्वार उत्पादक किसानों को ज्वार की बेहतर कीमत प्राप्त हो सकती है।

**ज्वार के फायदे एवं नुकसानः**

ज्वार पूरी दुनिया में उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय देशों में पाए जाने वाला एक घास की प्रजाती है। दुनिया भर में 30 से अधिक ज्वार की प्रजातियां हैं। पर मानव के खाने के लिए सिर्फ एक प्रजाति का उपयोग किया जाता है। बाकी अन्य प्रजातियों का उपयोग पशुओं के लिए चारे के रूप में किया जाता है। मनुष्यों के खाने के लिए इसकी महत्वपूर्ण प्रजाति सौरघम बायकलर का उपयोग किया जाता है जिसकी खेती सबसे पहले अफ्रीका में हुई थी लेकिन आज के समय में इसका उपयोग दुनिया भर में किया जाता है। ज्वार का उपयोग मुख्य रूप से ज्वार शीरा, ज्वार सिरप और अनाज के रूप में किया जाता है। इसे दुनिया भर में पांचवाँ सबसे महत्वपूर्ण अनाज माना जाता है।

**ज्वार के फायदे–**

1. ज्वार का उपयोग हृदय स्वास्थ्य के लिए किया जाता है।
2. ज्वार खाने से वजन कम होता है।
3. ज्वार का उपयोग मधुमेह में किया जाता है।
4. ज्वार की रोटी खाने से एलर्जी दूर होती है।
5. ज्वार हड्डियों को मजबूत करता है।
6. ज्वार का उपयोग लाल रक्त कणिकाएं बढ़ाने में किया जाता है।
7. ज्वार खाने से शरीर में ऊर्जा की वृद्धि होती है।

**ज्वार के नुकसान–**

ज्वार में कुछ खनिजों और विटामिन की उच्च मात्रा होती है इसलिए इसका अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए।

❖❖❖

# संकर धान का बीज उत्पादन कैसे करें

**राजवीर सिंह, अयोध्या प्रसाद पाण्डेय एवं धीरेन्द्र चतुर्वेदी**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

संकर धान के बीज उत्पादन के लिए आनुवांशिक कोशिकाद्रव्यी तथा प्रत्यास्थापक वंशक्रम की आवश्यकता होती है। प्रमाणित संकर बीज उत्पादन के लिए नर बंध्य वंशक्रम को मादा तथा प्रत्यास्थापक वंशक्रम को नर जनक के रूप में प्रयोग किया जाता है।

**क्षेत्र एवं मौसम संबंधी आवश्यकता:** धान का संकर बीज उत्पादन उन क्षेत्रों में किया जाना चाहिए जहां परागण के समय तापमान 24–28 डिग्री सें. तथा सापेक्षिक आर्द्रता 70–80 प्रतिशत हो। दिन और रात के तापमान में 8–10 से. से अधिक अंतर नहीं होना चाहिए तथा साफ धूप खिलनी चाहिए। तापमान में अत्यधिक अंतर, लगातार बारिश तथा तेज हवाएं परागण तथा निषेचन के लिए हानिकारक हैं।

**खेत का चुनाव:** धान के संकर बीज उत्पादन के लिए खेत का चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि खेत स्वैच्छिक उगे पौधों से मुक्त हो, खेत की मृदा उर्वर व खेत समतल हो तथा जल निकास की उचित व्यवस्था हो।

**पृथक्करण दूरी:** धान के अन्य खेतों से जनकों के आधार बीज उत्पादन के लिए बीज फसल के खेत की दूरी 200 मीटर तथा प्रमाणित संकर बीज उत्पादन के लिए 100 मीटर होनी चाहिए।

**नर्सरी तैयार करना:** नर्सरी तैयार करते समय उचित मात्रा में खाद एवं उर्वरक मिलाएं जिससे स्वस्थ पौधे तैयार हो सकें। नर्सरी में बुवाई का समय ऐसा रखा जाए जिससे मादा एवं नर जनक में पुष्पन एक समय पर हो।

**रोपाई:** जब पौध 20–25 दिन का हो जाए तो रोपाई की जाती है। मादा जनक की पंक्तियों में पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 सेमी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेमी. रखी जा सकती है। परंतु नर जनक के लिए अंतरण कम रखा जा सकता है। पंक्तियों की दिशा वायु की दिशा के विपरीत रखी जाती है। जिससे पर परागण अधिक हो सके। मादा तथा नर पंक्तियों का अनुपात 6:1 अथवा 2:8 रखा जाता है।

**उर्वरक:** 150 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 किग्रा. फास्फोरस तथा 50 किग्रा. प्रति हे. पर्याप्त है। फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी तथा नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई के समय खेत में डालनी चाहिए। शेष नत्रजन कल्ले फूटने व पुष्पन अवस्था पर आधी–आधी दी जाती है। मृदा में यदि जस्ते की कमी हो तो 15 कि.ग्रा. प्रति हे0 जिंक सल्फेट देना चाहिए।

**जल प्रबंधन:** रोपाई के अगले दिन हल्की सिंचाई करनी चाहिए। यदि खेत पानी से तर है तो खेत को पानी से पूरा भरने की आवश्यकता नहीं होती। फूल आने के समय तापमान बढ़ने पर दिन में खेत में पानी भरते हैं और रात में निकाल देते हैं। ऐसा करने से तापमान कम हो जाता है।

**पुष्पन प्रबंध:** संकर बीज उत्पादन के लिए आवश्यक है कि परागकण अधिक समय तक मिलते रहे। इसके लिए नर जनक की समयांतर बुवाई की जाती है। खेत में से पानी निकालक पुष्पन में कुछ देरी की जा सकती है। यूरिया के तीन प्रतिशत घोल का छिड़काव करके पुष्पन 2–3 दिन पहले कराया जा सकता है।

**अवांछित पौधों का निष्कासन:** पुष्पन से पूर्व तथा पुष्पन के समय नर एवं मादा जनकों की पंक्तियों से भिन्न पौधों को निकाल दिया जाता है।

**कटाई:** कटाई करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पहले नर जनक की पंक्तियों की कटाई की जाए उसके बाद बीज जनक (मादा जनक) की पंक्तियों की कटाई की जानी चाहिए जिससे यॉंत्रिक मिश्रण का भय न रहे।

# वन, पर्वत और नदियाँ

**सुधांशु नारायण मिश्रा**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

**वन, पर्वत और नदियों का, रिश्ता है बहुत पुराना,**
**ये तीनों साथी हैं सबके, इनको कोई न माना।**

वनों से हमने लकड़ी, फल और वायु प्राप्त किया है,
इसके बदले हमने वनों को, क्या कुछ भेंट दिया है।
मानव है इनका रक्षक, अब रक्षा इनकी न करता,
अपने थोड़े स्वार्थ के लिए, इनका भक्षण करता।
इसीलिए अब वन न बचेंगे, और कोई न जाना,
ये तीनों साथी हैं सबके ..... ।

पर्वत ने भी कसर न छोड़ी, सुन्दर संसार बनाया,
जड़ी बूटियों के द्वारा, औषधि विज्ञान दिखाया।
सुन्दर–सुन्दर झरनों ने है, अपना बिगुल बजाया,
पर हमने इनको भी न समझा, इनको न अपनाया।
पर्वत भी अब रह न सकेंगे, रहेगा न ये खजाना,
ये तीनों साथी हैं सबके ..... ।

भारत की नदियाँ हैं निर्मल, और हैं सुन्दर जल वाली,
इनसे जल विद्युत बनती , और खेतों की हरियाली।
पर नदियों को यूँ हमने, है प्रदूषण युक्त बनाया,
कूड़ा–कचड़ा और गन्दगी, इन पर है फैलाया।
अब नदियाँ भी कैसे बचेंगी, बचेगा न ये जमाना,
ये तीनों साथी हैं सबके ..... ।

# कविता

**सुषमा सिंह भदोरिया**
**रसायन विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

चलो आज पुरानी राहों पर यू खफा खफा क्यों बैठे हो।
कुछ खुशियां लेकर आते हैं उन प्यारी मीठी यादों से।
कुछ गम को भुला कर आते हैं वो बचपन की करतूतों से
चलो नानी मामा के घर में आमों के बाग सजाएंगे।
चलो आज पुरानी राहों पर बचपन से फूल खिलाएंगे।
वो कंचे, गिल्ली के खेलों हम कहीं फिर खो जाएंगे।
चलो आज पुरानी राहों पर वह खुशियां लेकर आते हैं।
इस गम को खेतों की मिट्टी पर आज छुपा कर आते हैं।
उन बागों के आमों से हम किलकारी लेकर आते हैं।
उन छोटे-मोटे जख्मों से मुस्कान छुपा कर लाते हैं।
चलो आज पुरानी राहों पर यू खफा खफा क्यों बैठे हो।

# कविता

**सुषमा सिंह भदोरिया**
**रसायन विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

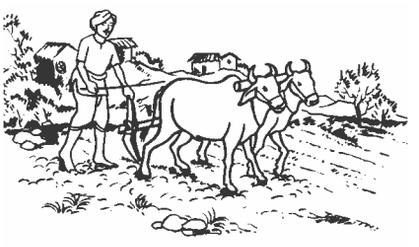

इस जग के पालन पोषण को वो अपना धर्म बताता है,
उस किसान के लिए तो यह जग ही उसकी माता है,
चाहे सूरज सर पर हो चाहे बादल घनघोर दिखे,
वो एक एक दाने के खातिर भी अपना खून बहाता है,
जिस सुंदरता को देख देख तुम यूं मोहित हो जाते हो,
उस सुंदरता को लाने में वो अपना देह जलाता है,
वो जनसेवा पर अड़ा रहे जो भी संभव हो करता है,
जग की सच्ची श्रद्धा खातिर ही वो भूमि पुत्र कहलाता है।

# अपने पुरखों की धरोहर को बचाना वक्त का तकाजा है

**बाबूलाल दाहिया**
**पिथौराबाद, सतना**

यदि हम विकसित मनुष्य का समय 1 करोड़ वर्ष मान लें तो 99 लाख 90 हजार वर्ष वह बिना खेती के ही रहा है। खेती का इतिहास मात्र 10 हजार वर्षों के इधर का ही है। शुरू शुरू में उसने कुछ अनाजों को घास के रूप में चिन्हित कर अपने रहवासों के आस पास बिखेरना शुरू किया होगा, ताकि उसे चरने या उसके दानों को चुगने के लिए पशु पक्षी आएं और उसके शिकार का पुख्ता प्रबन्ध रहे। किन्तु बाद में आग की खोज के पश्चात वह कुछ अनाजों को उबाल या भूनकर खाने भी लगा होगा। पर व्यवस्थित खेती तब आई जब आज से लगभग 28 सौ वर्ष के आस पास लौह अयस्क की खोज हो गई। क्योंकि लौह के खोज के पहले प्रागैतिहासिक काल का जो मनुष्य अपनी बस्ती नदी के किनारे रख उसी का पानी पीता था। उस खोज के पश्चात न सिर्फ वह पत्थर की चट्टानें तोड़ कुँआ खोद मैदान में बसने लगा, बल्कि खेती तथा कुटीर उद्योग भी विकसित हुए। क्योंकि ताम्र युग वाले लकड़ी के हल में लोहे का फाल लगा वह अब अधिक जुताई कर सकता था। फिर यहीं से व्यवस्थित खेती की शुरुआत हुई। इसलिए आज जो भी परम्परागत खेती है वह बहुत बड़े अनुभव जनित ज्ञान की खेती है, जिसमें हमारे कृषक पूर्वजों का सैकड़ों पीढ़ी का अनुभव शामिल है। क्योंकि आज जितने भी अनाज खेती में प्रयुक्त हैं, जितने भी पालतू पशु हैं, उनके मूल में हमारे आदिम पुरखों की खोज ही निहित है। हम देखते हैं कि गौरैया हमारे आंगन का दाना चुगती है पर वह मनुष्य के पालतू पक्षी की श्रेणी में नही है, क्योंकि वह हमसे एक दूरी बनाकर रहती है। पिजड़े में बंद तोता जैसा सिखाते है बोलने लगता है पर वह पालतू नही बल्कि हमारा बंधक है। यही कारण है कि पिंजड़ा खुलते ही रफू चक्कर हो जाता है। किंतु मुर्गी, बतख, भेड़, बकरी, गाय, भैंस आदि पालतू हैं। क्योंकि पालतू की एक परिभाषा है कि जो पशु पक्षी हमारा दिया भोजन कर के अपना वंश परिवर्धन करने लगे वही इस श्रेणी में आता है। वर्ना वह पालतू नही। देश मे गाय, भेड़, बकरी, भैंस, घोड़े व गधों के अनेक अनुसंधान केंद्र हैं। पर सब के मूल में हमारे कृषक पूर्वजों के खोजे पशु ही हैं। जिन पशुओं को हमारे आदिम पुरखों ने पालने योग्य नहीं समझा वह आज भी पालतू नहीं हैं। पर मित्रों आज न तो जंगल में किसी अनाज की कोई पुरखिन पुरखे शेष बचे हैं, न ही किसी पशु पक्षी के। जो भी शेष है किसानों के पास ही हैं। इसलिए पुरखों की उस अनमोल अमानत को बचाना हमारा कर्तव्य है। क्योंकि जब किसी अनाज या सब्जियों के किस्म का बीज समाप्त होता है तो न सिर्फ वह बीज विलुप्तता के गहरे गर्त में चला जाता है, बल्कि वह सारे गुण धर्म भी चले जाते हैं जो उसने हजारों वर्षों से यहां की परिस्थितिकी में रच बस कर अर्जित किया था।

एक अनुमान के अनुसार 70 के दशक तक हमारे देश मे धान की 1 लाख 10 हजार किस्में थीं। अकेले अविभाजित मध्यप्रदेश में ही डॉ राधेलाल रिछारिया जी ने उसकी 22 हजार 800 किस्में खोज निकाली थीं। किन्तु हरित क्रांति के आने के पश्चात आज देश मे अगर 10 हजार किस्में बची हों तो बहुत है। साथ ही मध्यप्रदेश की तो पूरी ही 22 हजार किस्में चली गईं। जो कुछ शेष हैं वह 800 के अन्दर ही हैं, जिनमें 200 मेरे पास और शेष कुछ मेरे जैसे विक्षिप्त लोगों या फिर फुटकर किसानों के पास हैं।

किन्तु मेरी अवस्था भी अब 77 वर्ष के पास है। संसाधन के अभाव में उन्हें कब तक जीवित रख पाऊँगा, कहा नही जा सकता।

❖❖❖

# मृदा अपरदन को रोक भूमि को उपजाऊ बनाये रखे

**अनुष्का कुम्मलवार**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

मृदा हमारे जीवन का आधार है। पृथ्वी के निर्माण के साथ – साथ ही मृदा का निर्माण हुआ है। आप को ये जान कर आश्चर्य होगा कि मृदा के निर्माण में वर्षो लग जाते हैं।

**मृदा अपरदन का अर्थ है मिट्टी का कटाव:**

मृदा का उसके उत्पत्ति स्थान से बहकर किसी अन्य स्थान पर चले जाना मृदा अपरदन कहलाता हैं। मृदा अपरदन से मिट्टी की उपजाऊ सतह का क्षय होता है। ये बातें सुनने में भले ही गम्भीर न लगे, लेकिन मृदा अपरदन मानव के विनाश का कारण बन सकता है। क्योंकि मृदा अपरदन के कारण उपजाऊ भूमि नहीं बचेगी और उपजाऊ भूमि नहीं बचेगी तो खेती कहाँ होगी, और अगर खेती नहीं होगी तो, जीवन के लिये मुख्य घटक 'भोजन' कहाँ से प्राप्त होगा? अब तक मध्य प्रदेश में 6.83 लाख हैक्टर मृदा अपरदन हो चुका है।

उपजाऊ भूमि देती है अन्न
बंजर भूमि से न हो पाएगा ये कर्म

मृदा अपरदन जानने के बाद हमें यह जानना आवश्यक है कि मृदा अपरदन किन कारणों से होता है। आइये इन कारणों को जानें:

- वृक्षों की अत्यधिक कटाई से
- वनों में आग लगने से
- वानस्पति फैलाव का घटना
- फसल चक्र को सही तरीके से न अपनाना
- ढलान की दिशा में कृषि कार्य करना
- सिंचाई की त्रुटिपूर्ण विधि अपनाना

**मृदा अपरदन के कारक वायु, जल व मानव हैं:**

हमने यह जान लिया की मृदा अपरदन किन कारणों से होता है। अब हमें यह जानने की आवश्यकता है कि मृदा अपरदन को किस प्रकार से रोका जाए–

**1. अधिक वृक्षारोपण–** वृक्ष की जड़ें मृदा को पकड़ कर रखती हैं, जिससे वर्षा के समय मृदा का कटाव नहीं हो पाता है। वृक्ष मृदा को बहने से रोकते हैं। अधिक वृक्ष लगा कर मृदा अपरदन को रोका जा सकता है वृक्ष वातावरण को शुद्ध बनाये रखने का भी कार्य करते हैं।

**2. ढलान के विपरित कृषि कार्य करना–** पहाड़ी क्षेत्रों में ढलान के विपरित कृषि करके वर्षा के समय भूमि के कटाव को कम किया जा सकता है। सीढ़ी नुमा कृषि की जाती है, जिससे वर्षा के जल का बहाव कम होते जाता है और मृदा का कटाव रुक जाता है।

**3. सिंचाई की सही विधि अपना कर–** किसान सिंचाई करते वक़्त कई बातों को नजरअंदाज कर देते हैं, जैसे किसान पाइप से सिंचाई करते समय पाइप का प्रेशर अधिक रखता है। जिससे मिट्टी एक स्थान से बहकर दूसरे स्थान पर चली जाती है। किसान सही सिंचाई विधि अपनाकर मिट्टी के कटाव को रोक सकता है।

**4. जुताई करके–** जुताई करने से ढालू भूमि समतल हो जाती है। जिससे पानी का बहाव रुक जाता है और मृदा अपरदन भी रुक जाता है। जुताई करने से मिट्टी की जल धारण क्षमता बढ़ जाती हैं, जिससे मिट्टी का कटाव रुक जाता हैं।

**5. बाढ़ नियंत्रण–** वैसे तो प्रकृति पर किसी का कोई नियंत्रण नहीं होता है, लेकिन नदियों पर बाँध बना कर मृदा अपरदन को रोका जा सकता है। नहर का निर्माण कर मृदा अपरदन को रोका जा सकता है और नहर के पानी का उपयोग अन्य कार्य में किया जा सकता हैं।

**6. रसायनों का सीमित प्रयोग करके–** मृदा के कण आपस में जुड़े हुये होते हैं। रसायनों के अधिक प्रयोग से मृदा के कणों का जुड़ाव कम हो जाता है, जिससे मृदा आसानी से पानी के साथ बह जाती है। रसायनों के कम प्रयोग से मृदा अपरदन को रोका जा सकता है।

❖❖❖

# भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुओं का योगदान

**नवनीत राज राठौर एवं लवकेश कुमार सोनी**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

भारत के पास विश्व का सबसे बड़ा डेयरी झुंड (गाय और भैंस) तथा यह विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक है। हमारे देश की कृषि प्रणाली मुख्य रूप से मिश्रित पशुधन–कृषि प्रणाली है, जिसमें फसलों के उत्पादन को पशुधन पालन के साथ मिलाया जाता है, जो खेत की आय को रोजगार, भारवाही पशुओं और खाद उपलब्ध कराकर अधिक पूर्ति करता है। हाल के दशकों में, कृषि उत्पादन में पशुधन का योगदान बढ़ रहा है तथा इसकी विकास दर भी ऊंची हो रही है। पशुधन एवं मत्स्य पालन का हिस्सा लगातार कुल कृषि जीडीपी में बढ़ रहा है। पशुधन लोगों को भोजन और गैर खाद्य पदार्थ प्रदान करते हैं।

पशुधन मानव उपभोग के लिए दूध, मांस और अंडे जैसे खाद्य पदार्थ प्रदान करते हैं। भारत विश्व में नंबर एक दुग्ध उत्पादक है। यहाँ वर्ष 2017 में 95.22 अरब अंडे, 7.70 मिलियन टन मांस का उत्पादन हो रहा है। पशुधन क्षेत्र के उत्पादन का मूल्य वर्ष 2016–17 के दौरान वर्तमान कीमतों पर 9,17,910 करोड़ रु. था, जो कृषि क्षेत्रों से उत्पादित मूल्य का लगभग 31.25 प्रतिशत है। स्थिर कीमतों पर पशुधन से उत्पादन का मूल्य कुल कृषि और संबद्ध क्षेत्रों से लगभग 31.11 प्रतिशत था। वित्तीय वर्ष 2017–18 के दौरान भारत में कुल मछली का उत्पादन 12.61 मिलियन मीट्रिक टन होने का अनुमान है।

**रेशा एवं त्वचा:**

पशुधन ऊन, बाल तथा चर्म के उत्पादन में भी योगदान देते हैं। चमड़ा सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्पाद है, जिसके निर्यात की अधिक संभावना है। भारतीय कृषि कार्यों में मशीनी शक्ति के उपयोग में प्रगति के बावजूद, भारतीय कृषक विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, विभिन्न कृषि कार्यों के लिए बैल पर निर्भर रहते हैं। बैल ईंधन पर अधिक बचत कर रहे हैं, जो ट्रैक्टर और हारवेस्टर जैसे यांत्रिक शक्ति के उपयोग के लिए आवश्यक है।

❖❖❖

# जानें कौन से महीने में किन सब्जियों की खेती करें

**सात्विक सहाय बिसारिया एवं आशुतोष गुप्ता**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

**संबंधित महीनों में उगाई जाने वाली सब्जियों का विवरण निम्नानुसार है:**

| माह | फसलें |
|---|---|
| जनवरी | राजमा, शिमला मिर्च, मूली, पालक, बैंगन, चप्पन कद्दू |
| फरवरी | राजमा, शिमला मिर्च, खीरा, ककड़ी, लोबिया, करेला, लौकी, तुरई, पेठा, खरबूजा, तरबूज, पालक, फूलगोभी, बैंगन, भिण्डी, अरबी, एस्पेरेगस, ग्वार |
| मार्च | ग्वार, खीरा, ककड़ी, लोबिया, करेला, लौकी, तुरई, पेठा, खरबूजा, तरबूज, पालक, भिण्डी, अरबी |
| अप्रैल | चौलाई, मूली |
| मई | बैंगन, प्याज, मूली, मिर्च |
| जून | खीरा, ककड़ी, लोबिया, करेला, लौकी, तुरई, पेठा, बीन, भिण्डी, टमाटर, प्याज, चौलाई, शरीफा |
| जुलाई | खीरा, ककड़ी, लोबिया, करेला, लौकी, तुरई, पेठा, भिण्डी, टमाटर, चौलाई, मूली |
| अगस्त | गाजर, शलगम, फूलगोभी, बीन, टमाटर, काली सरसों, पालक, धनिया, ब्रुसेल्स स्प्राउट, चौलाई |
| सितम्बर | गाजर, शलगम, फूलगोभी, आलू, टमाटर, काली सरसों, मूली, पालक, पत्ता गोभी, कोहीराबी, धनिया, सौंफ, सलाद, ब्रोकोली |
| अक्टूबर | गाजर, शलगम, फूलगोभी, आलू, टमाटर, काली सरसों, मूली, पालक, पत्ता गोभी, कोहीराबी, धनिया, सौंफ, राजमा, मटर, ब्रोकोली, सलाद, बैंगन, हरी प्याज, ब्रुसेल्स स्प्राउट, लहसुन |
| नवम्बर | चुकन्दर, शलगम, फूलगोभी, टमाटर, काली सरसों, मूली, पालक, पत्ता गोभी, शिमला मिर्च, लहसुन, प्याज, मटर, धनिया |
| दिसम्बर | टमाटर, काली सरसों, मूली, पालक, पत्ता गोभी, सलाद, बैंगन, प्याज |

❖❖❖

# जायद में तिल की खेती

**लवकेश कुमार सोनी एवं नवनीत राज राठौर**
**कृषि विज्ञान विभाग, एकेएस विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)**

प्रायः देखा गया है कि तिल की फसल मध्य प्रदेश एवं विंध्य क्षेत्र में खरीफ मौसम में की जाती है। इसके अलावा इसकी खेती जायद मौसम में भी सफलता पूर्वक की जा सकती है।

**भूमि :**

इसकी व्यापक पैदावार के लिए भूमि का चयन करना परम आवश्यक है। इसके लिए हल्की चिकनी एवं कछारी मिट्टी उपयुक्त पाई गई है।

**खेत की तैयारी:**

अच्छे एवं समुचित अंकुरण एवं पौध वृद्धि के लिए बोने पूर्व खेत की दो या तीन जुताइयाँ करने के उपरांत खेत की मिट्टी को भली–भांति पाटा द्वारा भुरभुरी बना लेनी चाहिए। साथ ही उपलब्ध खरपतवारों को खेत से निकालकर बाहर कर देना उत्तम माना गया है। बोने से पूर्व खेत को छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित कर साथ ही समुचित नालियों को भी बना लेना चाहिए।

**बीज एवं बीजोपचार:**

किसी फसल की समुचित पैदावार के लिए उचित बीज दर एवं बीजोपचार करना परम आवश्यक होता है। इसलिए 5–6 किग्रा. प्रति हे0 की दर से बीज को लेकर उसका बीजोपचार किया जाना चाहिए। इसके लिए कार्बेन्डाजिम फफूंदनाशी 2 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से लेकर बीजों को भली–भांति उपचारित करके बीजों की बुवाई करें। ध्यान रहे कि समुचित अंकुरण एवं पौध अंतराल के लिए बीजों को बिखेरते समय 2 किग्रा. बीज में 20 किग्रा. सड़ी गोबर की खाद को मिलाकर किया जाना चाहिए।

**उन्नत किस्में:**

तिल की तमाम प्रजातियों में से भारी उत्पादन हेतु टीकेजी 22, टीकेजी 55, जेटीएस 8, टीकेजी 306 प्रजातियों का चयन किया जाय तो उपयुक्त होगा। इन प्रजातियों की उपज क्षमता ज्यादा आंकी गई है।

**खाद एवं उर्वरक:**

सफल उत्पादन हेतु उर्वरकों का प्रयोग अपरिहार्य है। पौधों की वृद्धि विकास एवं भारी उपज हेतु नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश की पूर्ति करना बहुत ही आवश्यक है। इसलिए 10 टन प्रति हे0 गोबर की सड़ी खाद के साथ 60 किग्रा. नाइट्रोजन, 40 किग्रा. फास्फोरस एवं 20 किग्रा. पोटाश की पूर्ति उर्वरकों द्वारा किया जाना आवश्यक है। इसमें नाइट्रोजन की आधी मात्रा बोने के 3–4 सप्ताह बाद प्रयोग करें।

**निराई–गुड़ाई:**

बुवाई के 15 से 20 दिन बाद निराई–गुड़ाई करें और उसी समय अनावश्यक घने पौधों को निकाल दें।

**सिंचाई:**

मौसम एवं मृदा के आधार पर सिंचाई की व्यवस्था जायद में करना उत्तम है। इसलिए सामान्य तौर पर एक सप्ताह के अंतराल में सिंचाई की व्यवस्था करना जरूरी है।

**कीट नियंत्रण:**

तिल में पत्ती मोड़क एवं फली भेदक कीट, पौधों की पत्ती अवस्था में एवं फूलों के अंदर घुसकर भीतरी भाग खाकर एवं फली में छेद कर फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। क्विनालफास 25 ईसी 2 मिली./लीटर या डायमेथोएट 1 मिली./लीटर को आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।

**रोग नियंत्रण:**

तिल की फसल में तना एवं जड़–सड़न रोग अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग का प्रकोप होता है साथ ही पर्ण भाग रोग का प्रकोप होता है। रोग में अधिक शाखाएं और छोटी पत्तियां गुच्छों में होती हैं। रोग नियंत्रण हेतु उपयुक्त फसल चक्र अपनाएं व रोगग्रसित पौधे के भाग को तोड़कर/उखाड़कर नष्ट कर दें एवं डायथेन M-45 (2.5 ग्राम/ली.) बुवाई के 30 और 60 दिन पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।

**कटाई एवं गहाई:**

पत्तियां पीली होकर झड़ने लगें तथा फलियां हरी हों तभी तिल की कटाई करें। कटी फसल को लकड़ी के सहारे अच्छी तरह सुखाएं। सूखे पौधों को छड़ियों से पीटकर गहाई करें।

**उपज:**

700 से 800 किग्रा./हे. उपज प्राप्त होती है।

❖ ❖ ❖

# कृषि विज्ञान अनुसंधान प्रक्षेत्र, एकेएस वि.वि. सतना

# AKS University
## SATNA

India's Best Private Universities
India Today Survey-2018

**27th Rank in INDIA**

**University Also Awarded as**

- Best Innovative University in Madhya Pradesh 2019
- Best University in Central India 2019
- Leading University in Central India 2018

**निःशुल्क* शिक्षा**
OBC, SC, ST
के छात्रों के लिये
शासन द्वारा
छात्रवृत्ति के आधार पर
*Condition Apply

**विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों का विदेशों में एजुकेशनल टूर**
● अमेरिका ● इजरायल ● हांगकांग ● चीन ● मलेशिया ● थाईलैंड ● इंडोनेशिया ● जापान

AKS University is Dedicated to Uniqueness, Excellence, Creativity, Innovation & Perfection

## Engineering

### Polytechnic
- Mechanical ● Civil ● Electrical
- Cement Technology ● Agriculture
- Mining ● Food Tech.
- Computer Science
- Mining & Mine Surveying

### B.Tech.
- Mechanical ● Civil ● Electrical
- Mining ● Cement Technology
- Computer Sc. & Engg. ● Agril. Engg.
- Biotech.* ● Food Technology*

*12th (Bio/Maths)

### B.Tech. (Hons.)
- Mechanical
- Civil ● Electrical
- Computer Sc. & Engg.

### M.Tech.
- Mining ● Mechanical ● Civil
- Food Tech. ● Biotech. ● CSE
- Agricultural Engineering

## Agriculture
- B.Sc. (Hons.) Ag. ● Diploma Ag.
- B.Tech. (Agril. Engg.)
- M.Sc. (Ag.) - Agronomy / Horticulture / Genetics & Plant Breeding / Plant Pathology

## Food Tech.
- B.Sc. ● M.Sc. ● Diploma (Food Tech.) (After 10th)
- B.Tech. (Food Tech.) (After 12th - Bio/Maths)
- M.Tech. (Food Tech.) (After B.Tech. Food Tech or equivalent)

## Computer
- Diploma (CSE) ● B.Tech. (CSE)
- BCA (Hons.) ● B.Sc. IT (Hons.)
- B.Sc. CS (Hons.) ● DCA
- MCA 2 Yrs.* ● PGDCA
- M.Sc. in Cyber Security & Digital Forensic
- Diploma in Cyber Security & Digital Forensic

*Eligibility - BCA/B.Sc. (IT/CS) / PGDCA

## Commerce
- B.Com. (Hons.) CAP **Syllabus as Par With CA** (Corporate Accounting Practices)
- B.Com. (Hons.) CSP **Syllabus as Par With CS** (Corporate Secretarial Practices)
- B.Com. (Hons.) ● B.Com. (Computer)
- B.Com. (Economics) ● M.Com.

## Management
- BBA (Hons.)
- MBA - Marketing / HR / Finance / Retail / / Rural IT & MIS / Banking & Insurance
- MBA - ABM (Agri Business Mgmt.)
- MBA - THM (Tourism & Hospitality Mgmt.)

## Pharmacy (PCI Approved)
- B.Pharm ● D.Pharm

## Ph.D.

## MSW

## Basic Science
- B.Sc. (Maths) ● B.Sc. - Computer Sc.
- M.Sc. - Chemistry /.Physics / Maths

## Paramedical
- DMLT

## Life Science

### Biotechnology
- B.Sc. ● M.Sc.
- B.Tech. ● M.Tech.

### Environment
- M.Sc. (Environment Sc./Microbiology/Biotech.)
- PG Diploma in Safety Health & Environment
- PG Diploma Environment Pollution Mgmt.
- Certificate in Waste Management
- Certificate in Biomedical Waste Management

## Fine Art/Design
- B.A. (Fashion Desiginng)
- Diploma in Fashion Designing
- B.Des. (Bachelor of Design)
- BFA (Bachelor of Fine Art)

## Humanities
- B.A. ● Diploma in YOGA
- B.A. (Computer) ● B.A. (Public Administration)

## Education {NCTE Approved}
- B.Ed. ● D.El.Ed.
- M.A. - Education

"Admission in B.Ed./D.El.Ed. - Strictly as per Policy of State Govt. Act, Statutes, Ordinance & Provision of NCTE Regulations."

* Condition Apply

**Toll Free : 1800 2700 776** **www.aksuniversity.ac.in** **Whatsapp : 8889737776**

**City Offices**
Anuppur : 8889947776, Balaghat : 7692027776, Betul : 7692067776, Chhindwara : 8889717776
Narsinghpur : 7610267776, Katni : 7692087776, Rewa : 8889647776, Seoni : 7049657776
Shahdol : 7354157776, Sidhi : 8889587776, Waidhan: 7610627776

**Sherganj, Panna Road, SATNA (M.P.) Ph.: 8889207776, 8889237776**